हमारा साहित्य

सम्पादक
श्यामलाल शर्मा

1970-71

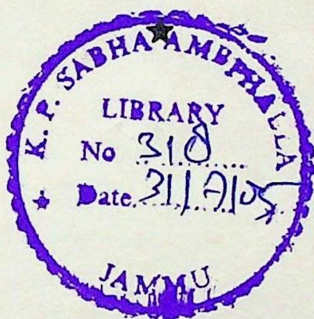
ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू - कश्मीर,
जम्मू





हमारा साहित्य

(१९७०)



सम्पादक :

श्याम लाल शर्मा



ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी
जम्मू - कश्मीर,
जम्मू।

Hamara Sahitya
1970
Edited by
Shyam Lal Sharma



प्रकाशक :
ललितकला, संस्कृति तथा
साहित्य अकादमी,
जम्मू-कश्मीर
जम्मू ।

मुद्रक :
डोगरा प्रिंटिंग प्रैस
कच्ची छावनी,
जम्मू ।

१५ अगस्त, १९७२

मूल्य........

1970

अनुक्रमणिका

कविता कुञ्ज



यह चयनिका

हमारा साहित्य १९७० गतवर्ष प्रकाशित हो जाना चाहिये था, परन्तु युद्ध की विभीषिका में साहित्यिक संग्रह का यह कार्य आर्थिक संयम और मित व्ययता की दृष्टि से अगले वर्ष पर उठा दिया गया। विलम्ब की अवधि में चुनावों की सरगरमी ने प्रैस वालों को और ढील करने का अवसर दे दिया। अस्तु! अब १९७० का जम्मू-कश्मीर का चुना हुआ हिन्दी साहित्य बानगी के रूप में आप के सम्मुख है।

इस चयनिका में साहित्य की अन्य विधाओं के साथ भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से डोगरी और कश्मीरी पर हो रहे कार्य की झलक मिलेगी।

साहित्य और विचार विमर्श के सन्दर्भ में हिन्दी में हास्य-व्यंग्य, नवीन जी की उर्मिला, महादेवी की रहस्य साधना महजूर की काव्य-शैली जहां हिन्दी साहित्य की गरिमा पर प्रकाश डालते हैं वहां कर्म सिद्धान्त और मानव, कश्मीरी काव्य में दार्शनिक अनुभूति, गुरु नानक, अस्तित्ववाद विचार विमर्श की महत्ता का दिग्दर्शन कराते हैं।

कथा साहित्य में आज की कहानी जहां पहुंच गई है और जिस रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, उस ओर इस संग्रह में संकलित कथाएं दृष्टिपात का यत्न कर रही हैं। मेरी गली का पाप, भातृघाती, और घुटन प्रयास हैं। बाकी कथाएं परिपाटी के निभाने वाली सुन्दर कहानियां हैं। कविता क्यारी में विविधता है, और भान्ति भान्ति के रगों की छटा है। प्रत्येक रूचि की तुष्टि के लिये कोई न कोई फूल अपनी आभा लिये है। एकांकी के अभाव में संगीत रूपक ने 'मधुरेण समापयेत' की भूमिका निभाई है।

१५ अगस्त, १९७२

श्याम लाल शर्मा

हमारा साहित्य



भाषा तथा भाषा विज्ञान

भाषा विज्ञान के आदि आचार्य महर्षि पाणिनि



सत्यपाल शास्त्री



आज इस तथ्य को विश्व के लगभग सभी भाषाशास्त्री एक मत से स्वीकार करने लग पड़े हैं कि महर्षि पाणिनि विश्व के पहले भाषा शास्त्री थे। जिस प्रकार ग्रीक में थ्रैक्स, डिस्कोलस, इरोडियन आदि वैयाकरणों ने योरोप में भाषा-विज्ञान के अध्ययन का सूत्रपात किया उसी प्रकार भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के प्रवर्तक महर्षि पाणिनि हुए हैं। योरोप के इन वैयाकरणों की रचनाओं पर धर्म, दर्शन, तर्क शास्त्र की छाप है जब कि पाणिनि के व्याकरण में केवल विशुद्ध व्याकरण सम्बन्धी नियमों में भाषा विज्ञान के मूल सिद्धांत अनुस्यूत हैं।

स्वर्गीय डा. वासुदेव शरण अग्रवाल जी की 'पाणिनि कालीन भारत' में पाणिनि के वैयाकरण सूत्रों में धर्म, दशन, इतिहास, भूगोल, मानव विज्ञान इत्यादि सब पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

समय प्रवाह से जब वैदिक भाषा जनसाधारण को ज्यों-ज्यों दुरूह एवं कठिन प्रतीत होने लगी त्यों-त्यों ही यह बात भी अनिवार्य प्रतीत होने लगी कि उसे सुगम रूप देने के ढंग एवं उपाय ढूंडे जाएं। उसी खोज के परिणाम स्वरूप पद पाठ पद्धति का प्रवर्तन प्रारम्भ हुआ। पद पाठ

पद्धति में सन्धि विच्छेद, पद विश्लेषण आदि आवश्यक हैं। भाषा विज्ञान में भी ये अनिवार्य तत्व हैं। अतः यदि यह कहा जाए कि भारतीय पद पाठ पद्धति भाषा विज्ञान का विशुद्ध रूप से प्रारम्भिक रूप है तो अत्युक्ति नहीं होगी। बाद में जब वैदिक आर्यों के साथ कई अन्य जातियां भी आकर घुलमिल गईं तो उनकी भाषाओं का भी वैदिक भाषा के साथ आदान-प्रदान हुआ। फलतः लौकिक भाषा का नया रूप सामने आने लगा। कई विद्वानों का मत है कि यही भाषा प्राकृत भाषा का प्रारम्भिक रूप था। जब कि कुछ विद्वान् इसे वैदिक और लौकिक संस्कृत का मध्यवर्ती रूप मानते हैं। इसी लोक भाषा को पाणिनि ने संवार कर संस्कृत रूप दिया था। संस्कृत भाषा का शब्दार्थ ही इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है यह संवारी हुई तथा परिष्कृत भाषा है। परन्तु यहां फिर एक आशंका उत्पन्न होती है कि पाणिनि से पहले भी लौकिक संस्कृत में वाल्मीकि रामायण और महाभारत जैसी महत्व पूर्ण रचनाएं हो चुकी थीं। चाहे इन की भाषा में पाणिनि व्याकरण की दृष्टि से कई त्रुटियां पाई जाती हैं तो भी इनके संस्कृत रूप को स्वीकार करने के विषय में किसी को भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में यह बात सामने आती हैं कि पाणिनि से पहले जो आपिशालि, गार्ग्य, सेनक, स्फोटायन, गालव, भारद्वाज, औदुम्बरायण, काशकृत्स्न, शाकटायन, काश्यप, चाक्रवर्मण, शकल्य आदि ८५ वैयाकरण हो चुके थे[1] (पाणिनि ने केवल १० प्रसिद्ध वैयाकरणों का अष्टाध्यायी में उल्लेख किया है) उनका भी वैदिक या वैदिक कालोत्तर लोक भाषा को संस्कृत रूप देने में महत्व-पूर्ण योगदान रहा होगा, ऐसा विद्वानों का विचार है। खेद है कि इन सभी की कृतियां अब उपलब्ध नहीं हैं। हां कहीं-कहीं ऐन्द्र व्याकरण का उल्लेख अवश्य आता हैं जिस के लेखक ब्रह्मदेव और देवेन्द्र थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार कातन्त्र व्याकरण की रचना ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर हुई थी। तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख आता है कि संस्कृत व्याकरणों में ऐन्द्र व्याकरण का सर्वप्रमुख स्थान है। डा० बर्नेल भी इसी मत के समर्थक हैं। आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि ऐन्द्र व्याकरण और पाणिनि के मध्य कम

1. "संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास" पृ० ६३; ले० युधिष्ठिर मीमांसक।

से कम दो सम्प्रदायों का व्यवधान अवश्य रहा होगा।

पाणिनि ने अपनी समकालीन लौकिक भाषा को संस्कृत रूप देने के लिए जो व्याकरण सम्बन्धी नियम बनाए वे अन्तिम, सर्वमान्य तथा सर्वथा वैज्ञानिक हैं। इन्होंने सूत्र शैली में अष्टाध्यायी की रचना करके गागर में सागर भर दिया। इस की टक्कर का ग्रन्थ संसार की किसी अन्य भाषा में शायद ही मिल सके। यही कारण है कि संस्कृत का अरबी, चीनी, लैटिन, जर्मन तथा ग्रीक जैसी विश्व की प्रमुख तथा प्राचीन भाषाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। ब्राह्मण संस्कृति से परिपूर्ण यही संस्कृत बाद में भारत में साहित्यिक अभिव्यक्ति की तथा प्रशासन की भाषा बनी। ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं। डा० ए० बी० कीथ का कहना है[1]—"Panini has rules which are meaning less for any thing but a vernacular, apart from the fact that the term Bhasa which he applies to the speech has the natural sense of a spoken language."

जब संस्कृत किसी की मातृ भाषा नहीं रही तो भी यह आज तक इसी व्याकरण के कारण ही भाषा शास्त्रियों के लिए प्रेरणा स्रोत, विद्वानों, इतिहासकारों, तथा धर्म की भाषा बनी हुई है। भाषा शास्त्रियों का कहना है कि यदि उन्हें संस्कृत के इस विवरणात्मक व्याकरण (पाणिनि व्याकरण) के समान ही ग्रीक, लैटिन आदि प्राचीन योरोपीय भाषाओं के व्याकरण भी उपलब्ध होते तो उन्हें यारोपीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने में इस कठिनाई का सामना न करना पड़ता जिसका वे आज कर रहे हैं।

अमेरिका के भाषा शास्त्री भाषा विज्ञान का सूक्ष्म तथा गम्भीर मनन करके इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि पाणिनि की तुलना में ग्रीक वैयाकारणों का काम तो सर्वथा नगण्य तथा बेबुनियाद है। उनके व्याकरण के क्षेत्र में अध्ययन तथा परिणाम न तो वैज्ञानिक हैं और न ही भाषा शास्त्रीय तत्वों पर आधारित। उनका उद्देश्य केवल शुद्ध रूपों का ज्ञान कराना था। अमेरिका के भाषा शास्त्रियों का यह भी कहना है कि पाणिनि ने जिस

1. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ६

संस्कृत भाषा के व्याकरण की रचना की थी वह उस युग की अवश्य एक जीवन्त तथा लोक प्रचलित भाषा थी, इसी लिए इस में अनेक लौकिक तथा देशज शब्दों का समावेश है, (गुदुलु, आलिगु, कहूषय, नवाकु, वटाकु, शिग्रु, कहोढ, बह्यस्क आदि) जिन्हें पणिानि ने व्याकरण की दृष्टि से संवारा है। कुछ सूत्र तो केवल इस प्रकार के शब्दों से ही सम्बन्धित हैं।[1] उन्होंने समस्त संस्कृत वाङ्मय को दृष्ट, प्रोक्त उपज्ञात कृत और व्याख्यात इन पांच भागों में विभक्त करके नियमवद्ध किया। सन् १७७७ में मिश्र देश में सिकन्दरिया नगर के निवासी फ्रेडरिक औगुस्ट वुल्फ नामक विद्वान ने सर्व प्रथम भाषा विज्ञान के क्षेत्र में काम आरम्भ किया। इसी से आगे चलकर ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का प्रचलन हुआ। वुल्फ महोदय ने प्राचीन तथालुप्त प्राय शिलालेखों को आधार बनाकर कार्य आरम्भ किया। अब पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि पाणाणि के सैकड़ों वर्षों बाद योरोप ने इस विषय में काम आरम्भ किया जो वह ई० पू० ४०० वर्ष पहले कर चुके थे।

पाणिनि के भाषा तथा व्याकरण सम्बन्धी इस प्रकार के सूक्ष्म अनुशीलन तथा मौलिक परिणामों के आधार पर इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि निश्चय ही उन से पूर्व व्याकरण शास्त्र की एक सर्व श्रेष्ठ परम्परा स्थापित हो चुकी थी जिसके परिणाम स्वरूप व्याकरण की एक अलग शाखा ही स्थापित हो चुकी थी जिस में भाषा विज्ञान के नियम भी अनुप्राणित हैं। यही कारण है कि आधुनिक भाषा शास्त्री इस तथ्य को सर्व मत से स्वीकार कर रहे हैं कि भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुशीलन के लिए जिस प्रक्रिया या पद्धति की आवश्यकता होती है उसका प्रवर्तन पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में आज से कई सौ वर्ष पहले कर दिया था। महर्षि पाणानि की इन्हीं विशेषताओं तथा महत्वपूर्ण उपलब्धिओं के परिणाम स्वरूप समस्त संसार के भाषा वैज्ञानिक इनका नाम बड़े सम्मान तथा श्रद्धा से लेते हैं।

पाणिनि का समय और जन्मस्थान :—

पाणिनि के स्थिति काल के विषय में पर्याप्त मत भेद है। भारतीय

1. (क) नित्यं पणः परिमाणेः ।३।३।६६।
(ख) तेन रक्तं रागात्। लाक्षारोचनाट्ठक् ।।४।२।१,२।।
(ग) विभाषा भाषायाम् ।।६।१।१८१।। (घ) उदक च विपाशः ४।२।७४

तथा पश्चिमी विद्वानों ने इस विषय पर विभिन्न मत व्यक्त किए हैं। गोल्डस्टकर और डा० वेलवेकर का मत है कि पाणिनि सातवीं शताब्दी ई० पू० हुए थे। मैक्समूलर ने इन्हें ३५० ई० पू० से पहले माना है। श्रीरामकृष्ण भण्डारकर (आर० के० भण्डारकर) तथा डा० उदय नारायण तिवारी भी इसी मत का समर्थन करते हैं। श्री पाठक महोदय के अनुसार पाणिनि ७०० ई० पू० के अन्तिम भाग में हुए थे तथा जैन तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर इनके बाद हुए थे।[1]

श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डार के इस विषय में दो मत हैं। उनके प्रथम मत के अनुसार पाणिनि सातवीं ई० पू० में हुए थे।[2]

इनके दूसरे मत के अनुसार पाणिनि का समय छठी शताब्दी ई० पू० का मध्य भाग था।[3] जबकि डा० कीथ इनका समय ३५० ई० पू० के लगभग मानते हैं।[4]

,संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' नामक विशाल ग्रन्थ के लेखक तो पाणिनि का समय बहुत पीछे ले जाते हैं। उनके अनुसार पाणिनि २९५७ ई० पू० हुए थे।[5]

डा० ग्रियर्सन महोदय का कथन है कि पाणिनि का स्थिति काल ५०० ई० पू० था। मैकडानल महोदय भी लगभग इसीमत के साथ सहमत हैं। एक और पश्चिमी विद्वान वेबर ने इनका समय सिकन्दर के भारत में आने के समय से बाद माना है। इस मत का बुरी तरह खण्डन हो चुका है। लीबिश महोदय के अनुसार इस विषय में कोई भी पुष्ट, युक्ति युक्त तथा निर्णायक प्रमाण न मिलने के कारण कोई भी निश्चित राय निर्धारित करना अति कठिन है। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता तथा पाणिनि के विषय में विस्तृत अनुसन्धान करने वाले विद्वान डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि पाणिनि ई० पू० ५वीं और चतुर्थ का मध्य भाग है।[6]

---

1. भण्डारकर इंस्टीच्यूट पत्रिका ११।८३
2. कामाईकेल व्याख्यान पृ० २४१
3. 'प्राचीन भारत मुद्रा शास्त्र' १९२१ पृ० ४६
4. *History of Sanskrit literature P. 426*
5. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० १९८
6. 'पाणिनि कालीन भारत वर्ष' पृ० ४७०

अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि यह ७०० से ६०० ई० पू० के मध्य हुए होंगे।

पाणिनि का जन्म शालातुर (आधुनिक अटक नगर के समीप) नामक नगर में हुआ था। इनकी सम्पूर्ण शिक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय में हुई थी। इनकी माता का नाम राक्षी और पिता का नाम पणिन् था।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युनसांग ने पाणिनि के उक्त जन्म स्थान में इनकी एक प्रस्तर-प्रतिमा भी देखी थी, जो सम्भवतः वहां के ही लोगों के द्वारा इनकी स्मृति में स्थापित की गई थी।

कथा सरित सागर के चतुर्थ तरंग की एक कथा के अनुसार पाणानि उपवर्ष के शिष्य थे। कात्यायन, व्याड़ि शौनक, इन्द्रदत्त और पिङ्गल इनके समकालीन थे।[1] पञ्चतन्त्र के इस श्लोक के अनुसार इनकी मृत्यु व्याघ्र द्वारा हुई थी—

"सिंहो व्याकरण कर्तु रहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः"[2]

यह भी कहा जाता है कि यह प्रारम्भ में अपने छात्र जीवन में यह इतने बुद्धिमान नहीं थे। परिणामतः इन्होंने निराश होकर भगवान शकर की आराधना करनी आरम्भ करदी। भगवान ने इनकी कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर इनके समीप आकर अपना डमरू बजाया जिसकी ध्वनि समूह से चौदह सूत्र निकले जिन्हें माहेश्वर सूत्र कहते हैं। कई विद्वानों का यह भी मत है कि सम्भवतः पाणानि के महेश्वर नामक अथवा महेश्वर स्वरूप गुरू थे जिन्होंने पाणिनि का मार्ग निर्देश करने के लिए इन चौदह सूत्रों की रचना की होगी। बाद में इन्हीं को आधार मानकर पाणानि ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ अष्टाध्यायी की रचना की थी।

इनकी महत्व पूर्ण रचना अष्टाध्यायी है। इसके आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय चार पादों में विभाजित है। अष्टाध्यायी में कुल ४००० सूत्र हैं। इन में से ५ को छोड़कर शेष समस्त अपने मूल रूप में आज तक सुरक्षित हैं।

अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय में व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी संज्ञाएं

1. डॉ. बाबू राम सक्सेना कृत 'संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका पृ० २६.
2. पञ्चतन्त्र, मित्रसंप्राप्ति श्लोक ३६, जीवानन्द संस्करण।

तथा परिभाषाएं हैं। दूसरे तथा तीसरे अध्याय में समासों तथा कारकों का विस्तृत विवेचन किया गया है। चौथे तथा पांचवें अध्याय में तद्धित प्रकरण है। छठे तथा सातवें अध्यायों में तिङ् तथा सुप् प्रत्ययों से सम्बन्ध रखने वाली प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन है और आठवें अध्याय में सन्धियां तथा उनके भेदों उपभेदों की विस्तृत व्याख्या की हुई है।

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी की रचना सूत्र शैली के माध्यम से सम्भवतः इसलिए की होगी कि उस समय में लेखन-सामग्री का अभाव था तथा वैदिक काल से विषय को कण्ठस्थ करने की प्रथा चली आ रही थी। सूत्र शैली द्वारा अष्टाध्यायी की रचना करने के लिए पाणिनि को मुख्यतः इन छः साधनों का आश्रय लेना पड़ा—(१) प्रत्याहार, (२) अनुबन्ध, (३) अनुवृत्ति, (४) गण, (५) संज्ञाएं, (६) स्थान-स्थान पर सूत्रों के लागू होने वाले स्थानों के लिए पूर्वात्राऽसिद्धम् (८।२।१।) जैसी परिभाषाओं की स्थापना।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में निहित नियमों द्वारा अपनी समकालीन भाषा के सम्पूर्ण शब्द भण्डार की व्युत्पत्ति तथा सिद्धि करती है शब्द तथा उसके अर्थ पर बड़ी सूक्ष्मता से विवेचन किया है। अष्टाध्यायी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस में कोई भी शब्द निरर्थक नहीं आया है। प्रत्येक शब्द को व्याकरण की कसौटी पर परखा तथा सिद्ध किया गया है। इसलिए महाभाष्यकार पतञ्जलि इस विषय में कहते हैं:— "सामर्थ्ययोगान्नहि किंचिदस्मिन् पश्यामि शास्त्रे यदनर्थक स्यात्"[1] अर्थात् मैं अपनी सामर्थ्य के आधार पर कह सकता हूं कि अष्टाध्यायी में कुछ भी अनर्थक समाविष्ट नहीं हुआ है।

चीनी यात्री ह्यूनसांग का कहना है कि—"महर्षि पाणिनि ने पूर्ण मन से शब्द भण्डार से शब्द चुनने आरम्भ किए और १००० दोहों में सारी व्युत्पत्ति रची। प्रत्येक दोहा ३२ अक्षरों का था। इस में प्राचीन तथा नवीन सम्पूर्ण लिखित ज्ञान समाप्त हो गया। शब्द और विषय कोई भी बात छूटने नहीं पाई।"[2]

1. महाभाष्य ६।१।७७
2. 'ह्यून सांग' लेखक वाटर्स भाग १, पृ० २२१

अतः स्पष्ट है कि अष्टाध्यायी पाणिनि की सर्वोत्तम तथा अपूर्व रचना है। इसके आठ अध्याय होने के कारण ही इसका नाम अष्टाध्यायी है। वस्तुतः सारी पुस्तक 'अ, इ, उ, ण्' आदि इन १४ माहेश्वर सूत्रों पर आधारित है। आज भाषा शास्त्री इसे भाषा विज्ञान के प्रामाणिक विवेचन का मान दण्ड मानते हैं। अपनी इन विशेषताओं के कारण ही यह ग्रन्थ भाषा शास्त्रियों के लिए एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य प्रेरणा स्रोत बना हुआ है। पाणिनि ने इसकी रचना करके जो कीर्तिमान स्थापित किया वह एक प्रकाश स्तम्भ बनकर युगों-युगों के लिए विद्वानों तथा भाषा शास्त्रियों का पथ प्रदर्शक बन गया। इस ग्रन्थ की इन्हीं विशेषताओं के कारण प्रो० मैक्स मूलर ने लिखा है—"There is no Grammar in any language that could vie with the wonderful mechanism of his eight books of grammatical rules".

अष्टाध्यायी के माध्यम से पाणिनि की भाषा विज्ञान के क्षेत्र में जो मौलिक तथा महत्वपूर्ण देन है उसका संक्षिप्त सर्वेक्षण इस प्रकार है:—

(१) १४ माहेश्वर सूत्र सारी अष्टाध्यायी के मूलभूत आधार हैं।

(२) पद संस्कारः—शब्दों का प्रकृति और प्रत्यय के रूप में विश्लेषण।

(३) शब्द का यह तीन प्रकार का विभाजनः—सुबन्त, तिङन्त और अव्यय। इन तीन श्रेणियों में शब्द का विभाजन संसार भर के इस प्रकार के विभाजनों में सर्वोत्तम माना जाता है। इसी के आधार पर पाणिनि ने निरुक्तकार यास्क के नाम, अख्यात, उपसर्ग और निपात इन चार भेदों का खण्डन किया है। पश्चिमी भाषा शास्त्रियों ने शब्द के आठ भेद तो किए हैं परन्तु यह विभाजन भी पाणिनि कृत शब्द-विभाजन के समान वैज्ञाणिक नहीं है।

(४) वाक्य का महत्वः—सर्व प्रथम पाणिनि ने ही अष्टाध्यायी के माध्यम से इस तथ्य को भाषा शास्त्रियों के सामने प्रस्तुत किया कि भाषा का चरम बिन्दु वाक्य है न कि शब्द।

(५) पाणिनि ने ही सर्व प्रथम नाम धातु का सिद्धान्त अष्टाध्यायी के द्वारा विद्वानों के सामने प्रस्तुत किया।

(६) वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत का भेद भी पाणिनि ने ही इस ग्रन्थ द्वारा किया है ।

(७) प्रत्येक संस्कृत शब्द का व्युत्पत्ति पूर्वक विश्लेषण भी भाषा के क्षेत्र में सर्व प्रथम पाणिनि की ही देन है ।

(८) अष्टाध्यायी की सूत्र पद्धति बड़ी ही वैज्ञानिक है। पाणिनि ने इसके द्वारा इस शुष्क विषय को सरल तथा सुवोध बना दिया है। सूत्र विन्यास ऐसा अद्भुत शैली में किया हुआ है कि व्याकरण का इतना विस्तृत विषय इस में सीमित हो गया हुआ है ।

(९) प्रत्याहार बनाने के ढंग का आविष्कार तथा सुबन्त, तिङन्त, तद्धित, कृदन्त, गुण, वृद्धि, दीर्घ, सम्प्रसारण, आगम, आदेश, अनुबन्ध (भित्, नित्, चित् आदि) गण, लुक्, श्लु, टि, घु, (संज्ञाए) आदि के द्वारा भाषा का अध्ययन उपस्थित करना पाणिनि की प्रखर मेधा की मौलिक उद्भावना है ।

(१०) पाणिनि ने व्याकरण के नियमों एवं सिद्धांतों के द्वारा संस्कृत भाषा का ऐसा स्तर निश्चित कर दिया जो सदा के लिए पक्का हो गया ।

(११) उन्होंने एकाक्षर धातुओं की सहायता से समस्त शब्द भण्डार को योजना बद्ध कर दिया है । इनके साथ उपसर्ग तथा प्रत्यय जोड़ कर हजारों शब्द बनाए जा सकते हैं । उपसर्ग एवं प्रत्ययों की सहायता से बहुधा अर्थ भी बदल जाते हैं। इसी लिए कहा गया है— "उपसर्गेण धात्वर्थः बलादन्यत्रनीयते" अर्थात् उपसर्ग के संयोग से धातु का अर्थ बलपूर्वक बदल दिया जाता है । पाणिनि के द्वारा वाक्य को ही

भाषा की इकाई स्वीकार करने में सम्भवतः यही कारण है। परवर्ती भाषा शास्त्रियों ने इस मत का सर्व सम्मति से स्वागत किया हे ।

(१२) अष्टाध्यायी में पाणिनि ने ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से प्रयत्न स्थान तथा ध्वनियों का जो वर्गी करण किया है वह भी भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अपने ढंग का सर्वप्रथम तथा अनूठा प्रयत्न माना जाता है। इसी प्रकार स्वरों पर सूक्ष्म विचार भी बड़ा विचित्र है। पश्चिमी विद्वानों ने भी इसे यथावत् स्वीकार कर लिया हुआ है ।

(१३) अष्टाध्यायी के माध्यम से पाणिनि ने हमारे सम्मुख वैदिक तथा लौकिक संस्कृत का तुलनात्मक दिवेचन प्रस्तुत किया है। योरोपीय विद्वानों ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में जिस कार्य का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में किया था पाणिनि ने वही काम ई० पू० ५०० से भी पहले आरम्भ कर दिया था। यही कारण है कि अष्टाध्यायी में निहित भाषा विज्ञान सम्बन्धी सामग्री पर जब आज का भाषाशास्त्री मनन करता है तो उसे भरसक विस्मित हो जाना पड़ता है तथा उसे यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता है कि इस विषय में भाषा विज्ञान जगत् पाणिनि का अवश्य आभारी है और चिर ऋणी है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि यदि वर्तमान युग का भाषा विज्ञान का विद्यार्थी सर्व-प्रथम अष्टाध्यायी का अध्ययन कर ले तो उस का अग्रिम मार्ग अवश्य सुगम हो जाता है।

(१४) अष्टाध्यायी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस में समाविष्ट एक भी शब्द निरर्थक नहीं है। इस सन्दर्भ में महाभाष्यकार पतञ्जलि की यह उक्ति सर्वथा सत्य है—"प्रमाण भूत आचार्यो दर्भ पवित्रपाणिः शुचावनकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्, किं पुनरियता सूत्रेण।"[1]

कुशा से पवित्र हाथों वाले लब्धप्रतिष्ठ तथा व्याकरण के प्रख्यात आचार्य पाणिनि ने पूर्वाभिमुख बैठ कर बड़े एकाग्रचित्त से तथा प्रयत्न पूर्वक अष्टाध्यायी के सूत्रों का प्रणयन किया, अतः इन में एक भी वर्ण निरर्थक नहीं हो सकता है, सम्पूर्ण सूत्र की तो बात ही दूर है।

हां यह मानना पड़ेगा कि महर्षि पाणिनि की संक्षिप्तीकरण पद्धति (सूत्र पद्धति) का परवर्ती वैयाकरणों ने अनुकरण करके भाषा को अति कठिन कर दिया है। इस विषय में तो उन्होंने यहां तक दिया है—"अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः।"

अष्टाध्यायी की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही देशी तथा विदेशी विद्वानों ने इस की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। संस्कृत-इंगलिश शब्द कोश के सम्पादक योरोपीय विद्वान् सर मोनियर विलियम ने अष्टाध्यायी को

1. महाभा० ४।२।६६

भाषा शास्त्र और व्याकरण के क्षेत्र में मनुष्य का ऐसा सर्वोत्तम आविष्कार माना है जिस की पुनरावृत्ति असम्भव है। इसी प्रकार कोलब्रुक, सर डबलयू, डबलयू, हण्टर, लेकिन ग्राड के विद्वान् प्रो. टी. शेरवात्सकी आदि विद्वानों ने पाणिनि की अष्टाध्यायी की प्रशंसा की है।

अष्टाध्यायी के अतिरिक्त पाणिनि ने धातुपाठ, गणपाठ, उणादि सूत्र, लिंगानुशासन, शिक्षा, जाम्बवती विजय (महाकाव्य) द्विरूप कोश (इसकी हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन में है) आदि पुस्तकों की रचना की थी जिन में से जाम्बवती विजय उपलब्ध नहीं है।

उपर्युक्त इस संक्षिप्त सर्वेक्षण के आधार पर यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि पाणिनि ने संस्कृत भाषा पर अपनी गहरी तथा स्थायी छाप छोड़ी है। यही कारण है कि परवर्ती वैयाकरण पाणिनि की नकल करने में भी सफलता प्राप्त नहीं कर सके हैं। प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वर्तमान युग की भाषाओं में स्थानीय विशेषताओं तथा प्रभावों, राष्ट्रीय तथा सामाजिक आदि स्तरों के आधार पर अल्प या अधिक भेद अवश्य है ठीक इसी प्रकार पाणिनि कालीन भाषाओं और लौकिक तथा वैदिक संस्कृत का रहा होगा। पाणिनि काल में गुरुकुलों तथा ऋषि आश्रमों में जिस शिष्ट उदीच्य भाषा का प्रचलन था वही वर्तमान पश्चिमी पञ्जाबी (लहन्दा) का प्रारम्भिक रूप था।

वही भाषा पाणिनि के अध्ययन और व्याकरण का आधार बनी थी। इस विषय में गोल्ड स्टकर, डा. कीथ, लीबिश आदि योरोपीय तथा डा. वासुदेव शरण अग्रवाल, सुनीति कुमार चाटुर्ज्या डा. बाबू राम सक्सेना आदि भारतीय विद्वान् लगभग सहमत हैं। इन सभी का यह मत है कि यदि पाणिनि कालीन संस्कृत को बोल चाल की भाषा स्वीकार न किया जाये तो उनके कितने ही सूत्र बेकार हो जाते हैं क्योंकि उन्होंने उनका निर्माण केवल जनसाधारण की भाषा को ध्यान में रख कर ही किया था।[1] कुछ खोजों के आधार पर यह स्वीकार किया जाता है कि पाणिनि पारसीकों तथा उनके सेवकों ग्रीकों तथा यवनों से अवश्य परिचित

---

1. बोल-चाल की भाषा से सम्बन्धित सूत्र—३।२।२४, ३।२।२५, ५।२।२, ५।२।३१, ५।४।५८, ३।२।१०८ आदि।

थे। प्रसिद्ध अमरीकी भाषा शास्त्री श्री ब्लूम फील्ड महोदय अपनी पुस्तक में कई स्थलों पर पाणिनि की प्रशंसा करते हैं। एक स्थान पर वह लिखते है—"वास्तव में वह भारत देश था जहां ऐसे ज्ञान का उदय हुआ जो योरोप के लोगों में भाषा सम्बन्धी विचार धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करने में समर्थ सिद्ध हुआ। जिस प्रकार आज हमारे देश के विभिन्न वर्गों की भाषाओं में अन्तर है उसी प्रकार प्राचीन काल में हिन्दुओं में भी विभिन्न सामाजिक स्तर के लोगों की भाषाओं में अन्तर था। उस समय कुछ ऐसी परिस्थिति आ गई थी कि उच्चवर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों की भाषा को अपनाने के लिए बाध्य हो रहे थे। ऐसी स्थिति में हिन्दु वैयाकरणों का ध्यान वैदिक भाषा की ओर से निम्न वर्ग के लोगों की भाषा की ओर गया और वे उस भाषा के नियम-उपनियम बनाने में प्रवृत्त हुए जिसे आज संस्कृत कहते हैं। समय की गति से इस भाषा के विस्तृत व्याकरण, कोश तथा दूसरे प्रकार साहित्य का निर्माण हुआ।"

डा. कीथ का कहना है—"In comparison with the work of Greek grammarians Panini is on a totally different plane in this regard."[1]

प्रसिद्ध भाषा शास्त्री श्री बैंजामिन ने १९४० ई० में एक लेख में लिखा था—"जहां तक हमें ज्ञात है, आज के रूप में ही ईसा से कई शताब्दियाँ पूर्व पाणिनि ने इस विज्ञान (भाषा विज्ञान) का शिलान्यास किया था। पाणिनि ने उस युग में ही वह ज्ञान प्राप्त कर लिया था जो हमें आज उपलब्ध हुआ है। संस्कृत भाषा के वर्णन अथवा इसे विषय बद्ध करने के लिए पाणिनि के सूत्र बीज गणित के जटिल सूत्रों (फार्मूलों) के समान हैं। ग्रीक लोगों ने वस्तुतः इस ज्ञान की अधोगति कर रखी थी। इन की कृतियों से ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक विचारक के रूप में हिन्दुओं के मुकाबले में ये (ग्रीक लोग) कितने अधिक निम्न स्तर के थे। उन की भ्रान्ति पूर्ण विचार धारा का प्रभाव प्रायः दो सहस्र वर्षों तक चलता रहा। वास्तव में १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही जब से पश्चिम ने

1. *History of Sanskrit literature P. 425*

पाणिनि को प्राप्त किया है तभी से आधुनिक वैज्ञानिक भाषा शास्त्र का आरम्भ होता है।"

उपर्युक्त सभी प्रमाण इस बात के साक्षी है कि वास्तव में ही पाणिनि भाषा विज्ञान के आदि आचार्य थे।



हिन्दी में कारकवाद

डॉ॰ ओमप्रकाश गुप्त

(१) हिन्दी के निम्नांकित विश्लिष्ट-व्याकरणिक प्रत्यय हिन्दी-व्याकरण की पुस्तकों में समस्या तथा चर्चा का विषय रहे हैं :

—ने; —को; —से; —में; — के;

—का, —के, —की; —पर; —तक;—० (शून्य)।

(२) विभिन्न वैयाकरणों ने इन प्रत्ययों के लिए इन तीन नामों का प्रयोग किया है—भक्ति, कारक-चिह्न और परसर्ग। इन प्रत्ययों का प्रयोग पदों के पश्चात् होता है। ये प्रत्यय पदों के साथ मिलाकर भी लिखे जाते हैं और उनसे अलग भी। उच्चारण में भी यदि पद के पश्चात् थोड़े विराम के बाद इनका प्रयोग हो, तो भी अर्थ में कोई विकार नहीं होता। जैसे—

/ राम ने काम किया /

अथवा

/ राम ने काम किया / ।

(३) आचार्य किशोरीदास बाजपेयी इन्हें 'विभक्ति' कहना उपयुक्त समझते हैं। उनके शब्दों में "कुछ लोग हिन्दी की 'ने', 'को' आदि विभक्तियों को परसर्ग कहते हैं। यह एक नया अड़ंगा, नई झंझट ! 'विभक्ति' शब्द हमें परम्परा से प्राप्त है, प्रसिद्ध है। उसकी जगह परसर्ग

चलाना किस काम का ? क्या लाभ"[1] उनके मतानुसार, "......कारक विभिन्न विभक्तियों से प्रकट होते हैं......कारक के साथ लगने वाली विभक्ति को कारक-विभक्ति कहते हैं।"[2] अर्थात्, विभक्तियों का कार्य कारकों को प्रकट करना है। कारकों का विवेचन करते हुए वे कहते हैं कि 'क्रिया के साथ जिसका सीधा सम्बन्ध हो, उसे कारक कहते है।"[3]

पण्डित कामताप्रसाद गुरु के अनुसार, "संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है, उसे कारक कहते हैं।......कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें विभक्तियां कहते हैं। विभक्तियों के योग से बने हुए रूप विभक्त्यन्त शब्द वा पद कहलाते हैं।"[4]

स्पष्ट ही, पं० किशोरीदास वाजपेयी और पं० कामताप्रसाद गुरु की कारक सम्बन्धी परिभाषाओं में भिन्नता है। दूसरी परिभाषा हिन्दी-व्याकरण की दृष्टि से आवश्यक थी।

४. वास्तव में 'विभक्ति' शब्द संस्कृत-व्याकरण का है। वहां विभक्ति उस रूप का नाम है, जो अर्थ-तत्त्व को वाक्य में प्रयोगार्ह बनाने के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ, हिन्दी में /बालक/ को वाक्य में प्रयोगार्ह बनाने के लिए निम्नांकित रूप होते हैं:

बालक, बालको, बालकों।

उक्त रूपों (संस्कृत-व्याकरण के अनुसार 'विभक्तियों') की सिद्धि के लिए क्रमशः—० (शून्य),—ओ,—ओं प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। ये संश्लिष्ट व्याकरणिक प्रत्यय हैं। हिन्दी में ऐसे प्रत्यय अर्थ-तत्त्व में परिवर्त्तन करके, उसे वाक्य में प्रयोग की क्षमता प्रदान करते हैं। लेकिन, हिन्दी में ऐसे प्रत्ययों के पश्चात् भी ने,—को आदि चिह्नों के प्रयोग की अपेक्षा रहती है।

५. डॉ० बाबूराम सक्सेना का कथन है कि "संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण के रूपों को 'विभक्ति' कहते हैं। और क्रिया के साथ विभक्तियों

---

1. हिन्दी-शब्दानुशासन, पृ० १७१।
2. वही, पृ० १४०।
3. वही, पृ० २१६।
4. हिन्दी-व्याकरण : पं० कामताप्रसाद गुरु, पृ० २१६।

के सम्बन्ध को कारक कहते है......यदि किसी क्रिया के साथ किसी विभक्ति का सम्बन्ध न हो, तो उस विभक्ति को कारक न कहेंगे।...... इसीलिए, संस्कृत में षष्ठी को कारक नहीं माना जाता।"[1] निःसन्देह, हिन्दी के ये विश्लिष्ट प्रत्यय क्रिया के साथ विभक्ति का सम्बन्ध प्रकट करते हैं, जैसा कि निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट हैं :

राम ने रावण को तीर से मारा।

तो फिर, इन्हें 'कारक-चिह्न' क्यों न कहा जाय? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ये प्रत्यय केवल क्रिया के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं करते, अन्य व्याकरणिक कोटियों का पारस्परिक सम्बन्ध भी स्पष्ट करते हैं।

मैं राम के साथ वहां गया।

उक्त वाक्य में—के प्रत्यय राम (संज्ञा) और साथ (अव्यय) के मध्य सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। यह अलग बात है कि 'राम के साथ' पूरा वाक्यांश क्रिया का पूरक बनकर प्रस्तुत हुआ है। इसी प्रकार, 'राम का हाथ' में '—का' दो संज्ञा-पदों के मध्य सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। घर से स्कूल तक दो मील की दूरी है—वाक्य में –से और–तक का सीधा सम्बन्ध क्रिया के साथ नहीं है। इसी प्रकार, उदाहरण (१) में '—के साथ' का प्रयोग कुछ इस ढंग से हुआ है कि अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए —के और साथ का प्रयोग एक इकाई के रूप में हुआ है। इस समस्या की विशेष चर्चा प्रकरण (७) में की गई है।

६. समस्या और भी उलझ जाती है, जब हम देखते हैं कि एक ही रूप (संस्कृत-व्याकरणानुसार विभक्ति) क्रिया के साथ अनेक प्रकार के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है।

लड़कों ने पानी पिया, लड़कों को पानी पिलाया गया, लड़कों का पानी औरों को न पिलाओ, लड़कों के लिए पानी लाओ, लड़कों के द्वारा पानी पिलाया गया—वाक्यों में एक ही रूप (लड़कों) भिन्न अर्थों के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। निष्कर्ष यह कि हिन्दी में 'कारक' और 'विभक्ति' के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए हम कोई निश्चित नियम नहीं खोज पाते। यथानिर्दिष्ट तीन वाक्यों में—को प्रत्यय क्रमशः कर्तृ-विषयक,

1. भाषाविज्ञान : डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० ८२।

कर्म-विषयक तथा कालवाचक क्रियाविशेषण को क्रिया से सम्बद्ध करने के लिए प्रयुक्त हुआ है :

१. आवेदक को ड्रिलिंग मशीन पर काम करना होगा।

२. अमेरिका भारत को सहायता देगा।

३. शाम को सैर चलेंगे।

इस प्रकार, इन प्रत्ययों का कार्य विभक्ति और कारक दोनों से कहीं अधिक व्यापक है।

७. ये प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम, क्रियार्थक संज्ञा, संज्ञावत् प्रयुक्त विशेषण-पदों के साथ ही नहीं, समय और स्थानवाचक अव्ययों के साथ भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे : जब से, कब से, यहां से, जहां पर, कहां की। इन प्रत्ययों के साथ अव्यय का प्रयोग प्राय: ऐसी संरचना करता है कि संयुक्त रचना एक इकाई के रूप में प्रयुक्त होती है। उदाहरणार्थ :—के लिए,—की ओर से,—के यहां,—के साथ,—से हटकर,—को लेकर इत्यादि। डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा का कथन है कि 'कारकवाद रूढ़ि और मुहावरे की सरहद पर प्रतिष्ठित है।' इन प्रत्ययों के इसी व्यापक प्रयोग को देखते हुए श्री कामताप्रसाद गुरु को कहना पड़ा कि "शब्दों के सभी प्रकार के सम्बन्ध सूचित करने के लिए कारकों की संख्या क्यों न बढ़ाई जाय? यदि 'नहाने को' कारक माना जाता है, तो 'नहाने के लिए' को भी कारक मानना चाहिए।"[1] परन्तु, कारकों की संख्या बढ़ा देने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता; क्योंकि इन प्रत्ययों द्वारा द्योतित सम्बन्धों की सीमा बांधना एक असम्भव कार्य है। श्री कामताप्रसाद गुरु स्वयं मानते हैं कि "......इनको सम्बन्ध-सूचक मानने से संज्ञाओं की प्रचलित कारक-रचना की रीति में हेर-फेर करना पड़ेगा, जिससे बड़ी गड़बड़ उत्पन्न होगी।"[2]

८. उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन प्रत्ययों को 'विभक्ति' अथवा कारक-चिह्न कहने की अपेक्षा परसर्ग कहा जाय। यों, कहा जा सकता है कि 'शब्द' के अन्त और परसर्ग के पूर्व प्रयुक्त होने वाला

1. हिन्दी-व्याकरण : पं० कामताप्रसाद गुरु, पृ० २३४।
2. नागरी-प्रचारिणी-लेखमाला। पं० कामताप्रसाद गुरु तथा श्रीरामचन्द्र वर्मा, पृ० १५३।

संश्लिष्ट-व्याकरणिक प्रत्यय तो विभक्ति-प्रत्यय है; इसी प्रत्यय के योग से शब्द 'पद'-रूप में प्रस्तुत होता है। इसके पश्चात् जो विश्लिष्ट प्रत्यय प्रयुक्त होता है, वह 'परसर्ग' चरम प्रत्यय है। चरम प्रत्यय से अभिप्राय उस प्रत्यय से है, जिसके पश्चात् कोई अन्य प्रकार का प्रत्यय प्रयुक्त नहीं हो सकता।

९. परसर्गों का 'अव्ययों' के साथ प्रयोग : हिन्दी में चार प्रकार के अव्यय पाये जाते हैं :— १. क्रियाविशेषण। २. सम्बन्धसूचक। ३. समुच्चयबोधक और ४. विसमयबोधक। इन में से अन्तिम दो प्रकार के अव्ययों के साथ किसी परसर्ग का प्रयोग नहीं होता। क्रियाविशेषण तथा सम्बन्धसूचक अव्ययों के साथ प्रयुक्त होकर परसर्ग एक पदावली की संरचना करते हैं; जैसा कि ऊपर परिच्छेद (७) में कहा गया है। पदावली की संरचना में परसर्गों की तीन स्थितियां हो सकती हैं :

(क) जब परसर्ग अव्यय के पूर्व प्रयुक्त हो। जैसे : -की ओर, की अपेक्षा,—के यहां,—के बाद,—के द्वारा, —के मुताबिक इत्यादि।

(ख) जब परसर्ग अव्यय के पश्चात् प्रयुक्त हो। जैसे:— उपलक्ष्य में,—प्रकार की,—आगे को इत्यादि।

(ग) जब परसर्ग दो अव्ययों के मध्य स्थित हो। जैसे:—की ओर से,—के तत्वावधान में,—के आधार पर इत्यादि।

स्पष्टीकरण:—यहां यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि परसर्ग जब पद के पूर्व प्रयुक्त हो रहा है (जैसे '—के आगे'), तब इसे परसर्ग कहना कहां तक युक्तिसंगत है? इस शंका का समाधान यह है कि परसर्ग अव्यय पूर्व तो प्रयुक्त होता है, किन्तु परसर्ग और अव्यय से विरचित संयुक्त पदावली एक इकाई के रूप में प्रयुक्त होती है। जब यह इकाई वाक्य में प्रयुक्त होती है, तब परसर्ग-गत सम्बन्ध की अभिव्यक्ति केवल परसर्ग के द्वारा न होकर, सम्पूर्ण पदावली के द्वारा होती है; इसी कारण इसे परसर्गीय पदावली की संज्ञा दी गई है। यहां यह भी कथनीय है कि जब संज्ञा अथवा विशेषण का प्रयोग अव्यय की भांति हो, तब भी परसर्गीय पदावली की रचना हो जाती है। जैसे : **दूती के हाथ पत्र पठाया; इस पद के लायक आदमी नहीं मिलता।**

१०. परसर्ग का प्रयोग 'निपात' के पहले या पीछे भी हो सकता है। जैसे : घण्टे भर की देर है, घण्टे भर की तो बात है, राम हो ने कहा था, राम ही ने तो कहा था, राम ने ही कहा था, राम ने ही तो कहा था, राम ने कहा ही था, आपकी चर्चा आपकी ही चर्चा, आप ही की चर्चा इत्यादि।

ऐसे प्रयोगों में निपात अथवा परसर्ग अपने प्रकृत अर्थ की अभिव्यक्ति करता है।



डोगरी में प्रचलित उर्दू शब्दावली

श्याम लाल शर्मा

राजनीतिक क्षेत्रों में बहुचर्चित रियासत जम्मू कश्मीर में पीरपञ्जाल की पर्वत शृंखला रियासत को दो स्पष्ट भागों में विभक्त करती है। उत्तरी भाग में कश्मीर की घाटी और पीर के दक्षिण में जम्मू प्रान्त। तीसरी इकाई लद्दाख प्रदेश है जो अपने दुर्गम पर्वतों, असह्य शीतल वातावरण के कारण पृथक ही सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन रखता है। इन तीनों इकाइयों को महाराजा के शासन ने एक सूत्र में पिरोये रखा है।

रियासत की तीन क्षेत्रीय भाषायें विधान द्वारा स्वीकृत हैं। लद्दाखी, कश्मीरी और डोगरी। लद्दाखी हिन्द-तिब्बती परिवार की भाषा है। इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म की प्रधानता है। कश्मीरी को दर्द परिवार की भाषा कहा जाता रहा है परन्तु पद्म भूषण डा॰ सिद्धेश्वर वर्मा जी के पहाड़ी बोलियों के अनुसन्धान के अनुसार कश्मीरी में इण्डो आर्यन परिवार के गुण ही प्रमुख दृष्टि गोचर होते हैं। जम्मू प्रान्त की डोगरी हिन्द-आर्यन परिवार की भाषा है और भद्रवाही, किश्तवाड़ी, रुधारी खशाली, रामबनी, गोजरी तथा चम्याली, भटयाली कांगड़ी आदि रूपों में चम्बा, कांगड़ा हिमाचल प्रदेश तथा साथ मिलते पंजाब के उत्तरी प्रदेश में बोली जाती हैं। इन इलाकों के लोग अपने आप को डोगरा कहते हैं सेना में भी डोगरा ही लिखे जाते हैं और इस प्रमुख वृत्ति के लिये ही प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान लेख का सम्बन्ध केवल जम्मू प्रांत की डोगरी भाषा से है। डुग्गर शब्द के विषय में द्विगर्त,[1] डूंगर,[2] दुर्गर[3] आदि व्युत्पत्ति के भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत प्रचलित हैं।

उच्चारण आदि के भेद के कारण डोगरी अपने ऊपर लिखे भिन्न २ रूपों तथा नामों में मिलती है परन्तु रक्त एक है। भौगोलिक दृष्टि से डुग्गर प्रदेश प्रायः अलग थलग रहा है। डुग्गर देश के उत्तर में वि ाल भीम काय पर्वत मालाओं ने यातायात का बहुत कम अवसर दिया। बहुत पहले के समय में पंजाब और डुग्गर प्रदेश के दर्म्यान भीषण जगलों और दुरूह तथा कण्टाकीर्ण प्रदेश ने भी इसे पृथक रखा। पश्चिम की ओर से होने वाले आक्रमण भी कश्मीर के सौन्दर्य के आकर्षण के कारण होते थे और डुग्गर प्रदेश प्रायः पृथक ही रहता था।

डा० अतहर अब्बास द्वारा लिखित मध्यकालीन भारत के इतिहास में नादिर शाह के जम्मू के पास से निकल जाने मात्र का संकेत है।

छोटे २ राज्यों में बण्टा डुग्गर प्रदेश अपना स्वतन्त्र परन्तु पृथक जीवन बिताता रहा। इस लिये बाहर का विशेष प्रभाव इस के सांस्कृतिक जीवन पर बहुत कम रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी में महाराजा गुलाब सिंह ने अपने बाहूबल से जम्मू कश्मीर लद्दाख को एक किया तथा एकता के सूत्र में पिरोया। महाराजा के डोगरा वंशी होने के कारण स्वाभाविक रूप से डोगरा सेना तथा डोगरा अफसरों के कारण डोगरी का प्रभुत्व होता था। महाराजा गुलाब सिंह के सुपुत्र महाराजा रणवीर सिंह का शासन काल डोगरा शासन की सुव्यवस्था तथा सर्वांगीन उन्नति का समय था। डोगरी राज भाषा बनी। संस्कृत के महान ग्रन्थों तथा न्याय, चिकित्सा और ज्योतिष तथा कर्म काण्ड

---

1. पुरानों में वर्णित त्रिगर्त के आधार पर जम्मू प्रदेश में मानसर और सूईंसर की झीलों के आधार पर इसे द्विगर्त कहा गया है।
2. राजस्थानी डूंगर पहाड़ी टीले को कहते हैं। तथाकथित बाह्य आक्रमणों के समय, राजस्थान से निकले हुए लोगों का जम्मू प्रदेश में बस जाना और डूंगर के आधार पर प्रदेश को डुग्गर की संज्ञा देना।
3. प्रो. कील हार्न द्वारा प्राप्त ताम्रपट्ट; तथा राजतरंगिणी में वर्णित दुर्गर प्रदेश के आधार पर उन गुणों से सम्पन्न डुग्गर प्रदेश।

सम्बन्धी ग्रन्थों रणवीर ज्योतिर्निबन्ध, रणवीर भाव प्रकाश, रणवीर व्रत रत्नाकर का प्रकाशन हुआ। परन्तु इन ग्रन्थों की भाषा हिन्दी, व्रज भाखा से प्रभावित तथा स्थानीय शब्दावली और उच्चारण की छाप लिये हुए है। महाराजा के अफसरों में अधिकतर पंजाब से होते थे और पंजाब में उर्दू की प्रभुता होने के कारण डोगरी भाषा में उर्दू का प्रभाव बढ़ने लगा।

महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल में उर्दू राजभाषा हो गई। पंजाबी हिन्दू अफसर तथा मुस्लमान अफसर मुकम्मल तौर पर उर्दू को ही प्रश्रय देते थे। परन्तु जनता का शासन से सम्बन्ध न्याय और सेना की दृष्टि से ही आता था इस लिये डोगरी में न्यायालय और दफतरी काम सम्बन्धी तथा सेना सम्बन्धी शब्दावली में उर्दू का बोल वाला हुआ। अदालती काम काज सारा उर्दू में होने लगा। जनता का बहु भाग खेतीबाड़ी से सम्बन्ध रखता था। इस लिये दीवानी मुकदमें खूब होते थे। मालिया आब्याना आदि तथा जमीन की पैमाइश इत्यादि और न्याय सम्बन्धी प्रायः शब्दावली उर्दू से प्रभावित हो गई। रियासत जम्मू कश्मीर की जनता का बहु भाग मुस्लमान होने के कारण सामाजिक जीवन में कुछ पेशों व्यवसायों सम्बन्धी शब्दावली में भी उर्दू का जोर हुआ। धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक, तथा ललितकलात्मक सम्बन्धी क्षेत्र प्रायः अछूते ही रहे अथवा उर्दू से बहुत कम प्रभावित हुए। उर्दू भाषा स्वयं अर्बी फारसी से प्रभावित भाषा है। इस लिए डोगरी भाषा में उर्दू फारसी तथा अर्बी के शब्द तत्सम, अर्धतत्सम तथा तदभव रूपों में विद्यमान है और भाषा के अभिन्न अंग बन गये हैं। इन को प्रशासनिक प्रायः न्यायालय और दफतरी कामकाज सम्बन्धी फौज सम्बन्धी, पेशे, तथा अन्य छोटे-छोटे भागों में विभक्ति किया गया है। छोटे २ विभागों को सामान्य वर्ग में सम्मलित किया गया है।

प्रशासनिक

न्यायालय

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
दालत	अदालत	न्यायालय
बकील	वकील	वकील

		(दूसरे का पक्ष मंडन करने वाला)
बकालतनामा	वकालतनामा	वकील को दिया गया अधिकार पत्र
हाकम	हाकिम	अधिकारी, अफसर
मुन्सफ	मुन्सिफ	न्यायाधीश (न्याय करने वाला)
नाजर	नाज़र	देखना वाला, द्रष्टा
अर्जी	अर्ज़ी	याचिका
दर्खास्त	दरख्वास्त	प्रार्थना पत्र
दावा	दावा	स्वत्व, अभियोग
दस्तावेज	दस्तावेज़	वह कागज जिस में कुछ आदमियों के बीच में व्यवहार की बात लिखी हो और व्यक्तियों के हस्ताक्षर हों
फरिस्त	फहरिस्त	सूची
रुक्का	रुक्का	छोटा पत्र, पुर्जा
पर्वाना	पर्वाना	आज्ञा पत्र
सालस	सालिस	दो पक्षों में समझौता कराने वाला
जामन	ज़ामिन	जो किसी की जमानत करे
दलील	दलील	प्रमाण
इन्तजाम	इन्तज़ाम	प्रबन्ध
श्तेहयार	इश्तहार	विज्ञापन
सुलह	सुलह	सन्धि
सलाह	सलाह	सम्मति
ऐहलमद	अहलमद	अदालत का प्रधान मुन्शी
दस्ती चिट्ठी	दस्ती चिट्ठी	व्यक्ति द्वारा (डाक द्वारा नहीं) भेजी जाने वाली चिट्ठी
गश्ती चिट्ठी	गश्ती चिट्ठी	घूमती हुई चिट्ठी
स्याह नवीस	स्याह नवीस	मुनशी
मचलका	मचलका	वह प्रतिज्ञा पत्र जिसमें कोई

		ग्रनुचित काम न करने ग्रौर निश्चित तिथि पर ग्रदालत में उपस्थित होने की प्रतिज्ञा हो।
मुलजम	मुल्ज़िम	दोषी
सही	सही	ठीक
शहादत	शहादत	गवाही, प्रमाण
ग्रसासा	ग्रसासा	सर्माया
रहननामा	रहननामा	बन्धक, गिरवी पत्र
बैंनामा	बैनामा	विक्रय पत्र
कसूर	कसूर	दोष, त्रुटि
माफी	मुआफी	क्षमा
फर्याद	फरियाद	प्रार्थना, विनति
स्पारश	सिफारिश	किसी के पक्ष में कुछ कहना
जुल्म	जुल्म	ग्रत्याचार
मर्दम शमारी	मर्दम शुमारी	जनगणना
जमीन	ज़मीन	पृथ्वी, भूमि
पमैंश	पैमाइश	मापना
पटवारी	पटवारी	जमीन की पैमाइश करने वाला
गरदौर	गिरदावर	घूमकर काम की जांच करने वाला
कानूगो	कानूनगो	माल विभाग का कर्मचारी जो पटवारियों के कागज़ों की जांच पड़ताल करता है
दरोगा	दारोगाह	देखभाल करने वाला
तसीलदार	तहसीलदार	कर वसूल करने वाला तथा माल के छोटे मुकदमों का फैसला करने वाला
बजीर वजारत	बज़ीर वजारत	ज़िले का हाकम
जर्माना	जुर्माना	दण्ड, रुपये पैसे के रूप में
हर्जाना	हर्जाना	किसी के नुकसान की पूर्ति
करारनाम	इकरारनामा	प्रतिज्ञा पत्र

बालग	बालिग	व्यस्क
नबालग	नाबालिग	जो अभी बाल्यावस्था पार न कर चुका हो।
माल मत्ता	माल मुताअ	धन दौलत
हुकम	हुकम	आज्ञा
बैतलमाल	बैतउलमाल	लूट का खजाना, लावारिस; आवारा
स्पुर्द	स्पुर्द	सौंपना
दस्कत	दस्तखत	हस्ताक्षर
स्हिज्जत	हैसीयत	स्थिति, पदवी
खौफ	खौफ़	भय
रयाया	रिआया	प्रजा
रय्यत	रैय्यत	किसान

सेना सम्बन्धी

फौज	फौज	सेना
स्पाही	सिपाही	सैनिक
जुआन	जवान	सैनिक
हवालदार	हवालदार	सैनिकों का छोटा अफसर
जमेदार	जमादार	हवालदार से ऊपर का अफसर
बन्दूक	बन्दूक	बन्दूक
तोफ	तोप	तोप
प्यादा	प्यादः	पैदल चलने वाला
रसाला	रिसाला	घुड़ सवार सेना
तोफ खाना	तोप खाना	तोप खाना
दुश्मन	दुश्मन	शत्रू
खन्दक	खन्दक	खाई
तकमा	तमगः	पदक
कैद	कैद	कारावास
कवैद	कवायद	सिद्धान्त
किला	क़िला	दुर्ग
डेरा	डेरा	परिवार, तम्बू

बरुद	बारूद	दारू
महीम	मुहिम	कठिन काम
जसूस	जासूस	गुप्तचर
बक्शी	बख़्शी	वेतन बांटने वाला अफसर

पेशे

सराफ	सराफ	सोने चान्दी का व्योपारी
कातब	कातिब	लिखने वाला
अखबार नवीस	अख़बार नवीस	अखबार लिखने वाला
दर्ज़ी	दर्ज़ी	कपड़े सीने वाला
धोबी	धोबी	धोबी, कपड़े धोने वाला
कसाई	कसाई	वधिक, बूचड़
बावर्ची	बावर्ची	रसोइया
नानबाई	नानबाई	रोटी बनाने वाला
राजड़ा	राज	मकान वनाने वाला
बागबान	वागवान	माली
दरेस	दर्वेश	दर दर गाकर भीख मांगने वाला
सब्जी फरोश	सब्जी फरोश	सब्जी वेचने वाला
जिल्तसाज	जिल्दसाज	जिल्द बांधने वाला
कली गिर	कलई गिर	बर्तन कलई करने वाला
सारबान	सारवान	ऊंट हांकने वाला
सइस	साईस	घोड़ों का रक्षक

वस्त्र

जामा	जामा	लिबास
पजामा	पाजामा	पाजामा
पोस्तीन	पोस्तीन	खाल का बना हुआ कोट जिसके नीचे की ओर बाल होते हैं
अन्दरस	अन्दरस	कोट के अन्दर लगाने वाला कपड़ा

शेरवानी	शेरवानी	लम्बा कोट
दस्तार	दस्तार	पगड़ी
अचकन	अचकन	लम्बा कोट
गुलुबन्द	गुलूबन्द	गले के लपेटने का कपड़ा
सलवार	शलवार	पेशावरी पाजामा
संजाफ	संजाफ	गोट, किनारा
जरीदार	जरीदार	सुनहरी

संगीत

तबला	तबला	ताल देने का मृदंग जैसा संगीत का साधन
सितार	सितार	सितार
मिजराब	मिज़राब	सितार बजाने का छल्ला
रियाज	रिग्राज	अभ्यास, साधना
उस्ताद	उस्दाद	गुरु

खेल

कुश्ती	कुश्ती	मल्ल युद्ध
दंगल	दंगल	मल्ल युद्ध
शतरंज	शतरंज	चौसठ खाने का खेल
पहलवान	पहलवान	मल्ल
बादशाह	पादशाह	सम्राट
मलका	मलका	साम्राज्ञी
सुलतान	सुलतान	सुलतान
बेगम	बेगम	बेगम
शहजादा	शहजादा	राजकुमार
बजीर	वजीर	मन्त्री
दवान	दीवान	मन्त्री, वजीर
अमला फैला	अमला फैला	कर्मचारी
सतर	सतर	पंक्ति, पर्दा
तसवीर	तसवीर	चित्र
कलम	कलम	शैली, लेखनी

बीमारियां

सिर दर्द	सिर दर्द	सिर पीड़ा
सिरसाम	सरसाम	सन्निपात
बखार	बुखार	ताप
कब्जी	कब्जी	मलावरोध
दशान्दा	जोशान्दह	क्वाथ
मजून	माजून	अवलेह

गालियां

हरामी	हरामी	व्यभिचार से उत्पन्न, दुष्ट
हरामजादा	हरामजादा	वर्ण संकर दुष्ट पाजी
बज्जात	बदजात	नीच कुल में उत्पन्न
बदमाश	बदमाश	दुराचारी
कमीना	कमीना	क्षुद्र, नीच
दगैबाज	दगाबाज	धोखा देने वाला
ऐहमक	अहमक	मूर्ख

विशेषण

चलाक	चालाक	चतुर
चुस्त	चुस्त	फुर्तीला
चापलूस	चापलूस	खुशामदी
खैरखाह	खैरख्वाह	शुभचिन्तक
खिजमतगार	खिदमतगार	सेवक
दूरन्देस	दूरन्देश	दूर की सोचने वाला
सादालोह	सादालोह	साधारण प्रकृति का
रिश्वतखोर	रिश्वतखोर	घूस खाने वाला
सखी	सखी	दानवीर, उदार
जादुगर	जादुगर	जादुगर
जालसाज	जालसाज	धोखेबाज
जाबर	जाबर	अत्याचार करने वाला
बख्तावर	बख्तावर	धनाढ्य, सौभाग्यशाली
परहेजगार	परहेजगार	संयमी

तंगदस्त	तंगदस्त	निर्धन
गमगीन	गमगीन	दुखी
ऐबी	ऐबी	दोष युक्त
शरारती	शरारती	चपल, शरारती
बेवकूफ	बेवकूफ	मूर्ख
दल्ला	दल्लाल	लेने बेचने में सहायता करने वाला, व्यभिचार कार्य में सहायता करने वाला
हजरत	उपाधि	पाजी, दुष्ट

कुछ विशेष शब्दों की चर्चा

१ बैंतल—डोगरी में बैंतल अर्बी फार्सी के बैंतउलमाल का संक्षेप है। बैंत उलमाल उस खजाने को कहते थे जो मुस्लमान सुल्तान लूट मार से भरते थे। डोगरी में इस का अर्थ आगरा के अर्थों में प्रचलित। डोगरी में बैंतल और बैंतलमाल दोनों रूप मिलते हैं।

ए जातक कनेहा बैंतल होई गेया ऐ।

यह लड़का कैसा आवारा हो गया है।

ए वी बैंतलमाल गैं।

यह भी आवारा ही है।

२ जाजरू—यह उर्दू फारसी के जा-ज़रूर का विकार है। फारसी में जा—जरूर शौचालय को कहते हैं। डोगरी में इस अर्थ में प्रचलित है।

३ डोगरी दमाक—अर्बी दिमाग का ही विकार है। सिरका गूदा, भेजा, मस्तिष्क के अर्थों में और घमण्ड हो जाने के अर्थों में प्रायः बोला जाता है।

बब्ब बजीर के बनेया, कुड़िया गी दमाक होई गेया।

पिता मन्त्री क्या बना लड़की को घमण्ड हो गया है।

४ बख्तावर—फा० बख्त+आवुर सौभाग्य को लाने वाला परन्तु डोगरी में प्रायः धनी व्यक्ति के लिये प्रयुक्त होता है।

उनेंगी इस घाट्टे दी के पर्वाह, ओ बड़े बख्तावर न।

उन को इस नुकसान की क्या पर्वाह है, वे बहुत धनाढय हैं।

५ मालमत्ता—फा० माल+मुताश्र धन दौलत। डोगरी में इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

६ मलाई—यह फार्सी बालाई शब्द का विकार है। दूध को काढ़ने पर ऊपर मोटी तह जो जम जाती है उस को फार्सी में बालाई और डोगरी में मलाई कहते हैं।

७ खस्ता—फार्सी जल्दी टूट जाने वाला। । डोगरी में इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता है—ए मट्ठी बड़ी खस्ता ऐ।

यह मट्ठी बड़ी भुरभुरी (टूट जाने वाली) है।

८ तामा—अर्बी तम्मा, लालची को कहते हैं। डोगरी में प्रलोभक को कहते हैं। तामा दइयै कम्म कड्डी लेया—प्रलोभन देकर उद्देश्य सिद्ध कर लिया।

९ सतर—अर्बी पर्दा, फारसी लकीर, डोगरी लकीर, डोगरी में दोनों अर्थों में मिलता है—राजपूतनियां अजें तोडी बड़ा सतर करदियां न, —राजपूतानियां अभी तक पर्दा की रस्म निभाती आ रही हैं।

उस इक सतर नईं लिखोन्दी।

वह एक पंक्ति नहीं लिख सकता।

१० सील—यह अर्बी 'असील' शब्द है जिस का प्रथम स्वर लोप हो गया। इस का अर्थ ऊंची जाति का होता है।

ए सील कुक्कड़ ऐ।

यह असील मुर्ग है। (मुर्गों की जाति विशेष)

११ दफतर—फार्सी वह स्थान जहां लेन देन का हिसाब किताब होता है। कार्यालय। डोगरी में कार्यालय के अर्थों में तथा लिखने पढ़ने की सामग्री का विस्तार देख कर कहते हैं।

ए के दफतर खोले दा ऐ?

यह क्या दफतर खोला हुआ है?

१२ दुशांदा—फार्सी जोशांदह का ही तद्भव है। द का ज या ज का द साधारण विकार है। उबाला हुआ। जड़ी बूटियों के उबले हुए पानी को कहते हैं।

१३ सूफियाना—फार्सी सूफियों जैसा बढ़िया और सुन्दर। डोगरी में इस का अर्थ होता है जो रंग बड़ा शोख न हो। तड़क भड़क वाला न हो।

१४ हज़रत—(अर्बी) बादशाहों या महात्माओं की उपाधि। परन्तु डोगरी में प्रायः व्यंग्य के अर्थों में (पाजी, दुष्ट) ही प्रयुक्त होता है।

अस उसी सादा लोह् समझदे हे पर ओं ते बड़ा हजरत निकलेया।

हम तो उसे बड़ा साधारण व्यक्ति समझते रहे परन्तु वह तो बड़ा दुष्ट, शैतान सिद्ध हुया।

१५ खम्याज़ा—(फार्सी) बुरे काम का परिणाम, डोगरी में इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता है—नई समझदा तां के करचै। आपूं खम्याजा भुगतग।

नहीं समझता तो क्या करें स्वयं बुरे काम का परिणाम भुगतेगा।

उपसंहार

डोगरी साहित्य का बढ़ता हुआ भण्डार और हिन्दी उर्दू संस्कृत पंजाबी तथा अंग्रेजी के साहित्यकारों तथा कलाकारों का सहयोग डोगरी शब्दावली को प्रतिदिन स्मृद्ध करता जा रहा है। डोगरी ने भी अपने द्वार सब भाषाओं के उपयुक्त शब्दों के लिये खुले रखे हैं।

डोगरी और भद्रवाही

प्रियतम कृष्ण

"डोगरी और भद्रवाही"—यह शीर्षक शायद कुछ लोगों को ठीक न लगे, क्योंकि उनकी धारणा तो यही है कि भद्रवाही जम्मू प्रांत की अन्य पर्वतीय बोलियों की तरह डोगरी की ही एक उपबोली है। सर्व श्री शिव कुमार जी शर्मा ने 'निबन्धावलि' में छपे अपने लेख "डोगरी और उसका क्षेत्र" में अपनी इसी धारणा का परिचय दिया है और डोगरी की उत्तरीय सीमा पीरपांचाल तक निर्धारित कर, पर्वत प्रदेश की समस्त बोलियों को डोगरी के अन्तर्गत मान लिया है। उन्होंने अपनी यह धारणा जिन कारणों से बनाई लेख में उन्हें स्पष्ट नहीं किया गया।

इस धारणा के ठीक उलट एक दूसरी धारणा भी है जो पर्वतीय प्रदेश की इन बोलियों को, जिन में भद्रवाही, खश, सिराजी आदि शामिल हैं काशमीरी के अन्तर्गत मान रही है। इस धारणा का परिचय हमें मोहन कृष्ण दर की पुस्तक "काश्मीर का लोक साहित्य" में मिलता है वह लिखते हैं :—

"......काशमीरी भाषा की एक बोली है किश्तवाड़ी जो किश्तवाड़ में बोली जाती है......। इसके अतिरिक्त डोडा में बोली जाने वाली पुगुली, सिराजी और रामबन में बोली जाने वाली रामबनी भी काशमीरी की बोलियां हैं। काशमीरी और पश्चिमी पहाड़ी के मिश्रण से पुगुली और सिराज़ी बनी और काशमीरी और डोगरी के मिश्रण से रामबनी ......।" दर महोदय के इन विचारों में बहुत सी असंगतियां स्पष्ट हैं। प्रथम पुगुली या पोगली डोडा की बोली न होकर रामबन से भी

परे बनिहाल तहसील में पोगल-परिस्तान के लोगों की बोली है। दूसरे रामबन के लोगों की अपनी कोई विशेष बोली नहीं। वस्तुतः यह सिराज़ी ही है। तीसरे यह बोलियां काशमीरी, पश्चिमी पहाड़ी और डोगरी के मिश्रण से बनकर भी (जैसा कि लेखक की धारणा है) कैसे काश्मीरी की ही बोलियां हैं? इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया।

एक तीसरी धारणा यह भी है कि जम्मू प्रान्त की इन पर्वतीय बोलियों का अपना अलग ही स्थान है. यह दूसरी बात है कि पड़ोस की डोगरी और काशमीरी का उन में प्रभाव रहा हो। गुरुवर डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने इन बोलियों में लिखे अपने लेखों में (जो इधर उधर बिखरे पड़े हैं) इनका अध्ययन सम्भवतः स्वतन्त्र बोली समूह के रूप में ही किया है। इन बोलियों में प्रमुख हैं—भद्रवाही, भलेसी, सिराज़ी, खशाली, पाडरी, किश्तवाड़ी और पोगुली। इन सभी भाषा-बोलियों की अपनी विशेषताएं हैं और इनका अध्ययन अपने अपने इलाके की सांस्कृतिक और ऐतहासिक पृष्ठभूमि में ही किया जाना चाहिए। डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने भलेसी, भद्रवाही, खशाली पर अपने लेख लिखे हैं। पाडरी, जिसके विषय में ग्रीयर्सन को जानकारी न थी, का भी उल्लेख डॉ० वर्मा ने ही सर्व प्रथम किया है। किश्तवाड़ी, पोगुली और सिराज़ी पर उनकी सम्मत्ति से अभी तक मैं अनभिज्ञ हूं। परन्तु इन बोलियों का भी अपना अस्तित्व है यह निश्चित है। डॉ० वर्मा के खोज पूर्ण लेख इन पर्वतीय बोलियों का स्वरूप कुछ कुछ स्वतन्त्र-सा ठहराते हैं। और इधर हिमाचल के डॉ० परमार भद्रवाही आदि को सम्भवतः पहाड़ी का ही रूप बतलाते हैं।

अतः अब प्रश्न यह उठता है कि इन तीन प्रकार की धारणाओं में से कौन सी धारण सही है। जम्मू प्रदेश की यह पर्वतीय बोलियां क्या काशमीरी से सम्बन्धित हैं? क्या डोगरी की ही उपबोलियां हैं? या स्वतन्त्र भाषा या बोलियां? प्रश्न का उत्तर इतना सरल नहीं। किसी भी निष्कर्ष पर पहूंचने के लिए यह आवश्यक है कि हम किसी बोली को किसी विशेष भाषा की उपबोली ठहराने से पूर्व दोनों का समालोचनात्मक अध्ययन करें और किन्हीं तथ्यों के आधार पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचे।

इसी पृष्ठभूमि में हमें यह भी सोचना है कि इन पर्वतीय बोलियों

का डुग्गर की डोगरी से कुछ तो सादृश्य और समानता होना ही चाहिए—विशेष रूप से इसलिए क्योंकि विगत समय में दोनों प्रदेशों के लोगों का सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन लगभग एक सा रहा है।

इस प्रकार के सन्देह ने ही मुझे प्रस्तुत लेख में डोगरी और भद्रवाही (डुग्गर के पर्वतीय प्रदेश की एक बोली) में कुछ समानताएं ढूंडने के प्रयत्न की ओर अग्रसर किया।

विशेषताएं

१. ध्वनि और शब्दसमूह—

(१) डोगरी और भद्रवाही दोनों में अनुनासिकता की कुछ समानताएं हैं। दोनों में शब्द के अन्त में (ँ) जोड़ने से बहुवचन बनता है। जैसे :—

डो० बहु०	भद्र० बहु०
रातीं	मठ्ठां
धीएं	कुइयां
कुड़िएं	नुश्शां
जागतें	

दोनों में अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का सम्बोधन (ं) लगाने से होता है :—

सीतां	सीतां
राधां	गोरां
शैलां	सुभद्रां

(२) दोनों के शब्दों में यदि शब्द के अन्तिम व्यंजन से पूर्व कोई स्वर आए तो इस व्यंजन का उच्चारण हलन्त अक्षर के समान हो जाता है :—

डो०	भद्र०
रीस	ठार
टोर	ट्लिघार
सेक	माल
पूर	भेगड़ान
मेख	

यदि शब्दों में किसी स्वर के बाद संयुक्त व्यंजन आए तो वह भी हलन्त ही हो जाता है।

डो०	भद्र०
अक्ख्	अस्ह (छ्छ)
कक्ख्	इस्ह (इछ्छ)
भत्त्	भत्त्
भत्त्	नश्श्
थम्म्	ओस्स्
गिदद्	कोड्ड्

(३) डोगरी में संस्कृत की (र) युक्त व्यंजन ध्वनियों का लोप नहीं हुआ जैसा कि हिन्दी में। अपितु उन का वर्धन ही हुआ है। भद्रवाही में (र) युक्त त, द, ग, ध आदि ध्वनियां (ट्ल) और (ड्ल) में परिणित हो जाती हैं।

सं०	हि०	डो०	भद्र०
मित्र	मीत	मित्तर	मिट्ल
सूत्र	सूत	सूत्तर	सूट्ल
क्षेत्र	खेत	(खे) क्षेतर	(छे) सेट्ल
पत्र		पत्तर	पट्ल
निद्रा	नींद	नींदर	निड्ल

(४) हिन्दी और अन्य भाषाओं के शब्दों की अन्तिम (स) ध्वनि डोगरी में (ह) में परिणित हो जाती है। कई स्थानों पर शब्द के मध्य में आई (स) ध्वनि भी (ह) में परिवर्तित हो जाती है। भद्रवाही में पहुंच कर यही (स) ध्वनि (ह) ध्वनि का सूक्ष्मतम रूप धारण कर लेती है या इस का पूर्ण निपात हो जाता है। अथवा यह अवकुण्ठित सा स्वर हो जाता हे।

हि०	डो०	भद्र०
घास	धाह॒	घा अ?
बीस	बीह॒	बी अ?
कपास	कपाह॒	कपा अ?
पोष	पोह॒	पो अ?
मूसल	मोह॒ल	मोअ लो?

कभी कभी किसी शब्द में स्वर के बाद आने वाली 'स' ध्वनि भद्रवाही में अनुनासिक 'श' के रूप में हमें मिलती हैं। और इस प्रकार भद्रवाही के संस्कृत के अधिक निकट होने की ओर इंगित करती है।

हि०	भद्र०
भलेस	भलेशं
सड़क	शिड्क
सोगली	शोंगली
प्रसून	शूनू
मनमहेस	मनमहेंश

२. शब्द रचना—

(१) डोगरी और भद्रवाही दोनों में संस्कृत शब्द प्राकृत के ततसभ् होकर ही आए हैं।

सं०	प्रा०	डो०	भद्र०
दुग्ध	दुद्द	दुद्द	दुद्द
अक्षि	अक्ख	अक्ख	अच.छ् (स्ह)
कर्म	कम्म	कम्म	कम्म
सत्य	सच्च	सच्च	सच.च् ( )
रक्त	रत्त	रत्त	रत्त
सप्त	सत्त	सत्त	सत्त
शिला	सिल	सिल	सिल्ल्ल्

कुछ अन्य तद्भव शब्द भी देखें।

मास	मास
आंउ	अंव
बरा	बेर
दब्बड	ड्लब्बड़

डोगरी के शब्दों में द्वित्व की प्रवृत्ति है और यह भद्रवाही में भी हैं।

डो०	भद्र०
दस्स	दश्श्
जटट्	जट्ट
खट्ट	ड्लुक्ख
कम्म	इच.छ् (स्ह)

(२) डोगरी का कोई शब्द 'य' ध्वनि नहीं लेता। वह 'ज' में परिर्वातित हो जाती है। भद्रवाही में भी ऐसा हुआ है।

सं० आपि	**डो०**	**भद्र०**
यन्त्र	जन्तर	जन्ट्ल
संयोग	संजोग	संजोग
योग्य	जोग	
यज्ञ	जग	जग
यश	जस	जस

(३) 'व' से कोई शब्द डोगरी में प्रारम्भ नहीं होता यह 'ब' में परिर्वातित हो जाता है या 'मा' में या अनुस्वार में।

अन्य	**डो०**	**भद्र०**
वर्ष	बरा	बेर
वेला	बेलो	बेलो
वाला	आला	बालो
अमावस्या	मस्या	मांसी
पाचवीं	पञ्मी	पंचोउं

(३) डोगरी और भद्रवाही दोनों के किन्हीं शब्दों में स्वर विर्पयय हुआ है और लगभग यह एक जैसा है।

हि०	**डो०**	**भद्र०**
उदास	दुआस	दुआस
उडार	डुआर	डुआर
उधार	धुआर	धुआर
उजाड	जुआड	जाड़

अन्य भाषाओं के शब्दों के इस बर्ण विर्पयय का क्रम दोनों में स्पर्श-घर्ष से घर्ष-स्पर्श हो जाता है।

चपड़ासी	चड़पासी	चड़पांसीं
नुकसान	नुसकान	नुसखान
नकशा	नशका	नश्खो
कीचड़	चीक्कड़	चि्कर
बुकचा	बुचका	बुचकों
संक्रान्ति	सरड़ान्द	संगरान्त

डडल	डल्ड	ड्लड
एकादशी	कास्ती	कास्ती

परन्तु यह वर्ण विपर्यय की प्रवृति अधिकतर ग्रामीन जनों की भाषा में ही देखी जाती है।

(४) डा० सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार डोगरी पंजाबी से इस कारण भिन्न है क्योंकि डोगरी के शब्दों के अवसान में संयुक्त अक्षर जुड़े ही बोले जाते हैं और यह विशेषता किन्हीं भद्रवाही शब्दों में भी है।

पंजाबी	डोगरी	भद्रवाही
सड़्क	सिड़्क	शिड़्क
खुरक	खुर्क	खुर्क
खसम	खस्म (मनुक्ख मुन्श)	
तीरथ	तीर्थ	तीर्थ

डोगरी और भद्रवाही की यह विशेषता उसे दरद भाषाओं से भी अलग ठहराती है।

पंजाबी	काश्मीरी	डोगरी	भद्रवाही
निरख	न्यरख	निर्ख	निर्ख
खरच	खरिच	खर्च	खर्च्

(५) डोगरी और भद्रवाही, दोनों के शब्दों में अनुस्वार परक वर्णों के आगे घोष वर्ण होने पर आदि अक्षर ह्रस्व ही रहता है।

पञ्च	पंच
खण्ड	खण्ड
दन्त	दन्त
ग्हण्ड	गण्ड
रण्ड	रण्ड
तन्द	तन्द

(६) दोनों भाषाओं के कुछ अव्यय और योजक शब्दों में भी समानता है।

	डोगरी	भद्रवाही
	नेइ	नई
(जान बूझ कर)	धिए	धिग्गा
	हला	हला
	ते	त
	जां	ज्ञां
	जे	ज्ञे

३. विशेषण—

डोगरी और भद्रवाही दोनों के कुछ विशेषण वाचक शब्दों में भी समानता है।

बड्डा	बड्डो
निक्का (लौका)	निकड़ो
मंझला	मेञ्जियों
ढिल्लां	ढिल्लो
मेला	मेलो
बारला	बेरयों

४. वचन—

डोगरी में अ, ई अन्त वाले शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए शब्द के अन्त में ए, ऐ, आं, या यां, जोड़ा जाता है।

डोगरी		भद्रवाही	
कुडि	कुडियां (यां)	कुइ	कुईआं
मितर	मितरां	मिट्ल	मिट्लां
घोड़ा	घोड़े	बला	बलाआं
राजा	राजे	राजो	राजे
		घोडो	घोडां
		मूषो	मूषां

५. धातु, प्रत्यय व कृदन्त—

(१) हिन्दी के समान डोगरी में भी प्रधान प्रत्यय ना है या णा। भद्रवाही में नु है।

हिन्दी	डोगरी	भद्रवाही
पीसना	पीह्-णा	पी-नू
जाना	जा-ना	गा-नू
घड-ना	घड़-णा	घड़-नू
रुठ-ना	रुस्स-णा	कुट्ट-नू
बैठ-ना	बौ-णा	बिष-णू

(२) डोगरी के वर्तमान कृदन्त रूप बनाने के लिए धातु के साथ दा, दे, दी दिअन्त लगाया जाता है और साथ ही अकारान्त धातु का 'आ' हृस्व 'अ' में बदल जाता है। भद्रवाही में धातु के साथ इसी प्रकार ते, तन और चे चन, जुड़ जाता है और कृदन्त रूप बनते हैं।

	डोगरी		भद्रवाही	
	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री०
एक० (जा)	जन्दा	जन्दी	गाते	गाचे
बह० (धातू)	जन्दे	जन्दीयां	गातन्	गाचेन
— खा	खन्दा	खन्दी	खाते	खाचे
	खन्दे	खन्दीआं	खात	खाचेन्
— पी	पीन्दा	पीन्दी	पीते	पीचे
	पीन्दे	पीन्दीआं	पीतन्	पीचेन्

(३) डोगरी के भूत् कालिक कृदन्त रूप बनाने के लिए धातु के साथ आ, ता और दा प्रत्यय लगाए जाते है, और उन के अन्तिम स्वर आ, ए, इ, और आं में बदल जाते हैं। जबकि भद्रवाही में क्रिया के अन्तिम स्वरों उ, ए ई और ईं में बदल जाता है।

	डोगरी		भद्रवाही	
	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री
— दे	दित्ता	दित्ती	दित्तु	दित्ती
	दित्ते	दित्तीआ	दित्ते	दित्तीं
— खा	खादा	खदी	खाउ	खाइ
	खादे	खदिआं	खाए	खेई

—	पी	पीता	पीती	पिउ	पी
		पीते	पीतिआं	पीअ	पीं
—	लिआ	लियाआ	लिआई	आनु	आनी
		लिआए	लिआइयां	आने	एणी

(४) कर्तृवाच्य में डोगरी के भूत कालिका कृदन्त रूपों में (दा-दे-दी) लगाना पड़ता है और भद्रवाही में (रु-रे-री)

डोगरी			भद्रवाही		
सीता	(दा)	टल्ला	सीओ	(रु)	लिक्ड़
आए	(दे)	लोक	ओ	(रे)	सरबन्धी
कित्ती	(दी)	गल्ल	किओ	(री)	गल्ल

(५) इसी प्रकार पूर्व कालिक कृदन्त रूप हेतु डोगरी में धातु के साथ 'इए' अथवा 'करी' लगता है परन्तु भद्रवाही में इतां-एतां।

धातु	डोगरी	भद्रवाही
कर	करिए (करी)	केरतां
जा—गा	जाइए (करी)	गेई तां
बैठ	बैईए (करी)	बिश्तां
उठ	उठिए (करी)	उठितां
लिख	लिखिए (करी)	लिखितां
पढ़	पढ़िए (करी)	पेड़ितां
कर	करिए (करी)	केरतां

(६) डोगरी और भद्रवाही में संस्कृत की 'ग' धातु का विभिन्न कालों में जो रूप हमें मिलता है उस की तुलना रोचक है। डोगरी में संस्कृत की 'ग' धातु, भूतकाल के विभिन्न रूपों में तो 'ग' ही रहती है परन्तु भविष्यत और वर्तमान काल के विभिन्न रूपों में वह 'जा' रूप में देखी जाती है। भद्रवाही में इस का बिल्कुल उलट हुआ है। वहां 'गम' धातु का 'गा' तो वर्तमान और भविष्य काल में बना रहा है परन्तु भूतकाल में वह 'जा' में परिवर्तित हो गया है।

	डोगरी			भद्रवाही		
व०	जन्दा	जन्दी	[ज]	गाते	गाचे	(ग)
	जन्दे	जन्दीयां		गातन	गाचन	
भू०	गेया	गेइ	[ग]	जोऊ	जेई	
	गे	गेइयां		जे	जेइ	(गा)
भवि०	जाङ	जाङ	[जा]	गालो	गाली	(ग)
	जाड़न	जाड़ान्यों		गाले	गेली	

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि डोगरी और भद्रवाही का आपस में एक सम्बन्ध है जो केवल कुछ गिनेमिने शब्दों की समता तक ही नहीं ठहराया जा सकता अपितु दोनों के आन्तरिक साम्य को स्पष्ट कर उन्हें सम्भवता एक ही 'शाखा' के अन्तर्गत ठहराता है। फिर भी भद्रवाही (अपनी अन्य पहाड़ी बोलियों की तरह) डोगरी से भिन्न इस कारण लगती है कि उस की कुछ निजी विशेषताएं हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) भद्रवाही विकास की दृष्टि से डोगरी से बहुत पीछे है। वह पर्वत के शान्त वातावरण में शताब्दियों तक रही है और इसी कारण उस में अधिक निजीपन है। इसी कारण वह संस्कृत और प्राकृत के भी अधिक निकट है। डोगरी कुछ अधिक मैदानी (कम पहाड़ी) इलाके की भाषा है। इस भूभाग में लोगों के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में अधिक तीव्रता से परिवर्तन आया है और इस के फलस्वरूप इन लोगों की मातृ बोली में भी। इसी कारण डोगरी अधिक विकसित है। भद्रवाही अभी बहुत कम टकसाली भाषा है जब कि डोगरी बहुत आगे बढ़ गई है। अतः दोनों में एक तरह से दादी और पोती का रिश्ता है।

(२) भद्रवाही में कुछ ध्वनियां ऐसी हैं जो डोगरी अथवा हिन्दी में नहीं जैसे च़ छ़ और ज़ आदि। यह दरद भाषाओं का प्रभाव हो सकता है।

(३) भद्रवाही में कुछ अपनी ध्वनिया है, जो पास पड़ोस की किसी भाषा में नहीं मिलतीं। जैसे ड्ल, ढ्ल, ट्ल, यह ध्वनियां

हिन्दी शब्दों के 'र' से युक्त सघोष अघोष वर्णों (द, त, ग, भ, घ) के स्थान पर भदवाही में आते हैं जैसे—

पट्ल (पत्र) ड्लास (ग्रास) टलाम (ताम्र) सेटल (क्षेत्र) आदि ।

(४) भद्रवाई में कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जो अपनी निजि रूपात्मकता लिए हैं और जिन का विकास—क्रम अथवा अन्य भाषा बोलियों से सम्बंध ढूंढने में कठिनाई प्रतीत होती है। जैसे—

भद्रवाही

————

माता — हई — हाज (काश्मीरी का मंज इस से कुछ मिलता है)
शिशिर — हितोड़ — ऋतु (सम्भवता हिम से सम्बंधित।)
मुंह — आशी ?
पतझड़ — नैला ?

कश्मीरी भाषा का उद्भव और विकास : एक पुनर्मूल्यांकन

डॉ० शिबन कृष्ण रैणा

कश्मीर को कश्मीरी भाषा में 'कशीर' तथा इस भाषा को 'काशुर' कहते हैं। भारत के संविधान में जिन प्रादेशिक भाषाओं को राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की गई है, उन में **कश्मीरी**[1] भी एक है। इस भाषा के बोलने वाले कश्मीर घाटी; किश्तवाड़, रामबन, रियासी आदि के निवासी हैं। वैसे, कश्मीरी का साधु या परिनिष्ठित रूप कश्मीर घाटी में ही प्रचलित है। शेष क्षेत्रों में इस भाषा की उपबोलियां बोली जाती हैं। वे उपबोलियां पहाड़ी बोलियों से प्रभावित होने के कारण कश्मीरी के साधु या परिनिष्ठित रूप से नितांत भिन्न हैं। इन पहाड़ी बोलियों में उल्लेखनीय हैं—किश्तवाड़ी, शिराजी, पुगी, रामबनी तथा रियासी की बोलियां 'कश्मीरी जबान और शायरी' के रचयिता श्री अब्दुल अहद आज़ाद ने कश्मीरी को एक करोड़ व्यक्तियों की भाषा माना है।[2] कश्मीरी के सुप्रसिद्ध विद्वान् पृथ्वी नाथ 'पुष्प' का मत है कि यह कुल ५०००० व्यक्तियों की मातृभाषा है।[3] ग्रियर्सन महोदय ने सन् १९११ की जनगणना के आधार पर कश्मीरी तथा उस की विभिन्न उपबोलियों के

---

1. इस भाषा के लिये 'कश्मीरी' नाम का उल्लेख सर्वप्रथम अमीर खुसरो की १३वीं शती की पुस्तक 'नुहसिपिन्ह्' में मिलता है। जहां इसे सिन्धी, लाहौरी, तिलंगी आदि के साथ परिगणति किया गया है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग, १, २३१.
2. आज़ाद की मान्यता किन सूचनाओं पर आधारित है, स्पष्ट नहीं है।
3. 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली', निबन्ध: 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' पृ० १२४.

बोलने वालों की संख्या इस प्रकार निधारित की है—

१—परिनिष्ठित कश्मीरी	१०३९९६४
२—किश्तवाड़ी	७४६४
३—पुग्ली	८१५८
४—रामबनी	२१७४
५—सिराजी	१४७३२
६—रियासी की बोलियां[1]	२०२५२
	१०९२,७४४

१९६१ की जगगणना के अनुसार कश्मीरी भाषियों की कुल संख्या १९३७८१७ थी।[2]

१९७१ तक यह संख्या १९५९११५ तक पहुंच चुकी है।

कश्मीरी भाषा का क्षेत्र कश्मीर की घाटी तथा उस के दक्षिण पूर्व की निकटवर्ती उपत्यकायें हैं। दक्षिण पूर्व में इस भाषा का क्षेत्र किश्तवाड़ तक, दक्षिण में हवल-वेरीनाग से लेकर पीरपंचाल के उस पार तक, उत्तर में द्रावा और ओड़ी तक, पूर्व में पहलगांव तथा दक्षिण-पश्चिम में शोपियान तक फैला हुआ है।[3]

कश्मीरी भाषा किस भाषा-परिवार से सम्बन्ध रखती है, उस पर किन-किन भाषाओं का प्रभाव है, उस का उद्गम कहां से हुआ है आदि ऐसे प्रश्न हैं जो विद्वानों के बीच अभी भी विवाद का विषय बने हुए हैं। प्रस्तुत निबन्ध में कश्मीरी भाषा के उद्गम व विकास के सम्बन्ध में विद्वानों की विभिन्न मान्यताओं का तर्कपूर्वक परीक्षण एवं पुनर्मूल्यांकन कर एक ठोस निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया गया है।

कश्मीरी भाषा के उद्गम और विकास के सम्बन्ध में जो प्रधान मान्यतायें हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१—कश्मीरी दरद-परिवार की भाषा है।

---

1. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग दो, खण्ड आठ, पृ० २३४.
2. जनगणना रिपोर्ट, १९६१, भाग २-सी, खण्ड, ६ पृ० २१२, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित।
3. आज़ाद के मतानुसार कश्मीरी भाषा का क्षेत्र १५० मील लम्बाई में तथा ५० मील चौड़ाई में फैला हुआ है। 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' भाग १, पृ० ९

२— कश्मीरी भारतीय-आर्य-परिवार की भाषाओं में संस्कृत से उद्भूत है।

३ - कश्मीरी इब्रानी अथवा हिब्रू की संतति है।

५— कश्मीरी पैशाची का एक विकसित रूप है।

उक्त मान्यताओं के विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने तर्क देकर अपने मतों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

कश्मीरी का उद्गम दरद-परिवार की भाषाओं से मानने वाले विद्वानों में ग्रियर्सन, ज्यूल ब्लाख, ग्राहम बेली, टर्नर, अब्दुल अहद आजाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ग्रियर्सन महोदय ने कश्मीरी भाषा के उद्गम और विकास पर जो टिप्पणियां दी हैं, वे इस प्रकार हैं—शब्द कश्मीरी संस्कृत के 'कसमीरिका' से व्युत्पन्न है। कश्मीरवासी अपनी भाषा को कश्मीरी न कह कर 'काहुर' कहते हैं जिस से सिद्ध होता है कि कश्मीरी दरद-परिवार की भाषा है। क्योंकि आर्यकुल की भाषाओं में 'सम' का 'श' में परिवर्तित होना नितांत असम्भव है।.........कश्मीरी दरर-परिवार की भाषा है तथा इस का 'शीना' से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शताब्दियों से इस पर भारतीय भाषाओं का विशेष कर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा जिस के फलस्वरूप अनेक भारतीय शब्द इस में घुल मिल गये। यही कारण है कि यहां के निवासी इसे संस्कृत से उद्भूत मानते हैं। किन्तु सूक्ष्म अध्ययन के अनन्तर ज्ञात होता है कि यह धारणा निराधार है।[1] ग्राहम बेली के अनुसार शीना की भांति कश्मीरी भी दरद-परिवार की एक भाषा है।[2] आजाद के मतानुसार कश्मीरी जुबान संस्कृत जबान से नहीं निकली। इस की हैसियत एक अलग जबान की है। इस की बुनियाद दरदी जबान है और शीना जबान की एक शाख है।[3]

---

1. The word 'Kashmiri' is Persian or Hindi, and is derived from the Sanskrit—"Kasmirika". It is not the name used by the People of Kashmir itself. There the country is called 'Kashir' and the language Koshir. The word itself is an excellent examole of the fact that the language belongs to the Dardic sub-family, for the India the change of Sm to Sh would be impossible........

   Linguistic Survey of India part. 2, Vol. VIII P 235
2. 'ग्रामर आफ शीना लैंग्वेज' भूमिका से
3. 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' पृ० १०

कश्मीरी भाषा को आर्य परिवार की भाषाओं में संस्कृत की संतति मानने वाले विद्वानों में डा० सुनीति कुमार चटर्जी, पं० शालि ग्राम कौल, बूल्हर साहब आदि प्रमुख हैं। श्री चटर्जी के अनुसार कश्मीरी पर प्राचीनकाल से ही संस्कृत का प्रभाव रहा है तथा इस दृष्टि से वह शीना या काफिरी भाषाओं से भिन्न है।[1] पं० शालिग्राम कौल का मत है—जिस प्रकार समस्त भारतीय भाषायें आर्य परिवार से सम्बद्ध हैं उसी प्रकार कश्मीरी भाषा भी आर्य कुल की प्रमुख भाषा संस्कृत से निकली है।[2] बूल्हर साहब कश्मीरी के उद्गम के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह भाषा संस्कृत से जन्मी है। यद्यपि अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में इस में कुछ विशेष अन्तर देखने को मिलता है तथापि उस पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है।[3]

कश्मीरी भाषा पर इब्रानी का प्रभाव मानने वाले विद्वान अपने पक्ष में जो तर्क देते हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१—कुछ इतिहासकारों का मत है कि जब सिकन्दर ने पंजाब पर आक्रमण किया तो उस समय कश्मीर के कुछ भाग यूनानियों के अधीन हो गये। इन यूनानियों के संग कुछ यहूदी भी थे जो कश्मीर में बस गये। इन की भाषा का तत्कालीन कश्मीरी भाषा पर विशेष प्रभाव पड़ा।

२—प्रायः कश्मीरी नामों के पीछे 'जू' लगाने की परम्परा है। जैसे, रामजू, हरजू, गूंदजू, रमजानजू, शाहभानजू आदि। यह शब्द 'जिव' का ही विकृत रूप।

३—प्राचीनकाल में श्याम देश से कुछ यहूदी कश्मीर में आकर बस गये। इन की भाषा इब्रानी थी जिस का प्रभाव तत्कालीन कश्मीरी पर पड़ा। उन्होंने इस घाटी के प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने देश श्याम के समान पाकर इस का नाम 'काशीर' रखा जिस का अर्थ है—श्याम की भांति। 'का' का शाब्दिक अर्थ है 'भांति' तथा शीर का अर्थ है श्याम देश। 'कशीर' शब्द 'काशीर' का ही विकसित रूप है।

---

1. 'कश्मीर' खण्ड चार, पृ० ७५
2. 'Kashmiri' Language like all other Indlan tongues belongs to the Indo-Aryan family. is mostly derived from Sanskrit. The first Kashmiri Reader'.
3. 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' आज़ाद, पृ० १८, भाग १

४—लाहौर से प्रकाशित 'क्राइस्ट हेवन आन अर्थ' के लेखक ख्वाजा नजीर अहमद के अनुसार कश्मीर में यहूदियों का आगमन हज़रत मूसा के समय से लेकर हज़रत ईसा के समय तक हुआ था। यहूदियों का प्रभाव यहां की भाषा और संस्कृति पर विशेष रूप से पड़ा है।[1]

५—कश्मीरी भाषा में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जो या तो इब्रानी के हैं तथा कश्मीरी में अब भी अपने मूल रूप में या तनिक परिवर्तन के साथ व्यवहृत होते हैं।

इब्रानी	कश्मीरी	अर्थ
ओन	ओन	अन्धा
अतर	अतुर	कुकर्म
कर्यूर	क्यूर, कूर	कुआं
त्रकर	त्रकर	तराजू
लोल	लोल	प्रेम
शास	शांश	श्वास
अतअ	यितअ	आओ
नह	नि	ले जाओ
नकअ	नखअ	समीप
अज़	अज़	आज
मालून	माल्युन	मायका
नकत	नकहत	नफरत
हून	हून	कुत्ता
तोक	थोक	थूक
आख	अख	एक
आसील	आलुच्	आलस्य

कश्मीरी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ श्री पृथ्वी नाथ पुष्प कश्मीरी को पैशाची का विकसित रूप मानते हैं। उस के अनुसार—सम्भवतः कश्मीरी का उद्गम वह पैशाची है जो कभी उत्तर-पश्चिम में प्रचलित थी, जिसे ब्राह्मण-ग्रन्थों में उदीच्य कहा गया है।[2]

1. 'सोन अदब', १९६३ पृ० ६१, कल्चरल अकादमी, श्रीनगर-कश्मीर का प्रकाशन।
2. 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली', पृ० १२४

कश्मीरी भाषा के उद्गम पर विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त मान्यताओं का परीक्षण अपेक्षित है।

'दरद' का अर्थ है पर्वत। पंजाब के पश्चिमोत्तर तथा पामीर के पूर्व-दक्षिण में जो पर्वतीय प्रदेश है वह दरद भाषाओं का क्षेत्र माना जाता इसे पिशाच-देश भी कहा जाता है और यहां की भाषा को पिशाची या भूत भाषा।[1] भारत में जो आर्य मध्य-एशिया से आये वे दो भागों से प्रविष्ट हुये—एक हिन्दूकश के पश्चिम से काबुल के मार्ग से और दूसरे वक्षु आवक्स नदी के उद्गम स्थान से सीधे दक्षिण के दुर्गम पर्वतों को पार करके। दूसरे मार्ग से आने वाले कुछ आर्य हिमालय के पहाड़ी प्रदेश में रह गये होंगे। यही भाग दरदिस्तान कहलाया और यहां की भाषा दरदी। इस भाषा पर संस्कृत का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि संस्कृत का संस्कार तो भारत में आने पर हुआ था।[2] दरद भाषाओं के तीन मुख्य समूह निर्धारित किये गये हैं—

१—पश्चिम में काफिरी जिस का कोई साहित्य नहीं है।

२—केन्द्रीय भाग में खोवारी जिस का क्षेत्र ईरान और दरदिस्तान के मध्य में है, इस की अनेक प्रमुख बोलियों में चित्राली प्रधान है।

३—उत्तर-पूर्व में शीना, कश्मीरी और कोहिस्तानी।

दरद वर्ग की भाषाओं में शीना प्रमुख है। इस का व्यवहार गिलगित की घाटी में होता है। विद्वानों के अनुसार इसी शीना से कश्मीरी का उद्भव हुआ है।

कश्मीरी को दरद-परिवार की भाषा मानने वाले विद्वान् अपने पक्ष में जो तर्क देते हैं उन से इस बात की पुष्टि बहुत कम हो पाती है कि कश्मीरी दरद भाषाओं की सन्तति है। ग्रियर्सन ने अपने मत की पुष्टि में जो दरदी भाषा के शब्द दिये हैं उन से यह बात सिद्ध नहीं होती कि कश्मीरी दरद-परिवार की भाषा है। ग्रियर्सन ने शीना और कश्मीरी के जो तुलनात्मक रूपचित्र दिये हैं, उन में इतना मौलिक साम्य नहीं कि कश्मीरी को भारत-आर्य परिवार से बाहर माना जाये।[3] कश्मीरी की सब से

---

1. हिन्दी उद्‌भव, विकास और रूप डॉ० हरदेव बाहरी, पृ० १४, १९६५
2. 'सरल भाषा विज्ञान' डॉ० मनमोहन गौतम, पृ० १५०
3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० २३१

बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रमुखतया संश्लिष्ट भाषा है तथा क्रियापदों में यह प्रवृति विशेष रूप में मिलती है। दरद-भाषाओं में यह प्रवृति नहीं मिलती। एक कश्मीरी क्रिया-पद के पुरुष, वचन, लिंग तथा काल की स्थिति के अनुसार जो विभिन्न रूप बनते हैं, वे इस प्रकार हैं—

'हावुन' दिखाना के विभिन्न रूप

१—होवथम	तुम ने दिखाया मुझे
२—होवथस	तुम ने दिखाया उस को
३—हाव्यथस	तुम ने दिखाये उस को
४—होवनम	उस ने दिखाया मुझे
५—होवनस	उस ने दिखाया उस को
६—होवमस	मैंने दिखाया उसे
७—होवमथ	मैंने दिखाया तुम्हें
८—होववोस	तुम सब ने दिखाया उस को
९—हावथख	तुम ने दिखाई उन को
१०—हाव्थख	वह दिखायेगा उन्हें
११—होवनख आदि	उस ने दिखाया उन्हें

उक्त क्रियापद अपने आप में पुरुष, लिंग, वचन तथा काल का संस्पर्श लिये हुए है। कश्मीरी पदरचना की इस विशिष्टता के आधार पर इस भाषा को दरद-परिवार के अन्तर्गत मान लेने में संकोच होता है। क्योंकि दरद-परिवार की भाषाओं में क्रिया पदों की संश्लिष्टता नहीं मिलती।[1]

कश्मीरी में घोष-महाप्राण व्यंजनों का व्यवहार नहीं होता अतः इस कारण से भी विद्वान् इसे दरद-परिवार की संतति बताते हैं। किन्तु यह विशेषता दरदी भाषाओं के अलावा सिन्धी, डोगरी, पंजाबी आदि में भी मिलती है।[2]

भाषा विज्ञान के नियमानुसार प्रत्येक भाषा अपनी निकटवर्ती सीमाओं में प्रचलित भाषाओं से प्रभावित रहती है। अनेक शब्द सिक्कों की

1. 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली', प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प, पृ० १२४
2. कश्मीरी में घ, झ, ढ, ध, भ आदि घोष महाप्राण व्यंजनों का प्रयोग प्रायः नहीं होता।

भान्ति इधर-से-उधर हो जाते हैं। वाक्य विन्यास, अर्थविस्तार, पदरचना आदि में भी इस प्रभाव द्वारा परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि कश्मीरी पर दरद भाषाओं का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस सन्दर्भ में प्रो० अरनेस्टकोहन की यह महत्वपूर्ण टिप्पणी विचारणीय है—'कश्मीरी भाषा प्रारम्भ में दरदी भाषाओं से प्रभावित रही। तदनन्तर इस पर संस्कृत का अपरिहार्य प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव के कारण संस्कृत के अनेक शब्द कश्मीरी में प्रविष्ट हुये, अनेक कश्मीरी शब्द अपना वास्तविक रूप खोकर विकृत हो गये, अनेक का अर्थ-परिवर्तन हो गया आदि। किन्तु दरदी का व्याकरणगत प्रभाव अभी भी कश्मीरी में विद्यमान है। वस्तुतः यह प्रभाव इतना गहरा है कि कश्मीरी भाषा से दरद प्रयोगों का पृथक्कीकरण कठिन है।[1]

जो विद्वान कश्मीरी का उद्गम संस्कृत से मानते हैं वे संभवतः इस भाषा के वर्तमान रूप व उसकी शब्दावली को देखकर ही ऐसी धारणा बना लेते हैं। इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान कश्मीरी भाषा में लगभग अस्सी प्रतिशत शब्द संस्कृत से उद्भूत हैं। कश्मीरी संख्यावाची, शरीर के अंगों सम्बन्धी प्रचलित कला सम्बन्धी, पशु-पक्षियों सम्बन्धी, वार व मास सम्बंधी शब्द संस्कृत के इतने निकट है कि प्रायः कश्मीरी को संस्कृत-प्रसूता समझ लिया जाता है। किन्तु शब्द-साम्य के आधार पर ही कश्मीरी को संस्कृत की संतति नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इस प्रकार का शब्द-साम्य भारोपीय परिवार की अन्य भाषाओं में भी मिलता है। वर्तमान कश्मीरी में मिलने वाले कुछ संस्कृत के शब्दों की सूची दी जाती है जो या तो अपने मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं या उन्हें तनिक परिवर्तन के साथ उच्चारित किया जाता है—

संस्कृत	कश्मीरी	अर्थ
लक्ष	लछ	लाख
द्राक्ष	दछ	अंगूर
शरत्	हरद	शरद
चन्द्र	चन्द्र	चांद

1. 'सोन अदब', १९६३, पृ० ५९

भिक्षक	ब्छे	भिखारी
सप्त	सथ	सात
हस्त	अथ	हाथ
श्वशुर	हिहुर	ससुर
शत	हथ	सौ
सर्प	सरूफ	सांप
श्रृगाल	शाल	गीदड़
कृमि	क्योम	कीड़ा
गुरु	गोर	गुरु
पोथी	प्थ्य	पोथी
दन्त	दन्द	दान्त
कर्ण	कन	कान
जिहवा	ज्यव	जीभ
दुग्ध	दोद	दूध

कश्मीर प्राचीनकाल से धर्म-दर्शन तथा विद्या-बुद्धि का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। सभी साहित्यिक गतिविधियां संस्कृत भाषा में होती थीं। शैव-दर्शन के क्षेत्र में भी यहां संस्कृत का ही प्रयोग किया गया। अतः इस भाषा का कश्मीरी पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यह प्रभाव आज भी शिक्षित कश्मीरी ब्राह्मणवर्ग की बोली में देखने को मिलता है।[1] वस्तुतः प्रभावमात्र से इस भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से नहीं मानी जा सकती।

कश्मीरी को इब्रानी अथवा हिब्रू की संतति मानने वाली तीसरी विचारधारा कई दृष्टियों से दोषपूर्ण है। कश्मीर में यहूदियों का आगमन कब और कैसे हुआ, इसके लिये कोई प्रामाणिक जानकारी हमारे पास नहीं है। सिकन्दर के साथ आये यहूदियों के कश्मीर में बस जाने की बात भी इतिहास द्वारा पुष्ट नहीं होती। जहां तक 'जू' शब्द का प्रश्न है, यह शब्द संस्कृत के 'जीव' का विकसित रूप है। यह 'जू' शब्द केवल कश्मीरी में ही प्रयुक्त नहीं होता। महाकवि सूरदास की ब्रजभाषा में

1. 'त्रैमासिक भाषा', डॉ० जवाहर लाल हण्डू का लेख, कश्मीरी भाषा : उद्गम और विकास', सितम्बर १९७०, पृ० २९

अनेक बार 'हरिजू' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। हिन्दी का 'जी' शब्द भी इस 'जू' शब्द का समकक्ष शब्द है।[1] इसी प्रकार 'काशीर' वाली बात भी उचित नहीं ठहरती क्योंकि 'कशीर' शब्द की व्युत्पति 'क' और 'समीर' के योग से भी सम्भव है। 'क' का अर्थ है जल और 'समीर' का अर्थ है हवा। जलवायु की श्रेष्ठता के कारण यह घाटी 'कसमीर' कहलायी जो बाद में 'कश्मीर' बन गया। जहां तक कश्मीरी में व्यवहृत कुछ इब्रानी शब्दों का प्रश्न है, उन में से अधिकांश शब्द संस्कृत के या संस्कृत से प्रभावित भी मान लिये जा सकते हैं, जैसे—

इब्रानी	संस्कृत	कश्मीरी
आसील	आलस्य	आलुच्
शास	श्वास	शांश
आख	एक	अख
कर्यूर	कूप	क्यूर
नह	नि	णि
हून	श्वान	हून
योन	यौवन	यावुन
दह	धूम्र	दुह

कश्मीरी का उद्‌गम पैशाची से हुआ है, प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प की यह मान्यता कई दृष्टियों से विचारणीय है। पैशाची को पिशाचों की भाषा कहा गया है। परिचमोत्तर प्रदेश में रहने वाले वे अनार्य पिशाच कहलाते थे जिन्होंने आर्य-संस्कृति को पूर्ण रूपेण अपनाया नहीं था। कहा जाता है कि जिस समय कश्यप ऋषि की कृपा से वर्तमान कश्मीर का पानी निकाला गया, उस समय आस-पास की पहाड़ियों पर रहने वाली कई जातियों के लोग यहां आकर बस गये। ये जातियां अनार्य थीं। इन में नाग, यक्ष, पिशाच आदि प्रसिद्ध थीं।[2] उस समय यहां की भाषा पैचाची रही होगी—ऐसा सम्भव है। एक अन्य धारणा के अनुसार पिशाच मूलतः आर्थ ही थे। जिस समय आर्य उत्तर-पश्चिम सीमा से

---

1. 'शीराज़ा', अक्तूबर १९६६, पृ० १३, श्री बलजिन्नाथ पण्डित का लेख 'कश्मीरी भाषा।'
2. 'संतूरके स्वर' चमन लाल सपरू, पृ० १९

भारत में प्रविष्ट हुए उस समय कुछ आर्य तो हिन्दूकश, कपिशा, कफरिस्तान, गन्धार, चित्राल, कश्मीर के उत्तर तथा पामीर के दक्षिण में बिखर गये तथा कुछ नीचे उत्तर कर सिन्धु-घाटी में व्यवस्थित हो गये। पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले आर्य पिशाच कहलाये जिन्हें बाद में अनार्य कहा गया क्योंकि अनेकों वर्षों तक विछिन्न रहने के कारण वे आर्य-संस्कृति को आत्मसात् नहीं कर पाये थे। जिस समय पिशाच कश्मीर में प्रविष्ट हुये उस समय यहां नागों का निवास था। नागों ने पिशाचों का विरोध नहीं किया। वे पिशाचों के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित करके रहने लगे। 'नीलमत' का उद्भव यहीं पर होता है। उस समय यहां की भाषा पैशाची रही होगी। इस भाषा में लिखी मात्र गुणाढ्य की 'बृहत्ककथा' का उल्लेख मिलता है। दुर्भाग्य से यह कृति कालकवलित हो गई है, केवल उसके संस्कृत रूपांतर इस समय उपलब्ध हैं। पुष्प जी इसी पैशाची से वर्तमान कश्मीरी का उद्गम मानते हैं जो १३वीं शती अपभ्रंश के अपरिहार्य प्रभाव को आत्मसात् कर विकसित हुई।[1]

निष्कर्ष

प्रारम्भिक अवस्था में कश्मीरी भाषा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था। उसे पैशाची या दरदी से प्रभावित कोई भाषा समझना चाहिये।[2] इस भाषा का व्यवहार तब तक होता रहा जब तक भारतीय आर्य-संस्कृति ने कश्मीर में प्रवेश नहीं किया। पिचाश-नाग काल में भारत में रहने वाले आर्यों ने कश्मीर में प्रविष्ट होने के अनेक प्रयास किये थे। किन्तु दुर्गम मार्ग, अत्यधिक शीत तथा नागों व पिशाचों के खौफ के कारण वे कश्मीर में प्रवेश न कर सके थे। कालांतर में, अनेकों प्रयत्नों के बाद आर्य कश्मीर में प्रस्थापित हो ही गये। इस से पूर्व नाग व पिशाच तथा उन के सम्मिश्रण से उत्पन्न वर्ण-संकर जातियां यहां रहती थीं। वैदिक संस्कृति के प्रभाव स्वरूप उस समय की कश्मीरी पर संस्कृत का गहन प्रभाव पड़ने लगा। मौर्यकाल में यह प्रभाव और भी घनिष्ठ हो गया।

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग, १ पृ० २३१
2. 'पैशाची भाषा को दरद भाषा भी कहा जाता है। यह उचित ही मालूम पड़ता है। नाग लोग कश्मीर के मूल निवासी थे, पिशाच कश्मीर के उत्तर-पश्चिम से आये थे। दरदिस्तान इस दिशा में पड़ता है। अतएव भाषा का पैशाची साम्य होना स्वाभाविक है। 'राजतरंगिणी' भाष्यकार रघुनाथ सिंह, पृ० परिशिष्ट १०३

असंख्य संस्कृत शब्द कश्मीरी में घुलमिल गये। भारतीय आर्य भाषाओं के विकास-क्रम में संस्कृत का काल ५०० ई० पू० तक माना जाता है। पाली भाषा-काल ५०० ई० पू० से प्रथम शती तक तथा प्राकृत भाषा-काल प्रथम शती से छठी शती तक माना जाता है।[1]

इतिहास द्वारा यह बात सिद्ध होती है कि कश्मीर प्राचीन काल में बौद्धधर्म का प्रख्यात केन्द्र था। अशोक, कनिष्क, ललितादित्य आदि नरेशों के द्वारा यहां अनेक बौद्ध मठ, विहार, स्तूप आदि निर्मित कराये गये। प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन कनिष्क के समय में हुये थे और उन की मातृभूमि कश्मीर ही थी। दुर्भाग्य से इस काल की भी कोई कृति नहीं मिलती। हां, कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस काल के प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागसेन १५० ई० पू० भी कश्मीर से ही आविर्भूत हुये थे। उन की 'मिलिन्द पण्हो' मिलिन्द-प्रश्न' तत्कालीन कश्मीरी में लिखी गई बताई जाती है। इस कृति का केवल पाली व सिंहाली में रूपांतर मिलता है, मूल पाठ काल के गर्भ में नष्ट हो गया है। इस काल के कुछ शब्द अब भी किश्तवाड़ आदि क्षेत्रों में प्रचलित हैं।[2]

विद्वानों के अनुसार प्राकृत भाषा-काल में पैशाची-प्राकृत का कश्मीरी पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। गुणाढ्य की 'बृहत् कथा' इसी प्राकृत भाषा में लिखी गई बताई जाती है। प्रश्न उठता है क्या वास्तव में यह पैशाची-प्राकृत वही हैं जिस में 'बृहत् कथा' लिखी गई थी तथा जिस का उल्लेख प्राकृत वैयाकरण चण्ड, वररुचि, क्षेमेन्द्र आदि ने किया है। वस्तुतः जिस पैशाची का उल्लेख उक्त वैयाकरणों ने किया है वह मूल पैशाची की एक विशेष बोली थी और इसे चूलिका पैशाचो कहते थे। 'बृहत् कथा' की पैशाची वैयाकरणों द्वारा लिखित पैशाची से भिन्न थी—ऐसा विद्वानों का मत है। वह मूल पैशाची थी तथा उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में प्राचीन काल से प्रचलित थी। इस प्रसंग में ग्रियर्सन की यह टिप्पणी उल्लेखनीय हैं—पैशाची वास्तव में प्राकृत नहीं थी। वह एक प्राचीन भाषा थी। इसे

1. हिन्दी, उद्भव' और विकास डॉ० हरदेव बाहरी, पृ० २५
2. 'काशुर नसर' कश्मीरी में लिखित, पृ० १७, १८

संस्कृत की पुत्री न समझ कर उस की बहिन समझना चाहिये।[1] 'बृहत् कथा' पैशाची-प्राकृत में नहीं लिखी गई होगी, इस के मुख्य तीन और कारण यों हो सकते हैं—

१—गुणाढ्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे प्रतिष्ठान के राजा शालिवान या सातवाहन सन् ७८ ई० के आस-पास के राजदरबार में रहते थे। किन्हीं कारणों से राजा से रुष्ट होकर उन्होंने सुदूर उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में जाकर भविष्य में संस्कृत में साहित्य-रचना करने के बजाय किसी अनार्य भाषा (पैशाची) में लिखने की प्रतिज्ञा कर ली। गुणाढ्य ने अपनी प्रतिज्ञानुसार लोक कथाओं का एक अपूर्व संग्रह तैयार कर लिया। ये सभी कथायें पैशाची में लिखी गई थीं क्योंकि संस्कृत अथवा उसकी किसी प्राकृत भाषा में न लिखने की उन्होंने प्रतिज्ञा की थी।[2]

२—गुणाढ्य का समय ७८ ई० बताया जाता है। प्राकृतकाल प्रथम शती से लेकर छठी शती तक रहा। स्पष्ट है कि साहित्यिक प्राकृतें विशेषकर पैशाची-प्राकृत प्रथम शती में ही इतनी विकसित नहीं रही होगी कि उसमें साहित्य-रचना की जा सके। विद्वानों के मतानुसार प्राकृत-भाषाओं में साहित्य-रचना की परम्परा ५वीं शती से मिलती है।[3] ऐसी स्थिति में यह कल्पना करना कि गुणाढ्य ने ७८ ई० में 'बृहत्कथा' के लिये पैशाची-प्राकृत का प्रयोग किया होगा—ठीक नहीं है।

३—पैशाची प्राकृत में जो प्रमुख ध्वन्यात्मक विशेषतायें मिलती हैं, वे इस प्रकार हैं—

(क)—पैशाची प्राकृत में श—ष के स्थान पर कहीं स और कहीं-कहीं श मिलता है, यथा—शोभते-सोभते, दशवदनः, दसवतना, कष्टम्-कसटं आदि।

(ख)—पैशाची प्राकृत में 'क्त्वा' के स्थान पर 'तून' का आदेश किया जाता है, यथा—गत्वा-गन्तून, चलित्वा-चलितून आदि।

---

1. The Pishachi was not really a Prakrit, in the usual sense of the word. It was very an ancient language, a sister and not a daughter......
Linguistic Survey of India
2. "History of Sanskrit Literature".
A. B. Keith
3. 'काशिरि अदबच तारीख' अबतार कृष्ण रहबर, पृ० ४१, (कश्मीरी में लिखित)

(ग)—भविष्यत् काल में 'स्सि' का आदेश न होकर 'एय्य' का आदेश होता है। यथा—भविष्यति-हुवेय्य्, पठिष्यति-पठेय्य आदि।

कश्मीरी में उक्त ध्वन्यात्मक विशेषताओं में एक नहीं मिलती। कश्मीरी में प्रायः 'श' के स्थान पर 'ह' का आदेश मिलता है, 'क्ष' के स्थान पर 'छ' का तथा 'तून' व 'स्सि' के स्थान पर 'इत' व 'इ' का व्यवहार मिलता है। यथा—शरत्-हरुद, श्वशुर-हिहुर, वक्ष-वछ, द्राक्ष-दछ, पक्षपच्छ-गछित, चलित्वा-चलित, पठिष्यति-परि, गमिष्यति, गन्छि आदि। इस विश्लेषण से भी स्पष्ट हो जाता है कि गुणाढ्य ने 'बृहत् कथा' पैशाची-प्राकृत में नहीं लिखी होगी क्योंकि उस स्थिति में इसका कश्मीरी से ध्वनि साम्य अवश्य होता।

बौद्ध धर्म का प्रभाव कश्मीर में अधिक समय तक न रहा। फलतः कश्मीरी पर एक बार पुनः संस्कृत का प्रभुत्व स्थापित हो गया। दो सौ वर्षों तक कश्मीरी भाषा की यही स्थिति रही। राजा जयापीड़ ८वीं शती के समय में पहली बार कश्मीरी में कविता करने की परम्परा मिलती है।[1] यह परम्परा मौखिक ही रही, उसका लिपिबद्ध रूप उपलब्ध नहीं होता। कश्मीरी कवियों ने अपनी मातृभाषा में कवितायें क्यों नहीं की, वे कश्मीरी के प्रति उदासीन क्यों रहे आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार करना आवश्यक हैं। आश्चर्य की बात है कि राजतरंगिणीकार कल्हण भी कश्मीरी में कहीं कुछ नहीं लिख गये। उनकी राजतरंगिणी में कश्मीरी के केवल तीन-चार शब्द मिलते हैं। जैसे—वातुल, लिद्दर, दिमाग आदि। इतना निश्चित है कि कल्हण के १२वीं शताब्दी के समय में कश्मीर में ऐसी कोई भाषा थी जिसे कल्हण कश्मीरियों की 'लोकभाषा' कहते हैं। इस लोकभाषा के प्रति तत्कालीन कवियों की विरुचि का प्रमुख कारण यह हो सकता है कि उस समय तक कश्मीरी भाषा में वह अर्थ शक्ति व परिपक्वता न आई थी जिसकी काव्य रचना के लिये नितान्त आवश्यकता रहती है। संस्कृत इस दृष्टि से सभी प्रकार से सम्पन्न भाषा थी तथा कवियों ने इसे ही अपनी साहित्य-साधना का माध्यम बनाना उचित समझा।

१३वीं शताब्दी के पश्चात् बढ़ते हुये मुसलमानी शासन के प्रभावस्वरूप कश्मीरी पर फारसी का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव १८वीं शताब्दी

---

3. 'सोन अदव' १९६३, पृ० ६२ कल्चरल अकादमी, श्रीनगर-कश्मीर का प्रकाशन

तक बराबर बना रहा। असंख्य फारसी-शब्द कश्मीरी में घुलमिल गये और असंख्य मूल शब्द विकृत हो गये। सिक्ख और डोगरा शासनकाल में कुछ पंजाबी शब्द भी कश्मीरी में प्रविष्ट हुये।

सारांशतः कश्मीरी का उद्गम पैशाची भाषा से हुआ है। यह पैशाची पैशाची-प्राकृत से भिन्न है तथा कश्मीर में नाग-पिशाचकाल से प्रचलित थी। कालांतर में इस भाषा पर संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा और उसका मूल रूप परिवर्तित हो गया। इस समय कश्मीरी का जो व्यवहृत रूप मिलता है वह संस्कृत, फारसी, अरबी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं से प्रभावित है।

●

साहित्य तथा विचारविमर्श



हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्ध :

विकास एवं उपलब्धि-मूल्यांकन

डॉ० संसार चन्द्र

विकास :

हिन्दी निबन्ध साहित्य के आलोचकों की मान्यता है कि इस का हास्य व्यंग्यात्मक पक्ष प्रायः नगण्य है।[1] वे इस प्रकार की रचनाओं की कमी से निराश होने के साथ इनके हलके स्तर से भी ख़ासे असंतुष्ट रहे हैं।[2] यद्यपि इस का इतर पक्ष, अर्थात् गम्भीर निबन्ध साहित्य पर्याप्त साहित्यिक मान्यता एवं स्वीकृति का अधिकारी समझा गया है, परन्तु इस के व्यंग्य पक्ष की शिथिलता एवं प्रभावहीनता दीर्घ काल से निरन्तर चर्चा का विषय बनी हुई है। वास्तव में अन्य रसों की अपेक्षा हिन्दी साहित्य में हास्य रस कम ही प्राप्त है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टियों से भारतीय जीवन कई शताब्दियों से अव्यवस्थित और अशान्त रहा है जिस से जन-जीवन में हास्य की स्वाभाविक और ऋजु प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होती गई है। परिणाम स्वरूप हिन्दी में हास्य गौणवृत्ति बन कर रह गया।[3] मेरे विचार में, हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्ध साहित्य पर किये गये

---

1. "अतः खेद से कहना पड़ता है कि हिन्दी में हास्य का घोर दुष्काल हो रहा है" ......डॉ० नगेन्द्र—विचार और विवेचन—पृष्ठ ७३।
2. "हिन्दी के जन्म से लेकर भारत की परिस्थितियां ही ऐसी रही हैं कि उत्कृष्ट हास्य की सृष्टि नहीं हो पाई।"—सरोज खन्ना—हिन्दी कविता में हास्य रस—पृष्ठ १३४।
3. हिन्दी नाटकों में हास्य तत्व—डॉ० शान्ता रानी—पृष्ठ १५।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के आक्षेपों के सम्बन्ध में पुनर्विचार की आवश्यकता है। भारत-स्वातन्त्र्य के बाद, और विशेष कर पिछले दशक में हिन्दी हास्य-व्यंग्य निबन्धों का जो रूप सामने आया है, उसने इस साहित्य विधा की परिमाणलाघवता एवं हीन स्तरीयता के विपरीत नई आशा का संचार किया है। इस क्षेत्र में जो उत्तुंग हिलोर आई है उसने प्राचीन मान्यताओं को चुनौती दी है। ऐसी स्थिति में, विविध युगों के संदर्भ में इस समग्र साहित्य के पुनर्मूल्यांकन का औचित्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दी निबन्ध का श्रीगणेश आधुनिक युग से होता है, अतः हास्य व्यंग्यात्मक निबन्धों की चर्चा यहीं से होनी चाहिये। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में हिन्दी साहित्य के आदि काल, पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल को लेकर तो पर्याप्त वैमत्य रहा। आचार्य शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रभृति मूर्धन्य इतिहासकारों ने काल-विभाजन एवं स्वरूप-निर्णय के लिये अपने-अपने प्रतिमानों एवं निष्कर्षों के आधार पर अपने द्वारा दिये गये युग अभिधानों एवं स्पष्टीकरणों का औचित्य सिद्ध किया है परन्तु आधुनिक काल के समारम्भ और स्वरूप के बारे में प्रायः सभी शीर्षस्थ इतिहासकार एक मत ही हैं और वे भारतेन्दु से ही आधुनिक युग का समारम्भ मानते हैं। परन्तु मैं इस चर्चा को हिन्दी साहित्य के आदि काल से प्रारम्भ करना अधिक संगत समझता हूं। क्योंकि मेरे विचार में हास्य व्यंग्य निबन्ध के प्रश्न के साथ साथ हास्य व्यंग्य प्रवृत्ति के विकास का प्रश्न स्वतः जुड़ा हुआ है। अतः इसके विकास का अध्ययन हिन्दी के प्रारंभिक काल—वीरगाथा काल—से करना अभीष्ट है।

हिन्दी साहित्य के प्रभात से ही वीरगाथाकालीन पराभूत, संत्रस्त एवं थका टूटा राष्ट्र विस्थापन की घोर पीड़ा भोगता है। ओजस्वी कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। हास्य-व्यंग्य ऐसी मनः स्थिति के सर्वथा प्रतिकूल था। भक्तिकाल में आत्म-दैन्य की पुंसत्वहीन बिलबिलाहट, आत्म-भर्त्सना, क्षणभंगुरता का त्रास आदि समूचे जन-मानस को भीरु, अकर्मण्य क्लीव और निष्क्रिय बना डालते हैं। ऐसे वातावरण में हंस पाना कहां सम्भव था? सूर के बालकृष्ण और तुलसी के बाल राम अपनी तुतली वाणी से जन-मानस को स्वस्थ बनाने का प्रयास तो करते हैं, परन्तु उस रचना-युग की

भयंकर कुण्ठा में सहज हंसी का यह स्रोत अनायास सूख सा जाता है। रीतिकाल में हास्य एवं व्यंग्य विनोद के पनपने की सम्भावनाएं तो थीं, पर उस युग में यौवन एवं रूप की मदिरा की मादकता इतनी तीखी थी कि वह उन सभी सम्भावनाओं को अनदेखी कर देती है। कहीं कहीं यह हास-परिहास दरबारी वाक्चातुर्य और व्यंग्योक्तियों के रूप में प्रकट तो होता है किन्तु वह अपने स्वाभाविक रूप में उभर नहीं पाता।

आधुनिक काल में हास्य-व्यंग्य-बोध का उदय एक मनोवैज्ञानिक विकल्प के रूप में होता है। इस युग में हिन्दी साहित्य का वीरगाथाकालीन विस्थापन एक भयंकर आवृत्ति पाता है। सन् १८५७ की जनक्रान्ति में समस्त राष्ट्र एक साथ पराभूत होता है। स्वतन्त्र होने के प्रयत्नों में वह उलटे बुरी तरह परतन्त्र हो जाता है। सभी भारतीय राज्य शक्तियां एक साथ अपदस्थ होती हैं, वीरगाथाकालीन विस्थापन तो एक सहज प्रक्रिया के रूप में घटित हुआ था। धीरे-धीरे भारतीय राज्य पराजित विस्थापित हो कर मुस्लिम राज्य में विलयित हुए थे, परन्तु सन् १८५७ की जन-क्रान्ति एक देश व्यापी विस्फोट थी। अतः वीरगाथाकालीन सहज प्रक्रियाजन्य विस्थापन के लिए भक्ति का विकल्प समुचित, संगत, एवं स्वाभाविक था। पर सन् १८५७ के विस्फोटजन्य विस्थापन के लिए भक्ति के स्थान पर सांस्कृतिक एवं सामाजिक भूमि का निर्माण अनिवार्य हो गया था।

जैसे, भक्तिकाल में कृष्ण की बाल हंसी की एक क्षीण धारा फूटती है, वैसे ही भारतेंदु-कालीन सांस्कृतिक और सामाजिक विकल्पभूमि में हास्य व्यंग्य का स्वर मुखरित होता है। भक्तिकालीन बाल हास्य केवल मनोरंजन के लिए था, इस में व्यंग्य का पुट नहीं था। परन्तु भारतेन्दु-कालीन हास्य व्यंग्य सोद्देश्य था। पराभूत राष्ट्र को पुनः जागृत करने के लिए तथा शोषक शासकों पर परोक्ष प्रहार करने के लिए व्यंग्य को हास्य-मिश्रित बनाया गया था। अतः दोनों प्रकार के विस्थापन चक्रों की मूल चेतना, गति और प्रकृति में अन्तर होने के कारण दोनों में हास्य और व्यंग्य का भिन्न रूप विस्तार पाता है। इस लिए मैं भारतेन्दु-कालीन हास्य-व्यंग्य को एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक विकल्प मानता है।

हिन्दी हास्य-व्यंग्य निबन्ध का प्रादुर्भाव भारतेन्दु-काल से होता है

क्योंकि साहित्य में बहुविध अभिव्यक्ति के लिए इसी युग में गद्य को स्वीकृति मिलती है तथा पद्य का एकच्छत्र साम्राज्य टूट जाता है। गद्य अपनी प्राचीन किन्तु अत्यल्प परम्परा के होते हुए भी आधुनिक युग में पूर्ण प्रतिष्ठा पाता है और इसी युग में निबन्ध लेखन भी आरम्भ होता है। यह ऐतिहासिक संयोग इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि हिन्दी निबन्ध के प्रारम्भिक रूप की चेतना हास्य व्यंग्यात्मक प्रकार की थी। अपने प्रारम्भकाल में ही हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्ध अपने प्रौढ़ लक्षणों का परिचय देता है। इस के दो कारण हैं, अपेक्षाकृत अधिक निश्चिन्तता की स्थिति और लेखक की आत्मावलोकन की मनः स्थिति। इस युग में पहली बार पराजित राष्ट्र नये शासकों से धर्मपालन की स्वतन्त्रता और जीवन की सुरक्षा का आश्वासन पाता है। पूर्वकाल में इन सुविधाओं का अभाव उसे निरन्तर कचोटता रहा था। नये विदेशी राज्य के प्रति उस में कुछ विश्वास जगता है। महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्रों के अनुसार भारत में अनेक सुख सुविधाओं का जाल बिछने लगता है। तब देश में एक प्रकार की, राज्य भक्ति की भावना जागृत हो जाती है। आधुनिक युग के इस प्रथम चरण में हास्य विनोद अधिक विस्तार पाता है, उस में व्यंग्य का अंश कम है। किन्तु जैसे-जैसे अंग्रेजी शोषण-तन्त्र का रूप अनावृत्त होता जाता है, वैसे ही आश्वस्त राज्य-भक्त राष्ट्र आक्रोश से भर उठता है। परिणामतः युग का निबन्धकार अपने सहज हास्य में व्यंग्य का तीखा रंग घोलकर शासक, शासित दोनों पर पिचकारियां छोड़ने लगता है। भारतेन्दुयुगीन निबन्धकार जागरूक हैं। वे परिस्थिति को भली भान्ति देखते समझते हैं और उसके विविध प्रकरणों को अपनी दृष्टि से उभारते हैं। उनकी समर्थ लेखनी विषय के सामयिक पक्ष को प्रस्तुत करते समय उनके मूल में निहित शाश्वत तत्व को अंकित करना नहीं भूलती। और कभी कभी, वे मौज में आकर सामयिक राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं को छोड़ सहज मानव-मनोवृत्ति के विविध पक्षों के उद्घाटन में रस लेने लगते हैं। ये निबन्धकार अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण आज भी इस क्षेत्र में दिग्दर्शक का महत्व रखते हैं। इनकी नैसर्गिक विनोदवृत्ति, प्रकरण-वक्रता, स्पष्टवादिता और बात बात पर मीठी चुटकी लेने की बात देखते बनती है। इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त तथा बालकृष्ण भट्ट प्रमुख निबन्धकार हैं। इनकी व्यंग्य विनोद की प्रवृत्ति का विधिवत

अंकन-विश्लेषण करने से इस कोटि के निबन्ध के स्वरूप एवं विकास को समझने में विशेष सहायता मिलेगी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने युगीन साहित्यिकों का नेतृत्व करने के साथ साहित्य की विविध विधाओं में अपनी लेखनी का चमत्कार भी दिखाया था। निबन्ध क्षेत्र में उन्होंने अनेक विषयों को अपनाया था। उनके हास्य और व्यंग्य सम्बन्धी "लेख" नौ हैं।[1] इन निबन्धों के अध्ययन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु अपने वातावरण के प्रति पूर्णतया सजग हैं। उनकी दृष्टि देश की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक दशा से लेकर स्थानीय प्रशासन की विसंगतियों तक को सतर्कता पूर्वक देखती है। उनका हास्य कुण्ठित नहीं, सहज है। वह गम्भीरता के आवरण में लिपटा रहने के कारण सूक्ष्म व्यंग्य का रूप धारण कर लेता है। उन्होंने कहीं कहीं वर्ण्य विषय पर व्यंग्य प्रहार के लिए उसके "स्तोत्र" की शैली अपनाई है। यह शैली वास्तव में विद्रूप (पैरोडी) की है। लेखक विषय की स्तुति करते हुए अप्रत्यक्ष विधि से उसकी या स्थिति की निन्दा प्रस्तुत करता है। "व्याज स्तुति" अलंकार[2] का भारतेन्दु ने इन निबन्धों में जी भरकर उपयोग किया है। उनकी चुस्त और सधी हुई लेखन शैली दूर की मार करती है। "कंकड स्तोत्र" में काशी म्यूनिसिपैलिटी के कुप्रबन्ध पर छींटें हैं। सड़क की मुरम्मत नहीं होती, ऊची-नीची सड़क पर सर्वत्र बड़े-बड़े कंकड़ बिखरे हुए हैं। लेखक कंकड़ों की महिमा वर्णन करने बैठा है—"हे प्रबल वेग अवरोधक! गरुड़ की गति भी आप रोक सकते हो और की कौन कहै इस से आपको प्रणाम है।[3] और, "अथ अंगरेज स्तोत्रं लिख्यते" में लेखक ने व्यंग्य द्वारा अंग्रेज शासकों की कूटनीति तथा भारतीय जन की पतित मनोवृत्ति पर जोर की चुटकी ली है। कुछ ही वाक्यों में

---

1. देखिए—भारतेन्दु के निबन्ध (संग्रहकर्ता और संपादक डॉ० केसरी नारायण शुक्ल प्र० सरस्वती मन्दिर, बनारस प्रथम संस्करण संवत् २००८) के पृ० ९२ से १२२। ये निबन्ध हैं : १. कंकड स्तोत्र, २. अंगरेज स्तोत्र, ३. मदिरा स्तवराज, ४. स्त्री सेवा पद्धति, ५. पांचवें पैगम्बर, ६. स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, ७. लेवी प्राण लेवी, ८. जाति विवेकिनी सभा, ९. सबै जात गोपाल की।
2. व्याज स्तुति अलंकार के अन्तर्गत किसी वस्तु में निन्दा या स्तुति और अन्ततः स्तुति या निन्दा की प्रतीति होती है। 'निंदा में स्तुति स्तुति में निन्दा होय।' देखिये हिन्दी साहित्य कोश (भाग १) प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा।
3. भारतेन्दु के निबन्ध पृ० ९४।

सारी बात आ जाती है : "तुम दिवाकर हो-तुम्हारे प्रकाश से हमारा अज्ञानांधकार दूर होता है, तुम अग्नि हो-क्योंकि सब खाते हो, तुम यम हो-विशेष करके अमला वर्ग के, अतएव हे अंग्रेज़ ! हम तुम को प्रणाम करते हैं ।"

"हे वरद ! हम को वर दो, हम सिर पर शमला बांध के तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे, तुम हम को चाकरी दो हम तुम को प्रणाम करते हैं ।"

"हे अंतरयामिन् ! हम जो कुछ करते हैं केवल तुम को धोखा देने को, तुम दाता कहो इस हेतु हम दान करते हैं, तुम विद्यावान कहो हेतु हम विद्या पढ़ते हैं, अतएव हे अंग्रेज़ ! तुम हम पर प्रसन्न हो हम तुम को नमस्कार करते हैं" ।[1]

"खज़ाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुदा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराट रूप अंग्रेज़ ! हम तुमको प्रणाम करते हैं" ।[2]

"लेवी प्राण लेवी" में गवर्नर जनरल लार्ड मेयो के काशी दरबार में हिन्दुस्तानी रईसों के खुशामदीपन तथा उनकी परेशानी का जो खाका खींचा गया है, वह आज के किसी भी अच्छे व्यंग्य-चित्र से टक्कर ले सकता है। अभी गवर्नर जनरल दरबार में पहुंचे नहीं थे। गर्मी के मौसम में भारी कपड़े पहने रईसों के पसीने छूट चले थे। इस समय प्रबन्धक महानुभावों की सज धज देखने योग्य थी—"नाम लिखने वाले मुनशी बदरी नाथ फूले फाले अबा पहिने पगड़ी संजे पुराने दादुर की भांति इधर उधर उछलते और शब्द करते फिरते थे और बाबू भी वैसे ही छोटे तेन्दुए बने गरज रहे थे।" लोग प्रतीक्षा करते करते ऊब गये। फिर कहीं जा कर गवर्नर जनरल के आगमन की घोषणा हुई, गर्मी से घबराये लोग जैसे तैसे उठके खड़े हुए। इस धूम-धाम के खोखलेपन पर लेखक अंत में यह फिकरा चुस्त करता है—'वाह वाह दर्बार क्या था' "कठपुतली का तमाशा" था या बल्लमटेरों की "कवायद थी या बन्दरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतान था या फौजदारी की सजा थी" ।[3]

---

1. भारतेन्दु के निबन्ध पृ० ९७।
2. भारतेन्दु के निबन्ध पृ० ९९।
3. भारतेन्दु ग्रन्थावली तीसरा भाग—पृ० ९३८-९३९।

भारतेन्दु का आत्मचरित्र एक कहानी "कुछ आप बीती कुछ जग बीती" आंशिक, अपूर्ण रचना है। यह रचना-खण्ड ही उनकी जिंदादिली का प्रबल प्रमाण है। लेखन शैली का प्रवाह, वक्रता और चापल्य-गुण अविस्मरणीय है।

प्रतापनारायण मिश्र के अधिकांश निबन्धों का विषय सामाजिक समस्याएं हैं।[1] विषय गम्भीर है और उसके प्रतिपादन में चपलता है। स्वतन्त्र हास्य-व्यंग्य निबन्धों में मिश्र जी ने समस्याओं की गम्भीर चिन्ता छोड़कर कहीं कहीं ख्याली घोड़े को सरपट भगाया है उनकी विचार तरंगें कुछ बेतुकापन लिए हुए चलती हैं। निबन्ध में गप शप और लतीफेबाजी का वातावरण रहता है। 'मुच्छ' शीर्षक निबन्ध में मूछ को विषय बनाकर विविध प्रसंगों में उसके महत्व पर विचार किया गया है। मौज आने पर वह छोटे छोटे चित्र खींच कर हंसते हंसाते हैं। प्रकरण वैचित्र्य और कल्पना की उड़ान पाठक को गुदगुदा जाती है। वे लिखते हैं—"बहुतेरे वैष्णव महाशय सदा मुच्छ मुड़ाए रहते हैं और कह देते हैं कि मुच्छ में छू जाने से पानी मदिरा समान हो जाता है। यह बात सच होती तो हमारे नव शिक्षितों का बहुत सा रुपया होटल जाने से बच जाता। यहां बात ही बात में वैष्णवों तथा नव शिक्षितों पर चोट हो गई। अब बूढ़ों पर दृष्टि जाती है—"बाजे माया जाल ग्रस्त बुड्ढों को नाती से मुच्छें नचवाते बड़ा सुख मिलता है। पुपले-पुपले मुंह में तमाखू भरे हो हो २, अरे छोड़ भाई", कहते हुए कैसे "पुलक प्रफुल्लित पूरित गाता" देख पड़ते हैं। कभी किसी बूढ़े कनवजिया को सेतुआ पीते देखा

1. देखिए "प्रताप नारायण ग्रन्थावली" (प्रथम खण्ड) संपादक विजयशंकर मल्ल, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशी। प्रथमावृत्ति संवत् २०१४ वि०। इस ग्रन्थ में मिश्र जी के १६१ निबन्ध संकलित हैं और अन्त में "सुचाल-शिक्षा" पुस्तिका के उपदेशात्मक २१ निबन्ध भी हैं। छांटने पर हास्य व्यंग्य सम्बन्धी २२ निबन्ध प्राप्त हैं। ग्रन्थ में इन निबन्धों की क्रम संख्या तथा शीर्षक इस प्रकार हैं: १२, मुक्ति के भागी, १६. टेंढ़ जानि शंका सब काहू, २५. मुच्छ, ४३. सोना, ४५. दुनिया अपने मतलब की है, ४६. सोने का डण्डा और पोंडा, ४७. मिडिल क्लास, ४८. द, ४९. उरदू बीबी की पूंजी, ६१. परीक्षा, ६७. न्याय, ६८. ट, ७६. काम, ७८. प्रताप चरित्र, ८२. खुशामद, ८९. किस पर्व में किसकी बनि आती है, ९०. किस पर्व में किस पर आफत आती है, ९४. दांत, ९८. मतवादी अवश्य नर्क जायगे, १०१. उपाधि, ११६. वृद्ध तथा १८२. धोखा।

है ? "मुच्छों से उरौती चूती है, ह ह ह ह र" ।[1]

अब खुशामद के "करामाती लटके" का हाल सुनिये। लेखक ने चटखारे ले ले कर उसकी महिमा का गान किया है। यहां कल्पना की उमंग और कलम की रवानी, एक दूसरे से होड़ ले रहे हैं। खुशामद की प्रक्रिया का कच्चा चिट्ठा इस मुहावरेदार भाषा में सुनिये—उरदू की शीरीं जबान इत्यादि का प्रचार हुआ तभी से इस करामाती लटके का भी जौहर खुला। आ हा हा ! क्या कहना है ! हजूर खुश हो जायें और बन्दे को आमद हो। यारों के गुलछर्रे उड़ें। फिर इसके बराबर सिद्धि और काहे में है ? आप चाहे जैसे कड़े मिज़ाज हों, रूखड़ हों, मक्खीचूस हों, जहां हम चार दिन झुक झुक के सलाम करेंगे, दौड़ दौड़ आपके यहां आवेंगे, आपकी हां में हां मिलावेंगे, आपको इन्द्र, वरुण, हातिम, करण, सूर्य, चन्द्र, लैला, शीरीं इत्यादि बन वेंगे, आपको ज़मीन पर से उठा के झंडे पर चढ़ावेंगे, फिर बतलाइए तो आप कब तक राह पर न आवेंगे ? हम चाहे जैसे निर्बुद्धि, निकम्मे, अविद्वान, अकुलीन क्यों न हों, पर यदि हम लोक लज्जा, परलोक भय, सब को तिलांजलि देके आप ही को अपना पिता, राजा, गुरु, पति, अन्नदाता कहते रहेंगे तो इस में कुछ मीन मेख नहीं है कि आप हमें अपनावेंगे और हमारे दुख दरिद्र मिटावेंगे। अजीसाहब, आप ही हैं, हम दीनानाथ, दीनबन्धु, पतितपावन, कह कह के ईश्वर तक को फुसला लेने का दावा रखते हैं, दूसरे किस खेत की मूली हैं। खुशामद वह चीज है कि पत्थर को मोम बनाती है। बैल को दुह के दूध निकालती है। विशेषतः दुनियादार, स्वार्थपरायण उदरंभर लोगों के लिए इस से बढ़ के कोई रसायन ही नहीं है। जिसे यह चतुराक्षरी मन्त्र न आया उसकी चतुरता पर छार है, विद्या पर धिक्कार है और गुणों पर फिटकार है" ।[2]

बालकृष्ण भट्ट गम्भीर लेखक हैं। उन्होंने समाजोपयोगी विषयों पर लिखा है। सामाजिक गुण दोषों पर दृष्टिपात करते समय वे सतर्क हैं और उनकी शैली में चटपटापन है। विषय विवेचन में वर्णन चित्रण की प्रधानता है; अनुभव की गहनता है किन्तु कल्पना की उड़ान क्षीण है।

---

1. प्रतापनारायण ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) पृ० ७८-७९।
2. प्रतापनारायण ग्रन्थावली (प्र० खं०) पृ० २२६।

भट्ट जी ने हास्य-व्यंग्य को स्वतन्त्र विषय बनाकर बहुत कम लिखा है।[1] "सुख क्या है ?" शीर्षक निबन्ध में लोगों की सुख सम्बन्धी मिथ्या धारणा पर व्यंग्य करते हुए बड़े परिवार को सुख का मूल समझने वालों का यह चित्र प्रस्तुत करते हैं। चित्र बहुत पहले का होने पर भी आज के काम का है। 'परिवार नियोजन' के प्रचारकों को यदि हाथ लग जाय तो वे न जाने कहां कहां इसका उपयोग कर बैठेंगे। भट्ट जी लिखते हैं कोई बड़े परिवारी और बढ़े हुए कुनबे को सुख की सीमा मानते हैं। कच्चे बच्चे लड़के वालों से घर भरा हो एक इधर होता है दूसरा उधर पड़ा चिल्ला रहा है सब ओर किच पिच गुल शोर मच रहा है। एक बाबा की दाढ़ी घसीटता है दूसरा कान मीजता है, तीसरा गोद में चढ़ा बैठा है, चौथा सामने पड़ा मचल रहा है। बाबा बेवकूफ मनोमन फुटेहरा से मगन होते जाते हैं और अपने बराबर भाग्यवान और धन्य किसी को नहीं मानते कोई कोई इसी को बड़ा सुख मानते हैं कि अनगिनती रुपया पास हो उलट पुलट बार बार उसे गिनाकर न खाये, न खरचे, सांप बन बैठे बैठे ताकते रहें। जैसे हो तैसे जमा जुटती रहै, बात जाय, पत जाय, लोक में निन्दा हो, कोई कितना ही भला बुरा कहे पर गांठ का पैसा न जाये।"[2]

बाल मुकुन्द गुप्त के निबन्ध व्यंग्य प्रधान हैं। हास्य का उन में प्रायः अभाव है। उनके लेखन में चिन्ता, व्यंग्य और आलोचना के तत्व प्रखर हैं।[3] उनके विषय राजनीतिक है और दृष्टि पत्रकार की है। वे विषय का सीधा विवेचन और आलोच्य की प्रत्यक्ष आलोचना करते हैं। लेखन का मन देश की दुर्दशा से पीड़ित है। यही पीड़ा कटु हो कर व्यंग्य बन गई

---

1. भट्ट निबन्धावली (दूसरा भाग) संपादक धनंजय भट्ट "सरल" प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग-तीसरा संस्करण संवत् २००७। हास्य व्यंग्य सम्बन्धी निबन्धों की क्रम संख्या तथा शीर्षक इस प्रकार हैं—१२. सुख क्या है ? १३. संसार सुख का सार है हम इसे दुख का आगार कर रहे हैं, १४. चढ़ती जवानी की उमंग तथा ३४. सोना।
2. भट्ट निबन्धावली (दूसरा भाग) पृ० ५०।
3. देखिए—बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली (प्रथम भाग) संपादक—झाबरमल्ल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी। प्रकाशक गुप्त स्मारक ग्रन्थ प्रकाशन समिति, कलकत्ता। प्रथम संस्करण सं्वत् २००७ वि० में "शिवशम्भु के चिट्ठे और खत" के अन्तर्गत संकलित, १४ निबन्ध।

है। विषय के प्रतिपादन में कल्पना की उछाल और मस्ती का अभाव सा है। निबन्धों में हास्य और कल्पना का पुट देने के लिए, लेखक 'शिवशंभु' के भांग के नशे में तरंगित होने की कल्पना की गई है। लेखक का मन पीड़ित है, उसने उस पर कृत्रिम उमंग, नशे का आरोप कर लिया है। पीड़ा प्रधान होने के कारण जब नशे की तरंग टूट-टूट जाती है, तो निबन्धों के बीच मस्ती गायब हो कर गम्भीरता और कटुता का रूप धारण कर लेती है। लेखक कभी-कभी ऊब कर वस्तु स्थिति से दार्शनिक जैसी तटस्थता धारण कर लेता है। लिखने के ढंग में फक्कड़पन और साफ-गोई है। सीधे, खरे शब्दों में उद्‌बोधन प्रवृत्ति है।

शिवशम्भु को हर समय अपने देश के हित की चिन्ता है। इस भारत भूमि से उस 'बूढ़े भंगड़' को गहरा लगाव हैं। कारण, "उसने इस भूमि में जन्म लिया है। उस का शरीर भारत की मिट्टी में बना है और उसी मिट्टी में अपने शरीर की मिट्टी को एक दिन मिला देने का इरादा रखता है"।[1] इस भूमि पर अंग्रेज़ों का शासन है। शासकों का प्रतिनिधि वायसराय देश के भले बुरे का उत्तरदायी है। इस भूमि पर अंग्रेज़ों का शासन हैं। शासकों का प्रतिनिधि वायसराय देश के भले बुरे का उत्तरदायी है। वह जब यहां के नमक पर पल कर यहीं के के लोगों का अहित चिन्तण करता है, तो भंगड़ी शिवशम्भु की तरंग टूट जाती है और वह उसे खरी-खरी सुनाने पर उतर आता है। शिवशम्भु अपनी झोंक में कभी वायसराय, माई लार्ड, को सुनाता है तो कभी इस अभागे देश के दुर्भाग्य पर झींकता है। वह लिखता है—"माई लार्ड! इस देश का नमक यहां के जलवायु का साथ देता हैं, क्योंकि उसी जलवायु से उस का जन्म है। उस की तासीर भी साथ-साथ होती रही। वह पहले विचार बुद्धि खोता है। पीछे दया और सहृदयता को भगाता है, और उदारता को हज़म कर जाता है। अन्त को आंखों पर पट्टी बांध कर कानों में ठीठे ठोंक कर, नाक में नकेल डाल कर आदमी को जिधर तिधर घसीटे फिरता है और उसके मुंह से खुल्लमखुला इस देश की निन्दा कराता है। आदमी के मन में वह यही जमा देता हैं कि जहां का खाना वहां की खूब निन्दा करना और अपनी शेखी

1. बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, पृ० १८८।

मारते जाना" ।[1]

भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों की कला का विश्लेषण करने के उपरान्त स्पष्ट हो जाता है कि शासकों की धूर्त नीति के क्रमशः उद्घाटन के अनुसार इस युग का हास्य मन्द और व्यंग्य उत्तरोत्तर प्रखर होता गया है।

द्विवेदीकालीन परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार इस युग के हास्य और व्यंग्य का रूप भी बदलता है। द्विवेदीयुगीन सम्पूर्ण निबन्ध साहित्य प्रकृति से गम्भीर एवं बौद्धिक है। इसलिए इस युग में न तो हास्य का परिष्कृत, उल्लसित रूप उभरता है, और न ही व्यंग्य का प्रखर रूप लक्षित होता है। मेरी धारणा है कि व्यंग्य की पूर्वयुगीन प्रखरता इस युग के अतिरिक्त बौद्धिक "एटीच्यूड" से कुंठित होने लगती है। विस्तार की दृष्टि से भी इस की परिधि प्रायः संकुचित है। यह प्रवृत्ति सामाजिक से व्यक्तिगत बनने लगती है। अतः इसका हास्य विस्तार न पाकर अधिक गहन हो गया है। इसका व्यंग्य अपना घनत्व खोकर कुछ हल्का होने लगता है। इस में वृश्चिक दंश की सी तीखी लहर उत्तरोतर विलुप्त होने लगती है। वास्तव में भारतेन्दु युगीन हास्य व्यंग्य निबन्धकार पराजय की सद्य पीड़ा से व्याकुल थे। अंग्रेज़ों के प्रति आस्थावान् होकर ही वे उनके प्रति अनास्थ हुए थे, उन में चोट करने का तीव्र आक्रोश था। द्विवेदीकालीन हास्य व्यंग्य निबन्धकार न तो पराजय की पीड़ा के सामयिक भोक्ता थे और न ही उन्होंने अंग्रेजों का छद्म रूप देखा था। अतः उनकी प्रणयन प्रक्रिया में ऐसे प्रतिहिंसात्मक आक्रोश का वैसा रूप नहीं मिलता। उनका व्यंग्य-बोध सामाजिक विसंगतियों पर ही अधिक चोट करता है। ये निबन्धकार सामाजिक विडम्बनाओं पर शरसंधान करने में तत्पर हैं। इसका एक कारण यह भी है कि इस युग की राजनैतिक चेतना रागात्मक अहिंसा में विश्वास रखने लगती है। कांग्रेस में गर्म दल की अपेक्षा नर्म दल का प्रभुत्व जमने लगता है। ऐसी अवस्था में विदेशी शासकों पर व्यंग्य वर्षा करना युग नीति के अनुकूल नहीं बैठता था।

प्रसाद अथवा शुक्ल युग में निबन्ध की चेतना व्यक्ति की बाह्य

1. बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली पृ० २००-२०१।

परिधि से सिमट कर अन्तर्मुखी एवं चिन्तनपरक बनती है। हास्य एवं व्यंग्य बोध का पूर्वयुगीन रूप इस ऐकान्तिकता में खो जाता है। ऐकान्तिकता की स्थिति हास्य एवं व्यंग्य की प्रवृति के प्रतिकूल बैठती है। अकेले में हंसने वाला पागल माना जाता है और व्यंग्य करने वाला अपने ही बाल नोचने लगता है। अतः यह युग अपनी बौद्धिक चेतना, सूक्ष्मान्वेषण तथा जिज्ञासावृत्ति के कारण हास्य-व्यंग्य को उत्कर्ष देने में असफल रहा है। भारतेन्दुयुगीन निबन्धों में सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना अधिक थी। द्विवेदी युगीन निबन्धों में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का स्पन्दन था परन्तु प्रसाद अथवा शुक्ल युग में ये दोनों स्वर गौण हो जाते हैं। उस में कलात्मक, सैद्धान्तिक एवं भावात्मक चेतना का स्वर प्रधान हो जाता है। हास्य-व्यंग्य की परम्परागत संभावनाएं भावात्मक निबन्धों में ही विस्तार पाती हैं। शुक्ल के निबन्धों में वे फूटने का यत्न करती हैं परन्त बाबू गुलाबराय के ऐसे निबन्धों में ही उनकी अभिव्यक्ति मुखर हो पाती है।

स्वरूप एवं चेतना की दृष्टि से इस युग के हास्य व्यंग्यात्मक निबन्ध सर्वथा वैयक्तिक प्रकार के हैं। इन में प्रतिहिंसात्मक अथवा प्रहारात्मक चेतना नहीं है। इस युग के निबन्धकार परस्पर की चुहल-बाजियों और व्यंग्य भरी चुटकियों में संलग्न होकर रसभरी पिचकारियां छोड़ने में व्यस्त दिखाई देते हैं। गहरे तीखे नश्तर चलाना इनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं था। अतः इनके निबन्ध दैनंदिन जीवन की अनुभूति से ओत-प्रोत हैं। उन में भोगी स्थितियों पर भी व्यंग्य की चुटकी काटी गई है, अथवा हास्य की गुदगुदी छेड़ी गई है। ऐसे निबन्धों को सम-सामयिक परिवेशों से मुक्त तथा तदयुगीनता से निरपेक्ष माना जा सकता है। द्विवेदी एवं भारतेन्दुयुगीन निबन्धों में ऐसी निरपेक्षता सम्भव नहीं थी। इन निबन्धों को प्रतिक्रियारहित संतुलित मस्तिष्क की उपज माना जा सकता है। पूर्वयुगीन हास्य व्यंग्यात्मक निबन्धों के प्रणयन में परिप्रेक्ष्य की प्रतिक्रिया का विशेष योगदान रहा है। प्रगतिवादी युग में प्रसाद अथवा शुक्ल युग की हास्य व्यंग्यात्मक चेतना परिवर्तित स्थिति के अनुसार नया रूप ग्रहण करती हैं। बाबू गुलाब राय के निबन्धों में हास्य व्यंग्य की व्यक्तिवादी चेतना है अन्य निबन्धकारों में वह युग की सापेक्षताओं में परिवर्तित होकर विस्तार पाती है। इन

में आक्रोश एवं हुंकार भी है, परन्तु ऐसा होने पर भी इस युग के निबन्धों में न तो हास्य का ओट कारक रूप ही मिलता है और न ही व्यंग्य का पूर्वयुगीन प्रखर एवं प्रहारात्मक रूप उपलब्ध होता है। वैसे कुछ प्रगतिवादी निबन्धकारों की रचनाओं में हास्यहीन व्यंग्य का बड़ा ही उग्र रूप मिलता है। इसे "लठैत ब्रांड" व्यंग्य कहा जा सकता है।

स्वरूप एवं चेतना की दृष्टि से इस युग के हास्य व्यंग्यात्मक निबन्धों को व्यक्तिवादी मानना होगा। गुलाबराय के निबन्धों के अतिरिक्त शेष प्रगतिवादी निबन्धकारों के हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध सामाजिकता से अनुप्राणित होते हुए भी वैयक्तिक चेतना से स्पन्दित हैं। इन में जहां आत्मानुभूति और आत्म साक्षात्कार का ईमानदार रूप है, वहां इन में प्रतिक्रियारहित और प्रतिक्रियान्वित आत्म की गूंज भी है तथा विशुद्ध आत्म का योगदान भी है। समग्रतः इस युग के निबन्धों में हास्य-व्यंग्य का स्तर अपने पूववर्ती युगों की अपेक्षा हलके प्रकार का है।

आज का हास्य व्यंग्य निबन्ध:

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हास्य एवं व्यंग्य की चेतना सर्वथा परिवर्तित पारिवेशिक सापेक्षताओं में ढलती है। स्वतन्त्रता के साथ ही देश की पूर्वी एवं पश्चिमी विभाजित सीमाओं में विस्थापन दुर्घटित होता है। इसकी संक्रामक पीड़ा से सारा देश लगभग एक दशक तक विकलांग बना रहता है। इस विभीषिका से मुक्ति पाते ही सीमा संक्रमण का घोर संकट छा जाता है। भले ही यह युद्ध नेफा और लद्दाख की सुदूर सीमाओं पर लड़ा गया हो, फिर भी इसके परवर्ती परिणामों से सारा देश आहत होता है। अभी देश संभलने का प्रयास ही करता है कि पुनः पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान से युद्ध छिड़ जाता है। परिणामतः देश में भयंकर आर्थिक विघटन और मुद्रा अवमूल्यन होता है, सारा राष्ट्र कोल्हू में निपीड़ित होने जैसी पीड़ा से हाहाकार कर उठता है। संक्षेप में, यह हमारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का परिवेश है, जिस में इन दो दशकों का हास्य एवं व्यंग्य बोध विकसित होता है। ऐसी परि-स्थिति में प्रायः स्वतन्त्र राष्टोचित हास्य व्यंग्यबोध का समुचित विकास नहीं हो पाता। उच्च स्तर के हास्य व्यंग्य के लिए उदात्त चितवृत्ति और प्ररिष्कृत रुचि नितान्त आवश्यक है। हिन्दी का निबन्धकार ऐसे

विशद जीवन-बोध से आज प्रायः सर्वथा असम्पन्न है। मैं इसके लिए स्वातन्त्र्योत्तर युग के चक्राकार संक्रमण को ही उत्तरदायी मानता हूं। फ़िर भी, विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आज का हास्य व्यंग्य साहित्य अपेक्षतः प्रचुर मात्रा में प्रणीत होने के साथ स्तर की दृष्टि से नई ऊंचाइयों को छूने का अभिनन्दनीय प्रयास कर रहा है। इस में भारतेन्दु - कालीन व्यंग्योचित वैभव तथा प्रसाद अथवा शुक्ल युगीन शालीनता का अपूर्व सामंजस्य मिलता है।

आज यद्यपि कुछ अंशों में बाबू गुलाबराय परम्परा के हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों की व्यक्तिवादी चेतना का ही विस्तार मिलता हैं, फिर भी उनके रूप में पर्याप्त अन्तर आ गया है। आज का हास्य व्यंग्य निबन्धकार वैसे अपने पूर्ववर्ती हास्य व्यंग्यात्मक निबन्धकारों की अपेक्षा कुछ दिशाओं में अधिक प्रबुद्ध है। वह न तो अपने निबन्धों में हास्य के नाम पर प्रहसनात्मकता जोड़ता है, और न ही मीरासी अंदाज़ से भोंड़ा हास्य ही। भाण्डपरक हास्य से उसे विरुचि है। बाजारु, विकृत और अशिष्ट हास्य के प्रति भी वह उपेक्षा बरतता है। वह तीरों को लक्ष्यहीन छोड़कर, अपने तूणीर खाली नहीं करना चाहता और न ही व्यंग्य के नाम पर जुमलेबाजी, मुहावराकशी और फबती कसने का उसे शौक है।

आज के निबन्धकार की सर्वाधिक विशेषता, उसकी अपने कथ्य के प्रति ईमानदारी हैं। उसका कथ्य उसके जिये हुए क्षणों से चुना जाता है। उसका विशुद्ध आत्मानुभूत उस में प्रतिष्ठा पाता है। उसकी अभिव्यक्ति महफिल में हास्य का कहकहा बुलन्द करने के लिए नहीं है, प्रत्युत वह अनुभूति के मार्मिक क्षणों की एक प्रक्रियात्मक परिणति है।

सामान्यतः हास्य व्यंग्य के नाम पर आज जो धड़ाधड़ छप रहा है, उस से बड़ी अरुचि जगती है। ऐसी अवस्था में विचार आता है कि हिन्दी का हास्य व्यंग्य निबन्ध साहित्य अंग्रेज़ी के ऐसे साहित्य से बहुत पीछे है। यह कहते समय अंग्रेज़ी साहित्य के हास्य व्यंग्यात्मक निबन्धों का एक गौरव-पूर्ण इतिहास मन में कौंध जाता है। ऐसा ही स्तर हिन्दी के हास्य व्यंग्यात्मक निबन्धों में ढूंढने पर हमें निराशा होती है।

मैं अंग्रेज़ी के हास्य व्यंग्यात्मक निबन्धों की हिन्दी निबन्धों के साथ तुलना करने के पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि दोनों ही सर्वथा विभिन्न मनः

स्थितियों और परिवेशों की उपज हैं। स्वतन्त्र एवं स्वावलम्बी ब्रिटेन के अंग्रेजी निबन्ध साहित्य में जितना हास्य का प्राचुर्य है, उतना व्यंग्य का नहीं। इसी प्रकार परतन्त्र भारत के हिन्दी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य का जैसा आधिक्य है वैसा हास्य का नहीं। वास्तव में साधन-सम्पन्नता हास्य के अधिक अनुकूल होती है। सम्पन्न व्यक्ति ठहाके में मैं गर्क हो जाता है। नश्तरबाजी के लिए वह विशेष उत्सुक नहीं होता। परतन्त्र राष्ट्र का प्रतिबन्धित व्यक्ति व्यंग्य वर्षा के लिए सन्नद्ध होता है। वह हास्य की आड़ में व्यंग्य-बाण छोड़ता है।

हरिशंकर परसाई, शरद् जोशी, श्रीलाल शुक्ल, केशवचन्द्र वर्मा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, विद्यानिवास मिश्र, शान्ति महरोत्रा, फिक्र तौंसवी, कृष्णचन्दर, कन्हैयालाल कपूर, प्रकाश पण्डित, गोपालप्रसाद व्यास, प्रभाकर माचवे, बरसानेलाल चतुर्वेदी प्रभृति हास्य व्यंग्यात्मक निबन्ध लेखकों के अपने अपने निबन्ध संग्रहों, संकलित संग्रहों तथा साप्ताहिक-मासिक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्धों में प्रायः ऐसे प्रचुर निबन्ध देखने को मिलते हैं, जिन में सामायिक जीवन की अनेक सामाजिक, राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय विडम्बनाओं पर प्रखर एवं निर्भीक प्रहार होते हैं। प्रहार की यह निर्भीकता आज के युग के बुनियादी अधिकार के संदर्भ में और भी अधिक साहसिक बन उठी है। इसी लिए आज के ऐसे निबन्धकार दैनन्दिन की छोटी से छोटी समस्या को लेकर राष्ट्रीय जीवन तक बड़ी से बड़ी गम्भीर समस्या को व्यंग्य बाणों से छलनी करने का अतिरिक्त साहस दिखाते आ रहे हैं। यह अतिरिक्त साहस ही आज के हास्यव्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्य को विगत युगीन हास्य व्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्य से अलगाता है। परतन्त्र और संघर्षशील राष्ट्र में दिखाया गया अभिव्यक्तिगत साहस, स्वतन्त्र एवं आतंकहीन राष्ट्र में दिखाये गए अभिव्यक्तिगत साहस की अपेक्षा अत्यधिक अभिनन्दनीय है। साहस की ये दोनों स्थितियां अपने अपने युग के हास्य व्यंग्यात्मक साहित्य में हास्यव्यंग्य के विविध स्तरों को जन्माती हैं। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन व्यंग्य अधिक प्रच्छन्न है और हास्य घुटा घुटा जब कि स्वातन्त्र्य युग का व्यंग्य, अप्रच्छन्न उन्मुक्त एवं स्वतन्त्र है।

आज का आजाद भारत जीवन की जिन पीड़ाओं को भोग रहा है,

उनके कारण न तो अब अंग्रेज़ी निबन्ध साहित्य का सा ऐकान्तिक व्यंग्य ही उस में उभर रहा है। वस्तुतः हम स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्रता की विडम्बनाओं को जी रहे हैं। आज यहां हास्य और व्यंग्य का मिश्र रूप सामने आ रहा है। यह स्थिति हास्य व्यंग्य के एक नवीन रूप के विकास की जन्मदात्री कही जा सकती है। इस के विविध आयामों में हिन्दी निबन्ध साहित्य की प्रबल सम्भावनाओं की समुचित अभिव्यक्ति अवश्यम्भावी है।

उर्दू का हास्य व्यंग्य निबन्ध

अंग्रेज़ी निबन्ध के साथ-साथ उर्दू निबन्ध की चर्चा भी यहां आवश्यक है। उर्दू तो हिन्दी की एक समगोत्र भाषा है। उर्दू में हास्य-व्यंग्य की समृद्ध परम्परा मिलती है, जो हिन्दी के समानांतर चलती है और जिस का छुटपुट प्रभाव हिन्दी के हास्य व्यंग्य निबन्धकारों पर यत्र-तत्र दिखाई दे जाता है। प्रारम्भ में यह प्रभाव उर्दू पत्रकारिता के क्षेत्र से हिन्दी पत्रकारिता में संक्रमित होता है। हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्ध मूलतः पत्रकारिता की उपज हैं। उन पर उर्दू प्रभाव के छींटे पड़ने लगते हैं। ये छींटे हिन्दी हास्य व्यंग्य के वास्तविक रूप को और अधिक आकर्ष बनाते हैं। यहां इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि भारतेंदु और द्विवेदी युग के निबन्धकार अपनी मौलिकता के प्रति इतने सजग थे कि वे ऐसे प्रभावों को सामान्य रूप में ही ग्रहण करते थे। अतः हिन्दी के निबन्धकारों पर उर्दू के अनुकरण का आक्षेप लगाने से पूर्व किसी भी व्यक्ति को अनेक बार सोचना होगा। संदेह नहीं कि अनेक हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्धकारों ने अरबी, फारसी पदावली का खुल कर प्रयोग किया है। इस से उन्होंने अपने अभिव्यक्ति को अधिक वक्र और प्रभावशाली बनाने का यत्न किया है। वास्तव में यह प्रवृत्ति पत्रकार जगत् की ही देन है जो अभिव्यक्ति के माध्यम के स्तर तक तो अपने छींटे छोड़ जाती है, परन्तु यह हिन्दी लेखकों की अन्तः प्रक्रिया को बहुत कम प्रभावित करती है।

आज उर्दू के हास्य व्यंग्य लेखक अपने को हिन्दी के हास्य व्यंग्य लेखक सिद्ध करने की फिक्र में लगे हुए हैं। आज की नयी पीढ़ी दिन प्रतिदिन उर्दू से प्रायः अनभिज्ञ होती जा रही है और इसी लिए उर्दू लेखक

अपने पूर्ववर्ती व्यापक सम्पर्क से क्षेपक की तरह निकाला जा रहा है। ऐसी अवस्था में उर्दू का पहलवान, रूप बदल कर हिन्दी के अखाड़े में घुस रहा है। वह अपनी रचनाओं का लिप्यन्तरण करके अथवा करवाकर उनके उर्दू रंग पर हिन्दी का रंग पौत रहा है। वह समझता है कि शायद उर्दू शब्दों के स्थान पर हिन्दी पर्याय रख देने से वह रचना हिन्दी की सम्पत्ति बन जाएगी और वह इस प्रकार हिन्दी निबन्धकारों के वर्ग में सम्मिलित हो जाएगा। उर्दू अदीबों के लिए निस्संदेह यह संप्रेषण का संकट है। उन का माध्यम किसी पुराने सिक्के की तरह अपनी मान्यता खो रहा है। इधर उर्दू की पत्र पत्रिकाएं भी कम होती जा रही हैं। यही कारण है कि हिन्दी की मूर्धन्य पत्रिकाओं में उर्दू निबन्धकार अब ठाठ से छप रहे हैं। ऐसे लेखों में अनुवादक का नाम तक नहीं होता और हिन्दी का सामान्य पाठक उन्हें हिन्दी के महान् लेखक समझने लगता है। जबकि बहुत से ऐसे लेखकों की कैफीयत यह है कि वे मूलतः तो उर्दू में लिखते हैं परन्तु उर्दू में छपने से पूर्व ही हिन्दी में लिप्यन्तरित होकर छप जाते हैं। निःसन्देह यह स्थिति विचित्र है।

मैं स्वीकार करता हूं कि उर्दू में हास्य व्यंग्य का समृद्ध रूप मिलता है। प्रभूत साहित्य सम्पत्ति-सम्पन्न होते हुए भी हिन्दी इस क्षेत्र में उर्दू को परास्त नहीं कर सकती। उर्दू के प्रारम्भिक निबन्धकार सर सैयद अहमद खां, ख्वाजा हसन निजामी प्रभृति इतने सशक्त नहीं थे परन्तु पितरस का उदय उर्दू हास्य व्यंग्य निबन्ध परम्परा में सर्वथा अभूतपूर्व है। हिन्दी में इस कोटि का हास्य व्यंग्य निबन्धकार दुर्लभ है। बिहारी की तरह इतना संक्षिप्त एवं परिमित लिख कर शायद ही किसी अन्य लेखक ने इतनी व्यापक कीर्ति उपार्जित की हो। इनके समकालीन तथा परवर्ती निबन्धकार इन से उन्नीस ही रहे। फिर भी उर्दू हास्य व्यंग्य निबन्ध परम्परा निर्बाध अग्रसर होती रही। आज़ादी के बाद उर्दू के हास्य व्यंग्य निबन्धकार स्वयं हिन्दी में 'कनवर्ट' होने लगे हैं। उर्दू, हिन्दी की अन्तरंग चेतना एक दूसरे को छू रही है। अतः अब प्रभाव अधिक गहरा पड़ रहा है। हिन्दी के निबन्ध और अधिक उजले, निखरे और पैने होकर आगे जा रहे हैं।

उर्दू से हिन्दी में अवतरित होने वाले, इन नवागत लेखकों में कृष्ण

चन्दर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन का हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्ध संग्रह 'सरगम' उच्च कोटि की रचना है। 'सभापति की हास्य चर्चा' नामक निबन्ध में इन्होंने हास्य के स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया है—इन्हें अपने देशवासियों से गिला है कि वे हास्य का महत्व नहीं समझते—"यहां के पुरुष हर समय गम्भीरता का आवरण ओढ़े रहते हैं। स्त्रियां घूंघट काढ़े रहती हैं। बच्चों की हंसने पर पिटाई होती है और हास्यरस के साहित्य को आम तौर से असभ्य साहित्य समझ लिया जाता है। धार्मिक ग्रंथ हंसना नहीं सिखाते। धर्म, समाज और चरित्र के सांचों में हंसी की गुजर नहीं।" इसी लिए हमारी दुनिया में हंसना मुश्किल है और हंसाना उस से भी अधिक मुश्किल। इसी लिए आप देखेंगे कि जो उच्च श्रेणी के हास्यकार होते हैं वो आम तौर पर मन के उजले मगर तन के दुबले होते हैं। हंसने से आदमी दुबला होता है और हंसाने से मोटा होता है।" मगर इन्सान हंसता क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे लिखते हैं कि "इन्सान प्रायः दूसरों की तकलीफ पर हंसता है। दूसरों की त्रुटियों पर हंसना कोई बुरी बात नहीं है, पर मनुष्य को अपनी त्रुटियों पर भी हसना चाहिये। इस से आत्मा का विरेचन होता है और उसे दूसरों को क्षमा करने की क्षमता प्राप्त होती है। जब मनुष्य दूसरों को सता कर, उन पर हंसना छोड़ देगा, तब स्थिति का अन्तविरोध मिट जायेगा और इन्सान की हंसी के बीच कोई फर्क नहीं रह जायेगा, जब सब इन्सान अपने अन्दर से, अपने दिल के अन्दर से हंसना चाहेंगे। उस दिन यह सारी दुनिया एक लतीफे की तरह खिल कर सदा बहार हो जाएगी।[1] उर्दू से हिन्दी में अवतरित होने वाले अन्य हास्य व्यंग्य निबन्ध लेखकों में कन्हैयालाल कपूर, फिक्र तौंसवी प्रकाश पंडित आदि उल्लेखनीय है। इन के निबन्ध संग्रह "हास्य बतीसी" "मेरी गिरिफतारी के वारण्ट"; बक रहा हूं "जनूं में" हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं।

आज के प्रमुख निबन्धकार और उनकी प्रवृत्तियां

अब तो समसामयिक हिन्दी हास्य व्यंग्य लेखकों की बड़ी संख्या इस

1. देखिए—"हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्ध : रूप यात्रा" संपादक डॉ० संसार चन्द्र' में संकलित निबन्ध "सभापति की हास्य चर्चा।"

साहित्य की वृद्धि में अपूर्व योगदान दे रही है। पिछले एक दशक में बहुत तीव्रता से सृजन कार्य हुआ है। इस विपुल साहित्य-सृजन को देख कर यह विश्वास हो रहा है कि हास्य व्यंग्य निबन्ध कला अन्यान्य साहित्य विधाओं की तरह आज के जीवन के समुचित अंकन एवं जन-मन के आंदोलन में सर्वथा समर्थ सिद्ध होगी। इस संदर्भ में लेखकों तथा उन की रचनाओं का यहां केवल संक्षिप्त, परिचय देना सम्भव है। वर्तमान यशस्वी हास्य व्यंग्य निबन्धकारों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी श्रीलाल शुक्ल, केशवचन्द्र वर्मा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, धर्मवीर भारती, इन्द्रनाथ मदान, विद्या निवास मिश्र, शान्ति महरोत्रा, गोपाल प्रसाद व्यास, प्रभाकर माचवे, बरसाने लाल चतुर्वेदी, आदि उल्लेखनीय हैं। हरिशंकर परसाई के 'सदाचार का तावीज', 'पगडंडियों का जमाना' और 'निठल्ले की डायरी' प्रसिद्ध हास्य निबन्ध संग्रह हैं। परसाई का स्थान, उत्तम कोटि के हास्य व्यंग्य निबन्धकारों में आता है। वर्तमान युग की सामाजिक अव्यवस्था और राजनैतिक विषमताओं पर आपने कठोर कशाघात किये हैं। इन के निबन्धों में कथात्मक तत्व विरल हैं। ये किसी भी प्रसंग से विचार तरंग पकड़ लेते हैं, जो इस ढंग से फैलती जाती है और कहीं से कहीं जा पहुंच जाती है। शरद जोशी अपनी सतर्क दृष्टि एवं सहज व्यंग्य प्रतिभा से अनायास पाठक को वश में कर लेते हैं। इन की भंगिमा सीधी सादी है, इस में आक्रोश की अपेक्षा विनोद मार्मिक एवं प्रचुर है। श्री लाल शुक्ल का निबन्ध संग्रह 'अंगद का गांव' प्रसिद्ध है। इस संग्रह का इसी नाम का लेख विशेष सशक्त है। इनके निबन्धों में शिल्प का विशेष आग्रह है। इसी कारण इन के हास्य का माधुर्य और व्यग्य का तीखापन पाठक तक पहुंचते-पहुंचते चुक सा जाता है। केशव चन्द्र वर्मा का निबन्ध संग्रह 'प्यासा और बेपानी के लोग' महत्वपूर्ण रचना है। इन के निबन्धों में कथात्मक तत्व बेतहाशा उभर आते हैं जो निबन्धात्मकता को दबा देते हैं। हास्य की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों संग्रह अभिनन्दनीय हैं। रवीन्द्र नाथ त्यागी के हास्य व्यंग्य निबन्ध संग्रह 'खुली धूप में नाव पर', 'भित्तिचित्र' 'मल्लिनाथ की परम्परा' पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। त्यागी जी की शैली सरल एवं प्रभावपूर्ण है। इन में आक्रोश की मात्रा बहुत कम है चुहल और विनोद की अतिशयता से इन के निबन्ध उजले हो गए हैं। धर्मवीर भारती का एक मात्र हास्य व्यंग्य निबन्ध संग्रह "ठेले

पर हिमालय" उच्च कोटि की रचना है। आप में शिष्ट हास्य उत्पादन की अद्भुत क्षमता है। आप का "यू० एन० ओ० में हिन्दी पर मुकद्दमा" एक सशक्त निबन्ध है। इन्द्रनाथ मदान के "कुछ उथले : कुछ गहरे" नामक निबन्ध संग्रह में उनके नवीनतम निबन्धों का संचयन है। इनका हास्य स्मित हास्य है। श्री विद्या निवास मिश्र के 'छितवन की छांह', 'चंदन की फूली डाली', 'तुम चन्दन हम पानी', निबन्ध संग्रह हास्य व्यंग्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। आप की भाषा एवं मुहावरों में हास्य की अद्भुत क्षमता छिपी रहती है। उर्दू पदावली से भी आप अपने कथन को वक्र बनाने में सिद्धहस्त हैं। शान्ति महरोत्रा के निबन्ध संग्रह 'खुला आकाश' और 'सुरखाब के पर' विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। आप के निबन्धों का परिवेश पारिवारिक एवं घरेलू है। कथन का ढंग सीधा एवं प्रभावपूर्ण है। इनमें व्यंग्य की अपेक्षा हास्य का विस्तार अधिक है। गोपाल प्रसाद व्यास के हास्य व्यंग्य संग्रह 'उन्नीसवां पुराण', 'कुछ सच कुछ झूठ', 'तो क्या होता', 'मैंने कहा' प्रसिद्ध हैं। आप के निबन्धों में हास्य का अविच्छिन्न प्रवाह मिलता है। आप का हास्य कहीं-कहीं असंयत भी हो जाता है जिस से अस्वाभाविकता झलकने लगती है। प्रभाकर माचवे के निबन्ध संग्रह का नाम "खरगोश के सींग है" इन के निबन्धों में हास्य की अपेक्षा व्यंग्य की प्रधानता है। कहीं-कहीं व्यंग्य में कटुता भी उभर आई है। वे किसी घटना एवं परिस्थिति पर हंसते हुए मानो चिढ़ाने और कोसने पर उतर आते हैं। बरसाने लाल चतुर्वेदी ने हास्य व्यंग्य के नाम पर बहुत लिखा है। इन के संग्रहों के नाम "हाथी के पंख", "मिस्टर खोये-खोये", "व्यंग्य की बरसात", "मूंछ पुराण", "चाचा चौधरी" आदि हैं। इन की हास्य शैली पर्याप्त पुरानी पड़ गई है। इन में प्राचीन वैदूषकीय हास्य की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी इस क्षेत्र में कुछ प्रयास किया है। अभी तक इसके तीन हास्य व्यंग्य निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके है "सटक सीताराम", "सोने के दांत", "अपनी डाली के कांटे"।

हिन्दी के आधुनिक हास्य व्यंग्य निबन्ध का विधिवत् मूल्यांकन अभी हुआ नहीं है। इस क्षेत्र का अध्ययन-विश्लेषण अपेक्षित है। हाल में प्रकाशित, एक विज्ञ आलोचक का तत्संबन्धी लेख इस दिशा में उल्लेखनीय

पग है ।[1] उन्होंने प्रमुख निबन्धकारों की लेखन कला का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए इन निबन्धों की दो प्रमुख प्रवृत्तियों का निदर्शन इस प्रकार किया है । उनके अनुसार एक प्रवृत्ति ने आज के जीवन की अव्यवस्था, आपा धापी और उसके बेतुकेपन को हलके चित्त से लिया है । उस पर वह हंस पड़ती है और पाठकों का ध्यान हंसी-हंसी में उस की ओर अनायास आकृष्ट कर देती है । उसका विनोद भाव इस असामंजस्य से कुंठित न होकर अपने प्रभाव से स्थिति को तनिक हलका करके सोचने विचारने का वातावरण तैयार करता है । इसी लिए ऐसे निबन्धों के विषय आज के कटु राजनीतिक तथा तज्जन्य आर्थिक सन्दर्भों से प्रत्यक्षतः युक्त नहीं होते । उन में व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के साधारण और अपेक्षाकृत कम गम्भीर प्रसंगों का चपल दृष्टि से चित्रण रहता है । इस प्रवृत्ति को हम "हास्य प्रवृत्ति" कहेंगे । दूसरी प्रवृत्ति को "व्यंग्य प्रवृत्ति" कह सकते हैं । इस प्रवृत्ति के निबन्धकारों का उद्देश्य हमारे राजनीतिक, सामाजिक जीवन की गम्भीर विषमताओं पर सीधी कड़ी चोट करना होता है । उनकी कुण्ठा कटु होकर स्थिति की विकृति एवं विरूपता को परिहासयुक्त कर, वचन-वैदग्ध्य द्वारा व्यंजना का चमत्कार उत्पन्न करती है ।

आलोचक ने आज का श्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई को स्वीकार किया है । परसाई के रचना परिमाण और व्यंग्य प्रतिभा ने उन्हें यह महत्व प्रदान किया है । उनके व्यंग्य प्रधान निबन्धों में चुहल का भाव बहुत कम, चिन्ता और चिन्तन अधिक है । उन में स्थिति, तथा स्थिति के लिए उत्तरदायी जनों के लिए कड़ी दृष्टि है । इन निबन्धों में कथात्मक तत्व नाम मात्र का है, जो है वह केवल निबन्ध के विविध प्रसंगों को पकड़ने का साधन है । जीवन के किसी सामाजिक, राजनीतिक, प्रसंग से वे कोई विचार-तरंग ग्रहण करते हैं । फिर उस तरंग से उप तरंगें उठती चलती हैं । बात क्षण भर में कहीं की कहीं पहुंच कर कुछ का कुछ अर्थ प्रस्तुत कर देती है । परसाई अपने प्रसंग वैविध्य और व्यंजना को संकेत, प्रतीक एवं रूपक प्रयोग द्वारा अपूर्व शक्ति प्रदान करते हैं ।

---

1. देखिये लेख—"इस दशक का हिन्दी हास्य व्यंग्य निबन्ध" (ले० डा० शशिभूषण सिंहल) मासिक 'सप्तसिन्धु' मई १९७० ।

आलोचक ने आज हास्य व्यंग्य निबन्धकारों के विषय में ठीक ही कहा है कि इन कलाकारों ने जीवन के निकट अनुभव को अपना विषय बनाया है। विषय के अतिरंजन और शब्दाडंबर से मुक्त हो, उन्होंने अपनी प्रतिपादन शैली में नई सूझ-बूझ का परिचय दिया है। उन के यथार्थ-बोध, वाग्वैदग्ध्य और सधी शैली ने उन्हें अभिनव सामर्थ्य प्रदान की है। परिस्थिति की कटुता ने उनकी चुहल कम कर दी है और वे सतर्क तथा उग्र हो चले हैं। आशंका होती है, कहीं वे उल्लासशून्य हो कर कटूक्तियों पर ही न उतर आयें। अतः निसंगता, विनोद वृत्ति और सहृदयता का पल्ला छोड़ना उन के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। हास्य वृत्ति व्यंग्य वृत्ति का हाथ बराबर थामे रहे, यही आज के निबन्धकार के लिए अपेक्षित है।

अस्तु! हमें विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं, जब हिन्दी का हास्य व्यंग्य निबन्ध अपने रचना-परिमाण, विविधता और प्रतिभा के बल पर साहित्य की स्वतन्त्र एवं समर्थ विधा के रूप में मुक्त कंठ से स्वीकार किया जायेगा और हिन्दी के आलोचक इस का समुचित अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

●

नवीन की उर्मिला

—डॉ० निजाम उद-दीन

उर्मिला रामायण का ऐसा उज्ज्वल पात्र है जिसे वाल्मीकि, तुलसी आदि के द्वारा चिर उपेक्षित समझे जाने पर विद्वन्मण्डल ने उसके प्रति अगाध सहानुभूति प्रदर्शित की। रवीन्द्र, द्विवेदी से उत्प्रेरित होकर गुप्त जी और नवीन जी ने महाकाव्यों का निर्माण किया। साकेत में उर्मिला के प्रति उपेक्षा का निराकरण तो अवश्य मिलता है परन्तु वहां उर्मिला-चरित्र पर रामकथा हावी हो गई है। उर्मिला में साकेत की अपेक्षा उर्मिला का विशद वर्णन है। राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं का प्रसार युगादर्शों के अनुकूल है। यदि सन् १९३४ में रचे जाने के उपरान्त ही उसका प्रकाशन होता तो सम्भवतः उर्मिला का मूल्यांकन दूसरी ही दृष्टि से किया जाता।

षष्ठ सर्गों में विभक्त उर्मिला एक बृहदाकार रचना है जो वाल्मीकि, कालिदास और तुलसीदास से अनुप्रेरित है। उर्मिला को जनक-नन्दनी स्वीकार करने में वाल्मीकि का अनुसरण किया गया है परन्तु धनुष-यज्ञ अवहेलित है। जिस प्रकार कालिदास ने रघुवंश में रावण-विजयोपरान्त पुष्पक विमान में राम-सीता का संवाद प्रस्तुत किया है। उसी प्रकार नवीन जी ने भी सीता-लक्ष्मण संवाद प्रस्तुत किया है। उर्मिला का विरह-वर्णन ऋतुसंहार से प्रभावित जान पड़ता है। तुलसी का वाटिका-वर्णन नवीन जी ने अनौचित्य एवं त्याज्य माना है। उर्मिला की करुणा-मूर्ति बनाने में भवभूति के करुण रस की सर्वव्यापकता का प्रभाव है। उर्मिला की चित्रकला पर भी उत्तर रामचरित का ही प्रभाव है। उत्तर-रामचरित में रामचरित की घटनाओं का चित्रावली द्वारा संकेत प्राप्त होता है, यहां उर्मिला लक्ष्मण को आखेटक के रूप में चित्रित करती है और इस प्रकार वियोग की पृष्ठभूमि भी तैयार हो जाती है।

उर्मिला की कथावस्तु में औचित्य का ग्रहण और अनौचित्य का

त्याग बड़े कौशल से हुआ है। सभी संग्रथित प्रसंग उर्मिला से सम्बद्ध हैं। कथानक परम्परागत राम कथा से सर्वथा भिन्न और मौलिक है। जनक-पत्नी का व्यक्तित्व, पारिवारिक वर्णन, सीता-उर्मिला की बाल-क्रीड़ाएं अन्य राम-काव्य में नहीं। राम-बन-गमन द्वारा आर्य संस्कृति का प्रसार, कैकेयी का आर्य संस्कृति के प्रति अतुलित अनुराग सर्वथा नवीन योजना है, इसी प्रकार राम-रावण युद्ध यहां देव-दानव-युद्ध से बढ़ कर आर्य-अनार्य का युद्ध माना गया है। इसके साथ सभ्य समाज, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, महिला-जागरण, मानवतावादी विचारधारा काव्य को अधिक मौलिकता प्रदान करते हैं। यहां राम कथा के संदर्भ में उर्मिला का चित्रण नहीं, अपितु उर्मिला के ही संदर्भ में राम कथा का चित्रण है। फलतः धनुर्यज्ञ, वन-गमन, दशरथ-मरण, भरत-मिलाप, राम-रावण युद्ध आदि प्रसंग परित्यक्त किए गए हैं। उर्मिला की कथा वस्तु उत्पाद्य है। इसकी कथा वस्तु में कवि ने उर्मिला पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। इस में साकेत के समान प्रबन्ध-शिल्प में अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ।[1]

उर्मिला का चरित्र-निरूपण मौलिकता से उद्दीप्त है। कवि-कल्पना से अभिषेकित पात्रों का चरित्रांकन कई कई पद्धतियों में उपलब्ध होता है—(१) उर्मिला को नवीन रंगों से अनुरंजित किया है। (२) लक्ष्मण, सुमित्रा को नए परिपार्श्व में अंकित किया है, राम और सीता के व्यक्तित्व को गौरवान्वित चौखटों में जड़ा है। (३) जनक का प्रकृत रूप में स्पष्टीकरण है। इस प्रकार नवीन जी का चरित्रांकन संतुलित और समुन्नत है। उर्मिला महाकाव्य की नायिका है और आद्यन्त उसका चरित्र संव्याप्त भी है। यहां साकेत के समान नायिका विषयक कोई वादविवाद नहीं। कवि ने उर्मिला को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है—बालिका, कुलवधू, विद्रोह और आत्मोत्सर्ग की भावना से अभिमंडित वह एक आदर्श नारी है। वह बाल्यावस्था से ही चंचल और जिज्ञासु है। सीता के साथ क्रीड़ारत भी रहती है। स्वभाव से अतिवाचाल और वाक्पटु है तथा उसका जीवनत्यागमय है। गुण-गरिमा से युक्त अतीव लज्जाशील है। उर्मिला और लक्ष्मण का प्रेम पार्थिव और वासना

1. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी। (पृ० ४९)

से मुक्त है। वह निरिन्द्रय और आदर्शवादी है और इसी औदात्य के साथ उर्मिला की वियोगावस्था प्रदर्शित की गई है। विदा-वेला में लक्ष्मण उसके लिए किसी अर्चन, वन्दन, पूजन और ज्ञान ध्यान से कम नहीं हैं। वह उन्हीं में प्रेम-पूर्णता, आध्यात्मिकता और तात्विकता के दर्शन करती है। लक्ष्मण के वन-गमन के प्रस्ताव में उसकी अधीरता और विह्वलता में एक नारी का हृदय छटपटाता दृष्टिगत होता है—

करुण-कहानी हिय अरुझानी
छानी-मानी नहीं रही,
अकुलाती आंखड़ियों से वह,
पानी पानी बनी वही,
मथित हिचकियां, बचन-दीनता
का कुछ संग देने आई।

(उर्मिला, पृ० १७९)

वन-गमन के महत्व को अनुमानित कर हृदय पर पत्थर रख गलदश्रु मुख से कह देती है—'तुम जाओ, सुखेन जाओ।' इस प्रकार वह भारतीय आदर्श ललना का ही 'रोल' अदा करती है। कवि ने उसके हृदय की अच्छी परख की है। कभी वह भावावेश में आकर कैकेयी पर कुपित होती है तो कभी राजा दशरथ पर और कभी लक्ष्मण के अन्दर अन्याय के प्रतिरोधार्थ विद्रोहाग्नि प्रज्वलित करती है। प्रोषितपतिका के रूप में उसका विरह व्यक्ति-निष्ठ न होकर समष्टि-निष्ठ है—जगद्-व्यापी है। उसकी दयदीन दशा अत्यन्त मर्मभेदी है—

हौंस मिटी, काजर कुट्यो, मच्यो नयन में कीच।
कारी झांई पीर की परी पुतरियन बीच।

(पृष्ठ १९६)

झुलसत हिय, दहकत हृदय, आशा बरि-बरि जात।
तड़पत मन, सूखत अधर, रोम-रोम मुरझात।

(पृ० २२९)

उसका प्रेम असीम, व्यापक और उच्च है उस में आत्महत्या या घुटन नहीं। वह केवल भावुक और सरल अबला नहीं वरन् मेधाशीला और कर्तव्यनिष्ठा नारी है। वह त्याग की मूर्ति है, जहां मंझली मां

ने हृदय (लक्ष्मण) को दिया है उर्मिला ने तो जीवन-धन ही दे दिया। अतः सीता भी उसके इस महाबलिदान और त्याग-भाव को निरख लज्जा से गड़ जाती है।

साकेत की उर्मिला करुणा की मूर्ति है जब कि उर्मिला की उर्मिला सौम्य शृंगार से आप्यायित है। 'साकेत' की उर्मिला का उद्देश्य इतना महान नहीं जितना उर्मिला की उर्मिला का है। साकेत में उसकी बाल्यावस्था अनभिव्यक्त है, यहां वह सीता के संग क्रीड़ारत रहती है। वह 'साकेत' की उर्मिला से अधिक नटखट और शरीर है। साकेतकार उर्मिला का न सर्वांग चित्रण कर सके हैं और न ही उसे वह गौरव प्रदान करने में समर्थ हुए हैं जो नवीन जी ने प्रदान किया है। उर्मिला का लक्ष्मण साकेत के लक्ष्मण के समान राम का अंधभक्त नहीं और न ही उर्मिला की उपेक्षा करने वाला पति है। जिस प्रकार उर्मिला में वह अपने वन-गमन प्रयोजन का स्पष्टीकरण कर वधू उर्मिला को परितुष्ट करता है वैसा साकेत में नहीं किया जा सका। यहां वह एक कर्मठ साधक, भ्रातृ-भक्त और आदर्श पति के गुणों से गौरवान्वित है साकेत में वह महावीर और भ्रातृ-भक्त ही अधिक है। यहां उसे प्रमुखतः आदर्श पति के रूप में प्रस्तुत कर कवि ने उर्मिला महाकाव्य और उर्मिला नायिका दोनों के साथ न्याय किया है। साकेत में लक्ष्मण की उद्दण्डता रामायण और मानस से अधिक है और उसका आदर्श रूप स्खलित हो गया है। साकेत में वह अति उद्धत, उग्र आक्रोशपूर्ण हो माता कैकेयी को कटु वचन कहने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता। इसके विपरीत उर्मिला का लक्ष्मण अधिक संयमी, चिन्तक और गम्भीर है, वह न तो कैकेयी को प्रताड़ित करता है और न पिता दशरथ को ही विनिन्दित करता है।

लक्ष्मण दूरदर्शी और विचारशील है। वन-गमन पूर्व उर्मिला को सकल परिस्थितियों से अवगत कर उस से अनुज्ञा प्राप्त करता है। उर्मिला को पुराणमयी चक्षुओं से अवलोकन करने को कहता हैं कि राम धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक तत्व-विचारों में दीक्षा देने के लिए अवतरित हुए हैं। वह एक आदर्श प्रेमी हैं, उसका प्रेम पार्थिव नहीं, उस में अहं का तिरोभाव है और द्वैत के स्थान पर अद्वैत अथवा ऐक्य की भावना प्रोद्भूत है। यहां शुद्ध रूपेण 'एकोऽहं' के तार उत्कम्पित होते हैं—

"न 'तू' है कहीं, न 'मैं' हूं कहीं।"—

उर्मिला लक्ष्मण मय हो गई,
हुए उर्मिला रूप सौमित्र।

उर्मिला की सीता बाल-काल से ही गम्भीर प्रकृति की है। वह कर्त्तव्यपरायणता और पत्नीत्व को अधिक महत्व पूर्ण समझती है। कबूतरी के प्रसंग में वह पति-संग रहने के भाव को व्यक्त कर अपनी प्रकृति का परिचय देती है। उर्मिला के प्रति उसमें संवेदनशीलता है और लक्ष्मण के प्रति पुत्रवत्सलता है। वह पतिपरायण, पतित-पावन, स्नेह एवं वात्सल्यमयी है। राम का चरित्र भी मर्यादापूर्ण और आदर्शोन्मुखी है। उस में मातृपरायणता की भावना का आधिक्य है। वह एक वयोवृद्ध के समान सरंक्षक जान पड़ते हैं। उनकी लंका विजय में राज्य-विस्तार नहीं सेवा-व्रत की इच्छावलवती है। सुमित्रा और शांता के चरित्र को भी ईषदाभा प्रदान की है। सर्वाधिक उज्ज्वलता उर्मिला के चरित्र में ही द्रष्टव्य है।

इस काव्य में वर्णनात्मकता एवं कथात्मकता का आरोहावरोह, भावुकता, चिन्तनशीलता और मनस्तत्त्वों की अभिव्यंजना के समक्ष शिथिल पड़ गया है। भाव पूर्ण स्थलों के लिए जिस विस्तार, तीव्रता, सूक्ष्मता, गहनता, संवेदनशीलता और प्रभविष्णुता की अपेक्षा होती है उसका उर्मिला में प्राधान्य है; ऐसे भावुक स्थल महाकाव्य में प्रचुर हैं—उर्मिला-सीता की बाल्य-क्रीडा, शत्रुघ्न-उर्मिला के मधुवेष्टित संवाद, शांता-उर्मिला का मनोविनोद, वन-गमन के अवसर पर उर्मिला-लक्ष्मण की मनस्सन्तापावस्था का चित्रांकण आदि। उर्मिला द्वारा वर्णित कपोत-कपोती की कथा प्रभविष्णु है। कपोत का प्रवास-प्रस्ताव उसे विकम्पित कर देता है मानो कोई तीक्ष्ण बाण लगा हो—

मानो शांत नीड़ में धधकी दावानल की ज्वाला,
अथवा नेह कमल-सर में पड़ गया निराशा पाला।
किन हाथों ने, हाय, उजाड़ा मेरा सुखद निलय है?
तुम क्या कहते हो? मैं कुछ समझ नहीं पाती हूं,
सुन ये वचन, दुःख सागर में मैं तो उतराती हूं।

(पृ० ४९)

उर्मिला में वर्णित यह प्रसंग साकूत है। भावी घटना का सूचक होने से इसका महत्व दुगना हो गया है। आनंद की पैंग बढ़ाती उर्मिला को लक्ष्मण-गमन-सूचना अचानक आहत कर देती है। विदा-प्रसंग तो नितान्त मर्मस्पर्शी है, करुणासिक्त लेखनी से लिखा गया है। उर्मिला की तड़प भरी विवशता कैसी मर्मभेदी है—सिसकियों भरे शब्दों में कहती है कि 'प्रिय, दिन बिताने का कुछ तो जतन बतावें। भला अंधेरी काली रातें, दुग्ध-धवल, चन्द्रिका-र्चाचत रात्रि, स्फटिकवत उज्ज्वल दिन तुम्हारे बिना कैसे काटूंगी'। वह 'अति-गति-प्रतिमा' बन जाती है।

साकेत के समान यहां भी प्रकृति का षड़ऋतु वर्णन है जो ग्रीष्म से आरम्भ होता है। प्रकृति का अलंकृत, संवेदनाशील रूप अवलोकनीय है। प्रकृति उर्मिला की करुणा से विगलित होकर अश्रुपात करती है। कोयल भी उर्मिला के विरहानल से श्याम वर्ण हो गई है, उसकी कूक, हूक बन गई। काग अलग रुदन करता है। प्रकृति का अलंकृत रूप भावपूर्ण है—

प्राची दिशा बधूटी के सम श्री उर्मिला बधू के लोचन,
कुछ-कुछ उन्मीलित हैं; उन में छाए हैं लक्ष्मण, रवि-रोचन।

उर्मिला की भाषा प्रौढ़ और प्रांजल है। भाषा के भावपूर्ण, अलंकृत और प्रसादगुण संयुक्त रूप के कारण उर्मिला एक रस-सिक्त महाकाव्य है। हां, कहीं कहीं उसका संस्कृतनिष्ठ रूप रंग में भंग कर देता है, मिश्री की डली में बांस की फांस की तरह। क्वासि, यः कश्चित, अच्छेद, भुंजीथाः, त्यक्तेन, याञ्चाऽमोघा, भवतु सच्चिदानन्द स्वरूपं इदं मनः आदि अप्रचलित शब्दों के प्रयोग ऐसे ही हैं। यहां कवि ने ब्रजभाषा में दोहा-शैली का श्लाघ्य प्रयोग किया है। उनका यह प्रयोग सूर और बिहारी की अभिव्यंजन-कुशलता का स्मरण कराता है। यह सर्वथा नवीन प्रयोग नवीन जी के विद्रोही व्यक्तित्व का ही प्रतिरूप बनकर आया है। अलंकारों का सजीव, नैसर्गिक प्रयोग भावोद्रिक्त है। प्रस्तुत और प्रस्तुत-विधान प्राणवान है। इस दृष्टि से निम्न उदाहरण अवलोकनीय है—

एक हाथ से खींच हृदय से
लिपटाया सीता को यों

सन्ध्या ने अपने हिय में हो
खींच दोपहरी को ज्यों।

(पृ० ३०५)

कवि की भाषा प्रकृत, प्राणवन्त और प्रभविष्णु है। संवादों में उसकी प्रवाहशीलता तीव्रतर होती है, अलंकारों में उसका रूप कुन्दन की भांति चमकता है।

उर्मिला का उद्देश्य आर्य संस्कृति का प्रसार है, जिसे अद्भुत और नूतन संदर्भ में कवि ने प्रस्तुत किया है। सामयिक काव्यों में ऐसी उदात्त भावना कम ही कवियों ने अभिव्यंजित की है। राम कथा का आधार यहां सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक है। "मैंने रामायण को एक विशेष रूप में देखने और उपस्थित करने का साहस किया है। राम की वन यात्रा मेरी दृष्टि में एवं महान अर्थ पूर्ण, आर्य संस्कृति प्रसार यात्रा थी।" कवि का यह स्पष्टीकरण महदुद्देश्य की सार्थकता प्रकट करता है। आर्यसंस्कृति के दार्शनिक रूपों—नैतिकता, जीवन-दर्शन पर वेद, उपनिषद् गीता आदि का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। 'तमसो मा ज्योतिर्मय' भारतीय संस्कृति की मूल भावना है। उस में तप का विशेष महत्व है। तप द्वारा ही इस सृष्टि का रूप अस्तित्व में आया है। नवीन जी ने भी इसी मत का प्रतिपादन निम्न पंक्तियों में किया है—

यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल
गतिमय, सृतिमय, चलित हुआ
अणु-अणु में, कण-कण में सन्तत
प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ।

(पृ० ५४६)

आर्य धर्म का सूत्र भी यही है—'मैं हूं एक, किन्तु प्रजनन के हेतु अनेकों रूप बना हूं।' सतत् तपस्या और त्याग में ही जीवन का उन्नयन है। जीव ही सच्चिदानन्द रूप है, ईश्वर ही इस सृष्टि का कर्त्ता-भर्त्ता है, नाशक-उत्पादक है। जीवन में असत् की पराज्य और सत् की विजय अनिवार्य है। इसी कारण सत् राम, असत् रावण पर विजय प्राप्त करते हैं—

सत्य विचार हुए हैं विजयी,
असुर-भाव-अपहरण हुआ,

मैं प्रसन्न हूं, आज लंक में
सद्भावों का वरण हुआ ।

(पृ० ५५१)

भू अर्जित कर साम्राज्यवाद का विस्तार करना आर्य धर्म नहीं है। रावण इसी साम्राज्यवाद का पोषक होने के कारण पतनोन्मुखी है। राम आत्मवाद के पोषक साम्राज्यवाद-भौतिकवाद के विभंजक हैं । जिस प्रकार ब्रह्माहुति से इस संसार का निर्माण हुआ, उसी प्रकार आत्म-दान और सेवा-भाव मनुष्य की आहुति है, एक यज्ञ है और शुद्ध यज्ञ ही सर्वभूत-हित है, जग की परम सेवा है।

उर्मिला असंदिग्ध रूप में एक विशिष्ट रचना है। जीवनादर्श में वह 'प्रियप्रवास', जीवन-दर्शन में कामायनी तथा जीवन-स्पंदन में साकेत के समक्ष उपस्थित की जा सकती है। कवि नवीन के जीवन-सार, नवनीत-काव्योत्कर्ष तथा समवेत साहित्यिक उपलब्धि की उर्मिला परिचायक है। उस में भोग पर त्याग, आसक्ति पर तपस्या, आत्म-मोह पर आत्मोत्सर्ग तथा व्यष्टि पर समष्टि की विजय निरूपित की गई है।[1]

1. बालकृष्ण शर्मा नवीन : व्यक्ति और काव्य, डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे। (पृ० ३८२)

कश्मीरी काव्य में दार्शनिक-अनुभूति

डॉ० अयूब 'प्रेमी'

कश्मीरी काव्य का आविर्भाव शिलिकण्ठ विरचित 'महानय प्रकाश' से माना जाता है। शिलिकण्ठ का समय १२०० ई० से १३०० ई० है। 'महानय प्रकाश' की भाषा शुद्ध कश्मीरी नहीं है। उस में अपभ्रंग एवं प्राकृत का समावेश है। उस के पश्चात् महेश्वरानन्द की 'महार्थमञ्जरी' में कहीं-कहीं शुद्ध कश्मीरी का भी प्रयोग हुआ है—

अकु अकु पञ्चभूत पञ्च गुनो

आचार्य अभिनव गुप्त के युग में कश्मीर समस्त भारतीय विद्वानों के लिए आकर्षण-केन्द्र बन गया था। अतः अभिनव गुप्त की शिष्य-परम्परा में महेश्वरानन्द, कामरूप निवासी मत्स्येन्द्र नाथ और केरल निवासी श्री मधुराज का विशेष उल्लेख मिलता है। इस प्रकार कश्मीर अध्यात्म विद्या एवं दर्शन के क्षेत्र में अग्रचेता रहा है। शैव दर्शन का प्रभाव 'महार्थ मञ्जरी' पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है—

अंणा खु बीस मूलं,
तत्थ प्रमाणं ण कोवि अथेई।
कः स व होइ पिपासा,
गंगा सुत्तं णिसग्नस्स॥

ईश्वर के जगताधार होने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। वह स्वतः सिद्ध है। जो जल-मग्न हो उस को क्या प्यास सताती है?

असली कश्मीरी का प्रयोग १४वीं शताब्दी से हुआ है। सुल्तान शहाबुद्दीन (सन् १३५३—१३७४ ई०) के शासन-काल में लल्लेश्वरी का काव्य दर्शन की गरिमा से गर्भित हो चुका था। कबीर से पहले ही लल्लेश्वरी अपने काव्य में अद्वैत दर्शन की कलात्मक अनुभूति मुखरित कर चुकी थी। जहां कबीर पानी से हिम और हिम से पानी होता देख कर एवं मौन होकर अद्वैत दशा का अनुभव करते हैं—

पानी ही से हिम भया, हिम ही गया बिलाम।
कबिरा जोइ का सोइ भया, अब किछु कहान जाय॥

तो वहां लल्लेश्वरी उस विचित्र एवं अलौकिक दशा का अनुभव करती है जहां बिन्दु और समुद्र दोनों एक रूप हो जाते हैं—

चि स गुत्व तैं केहिति नाकुने,
शून्वस शून्याह मीलित गव।

शैवाद्वैत में जड़-चेतन सभी कुछ परतत्व है। लल्लेश्वरी ने जल थल मारुत व्योम दिन रात अर्घ्य-चन्दन पुष्पादि में उसी सर्वव्यापी ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त की है जिसे चेतना का विमर्श कह सकते हैं—

गगन चय भूतल चय
चय द्यन पवन त राथ।
अर्घ चन्दुन पोष पोञ चय,
चय सकल ताय लाग्यज़िय क्याह। [1]

शैव दर्शन में परतत्व विश्वोतीर्ण (शिव) और विश्वमय (शक्ति) के रूप में माना गया है! ये दोनों रूप अभिन्न हैं। अद्वैत दशा में भी वह परतत्व चेतना से प्रकाशमान रहता है और उसे अपनी चेतनावस्था की प्रतीति भी होती रहती है—

ईश्वरोऽहमहमेव रूपवान,
पण्डितोऽस्मि सुभगोऽस्मिकोऽपरः।

---

1. तुलना कीजिए—

जल-थल-मारुत व्योम में जो छाया है सब ओर।
खोज खोज कर खो गई मैं पागल प्रेम विभोर॥

—स्कन्द गुप्त प्रसाद

मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते,

मानिता त्वदनुरागिणः परम् ।।[1]

कश्मीरी कवि बहाव खार ने आदि सृष्टि का वर्णन बहुत ही कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में किया है । एक ओर सूफियाना काव्य का प्रभाव तो दूसरी ओर उपनिषद के दर्शन की प्रतिच्छाया स्पष्ट है । आदि ब्रह्म की चिरसमाधि में ही समस्त संसृति अन्तर्निहित थी और उसके अतिरिक्त शून्य अथवा कुछ नहीं था । उस समय वही पुरुष था । उस पुरुष की 'एकोऽहं बहुस्याम' की भावना से अव्यक्त प्रकृति की रचना हुई और अव्यक्त प्रकृति ही सृष्टि रूप में व्यक्त हो गई ।[2] बहाव खार के अनुसार बहुत पूर्व जब जीव को चेतना भी न थी तब न मिट्टी थी और न कुम्भकार था । ईश्वर अपनी जीत को ढूंढ रहा था—

मय यनु चावुनस तनु गव यचुकाल

तेलि नो ओस बूद मेंच तु बेंयः काल

दय ओस छाडान पानु ज़य ।[3]

इसी प्रकार की अभिव्यक्ति निराला जी के काव्य में हुई है—

चिर समाधि में अचिर प्रकृति जब

तुम अनादि तब केवल तम,

अपने ही सुख-इंगित से फिर

हुए तरंगित सृष्टि विषम ।[4]

यही अद्वैत दर्शन कश्मीरी के सुप्रसिद्ध कवि परमानन्द के काव्य में मुखरित हुआ है । शैवाद्वैत के साथ कृष्ण-भक्ति का सामंजस्य अपूर्व है । कवि का हृदय गोकुल है, वहीं कृष्ण की गोशाला हैं । वह कहता है—

---

1. "मैं ईश्वर हूं, मैं रूपवान हूं, मैं पंडित हूं, मैं प्रियतम हूं मुझ से परे कौन है । मेरे कारण ही सम्पूर्ण जगत् शोभित है । यह तुम्हारे भक्त का विश्वास है ।"
—संग्रह स्तोत्र-४ उत्पलाचार्य ।

2. महतः परमव्यक्तम व्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः । —कठो० ३, ११

3. "हुआ समय बहुत व्यतीत जब मुझे आसव पिलाया । उस समय न मिट्टी थी और न कुम्हार था । ईश्वर भी जीत की बहार ढूंढ रहा था ।"

4. 'प्रम के प्रति' । —अनामिका पृ० ३२

"चित्त-विमर्श-रूप प्रकाश मान हे भगवान ! मेरी इंद्रियां रूपी गोपियां तुम्हारे पीछे दौड़ती है और बांसुरी-शब्द की ध्वनि से उन्मत्त हो रही हैं।" परमानन्द की दार्शनिक अभिव्यक्ति में भाव-प्रवणता है—

गूकुल हृदय म्योन तति चोन गूरिवान
च्यत-विमर्श दीप्ति मानु भगवानो ।
व्रच म्याजि गूपियि चंय पत लारान,
बांसुरी नाद वाद मतानो ।।

'च्यत-विमर्श दीप्ति मानु भगवान' शैव दर्शन के अद्वैत को कहते हैं जहां परतत्व का अहं भी भासित होता है। चेतना के विमर्श में ही सामरस्य है। शिव भाव चैतन्य का प्रकाशमान रूप होता है और शक्ति भाव में विमर्शात्मक रूप होता है। आत्मा की इन दोनों गतियों को स्पन्द कहते है। स्पन्द का उदय सृष्टि का कारण है और लय विनाश का। शुद्ध चेतना स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशमान होती रहती है।[1] इस पर तत्व को कहीं बाहर खोजने का प्रयत्न हास्यास्पद है 'यो को कहां ढूंढे बन्दे मैं तो तेरे पास में, कबीर की उक्ति प्रसिद्ध है। निराला जी ने भी कहा है—

पास ही रे हीरे की खान।
खोजता कहां अरे नादान।

परमानन्द का कथन है कि ईश्वर को समीप समझते हुए कहीं दूर ढूंढने का कष्ट नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो अपने द्वार का ही मूलाधार है—

दूर मो चु जान पानस छुनिहः
मूलाधार दारुक महेश।

कृष्ण का भ्रमर रूप वर्णन और लालित्य की चरम सीमा द्रष्टव्य है। प्रणव ओंकार का गुंजन या योगियों का अनहद नाद भ्रमर के नाद से भिन्न नहीं है। प्रेम-रस तृषा से उत्कंठित भावना का सौन्दर्य-जहां दर्शन, रहस्यवाद और भक्ति का अनुपम सामंजस्य है। सूर का जित

1. अन्य वेद्यमण, मात्रमस्ति न स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते।
यत्र नाथ भक्तः पुरेस्थितिं तत्र मे कुरु सदा तवार्चितुः।
—उत्पलाचार्य-संग्रह स्तोत्र ६

देखूं तित स्याममयी है' सर्वव्यापी ब्रह्म परमानन्द की निम्नलिखित पंक्तियों में साकार हो गया है—

अंबर बोलु बुंबुर साने
बु बलः गूंगू चाने
अंबुर त काफूर नावै तनै
जय जय दीवकी नन्दनै ।

परोक्ष का दर्शन सभी नहीं कर सकते। सांसारिक के लिए वह दृष्टिगोचर नहीं होता। कवि कहता है कि जो हो वही हो, औरों को दृष्टिगोचर नहीं हो। कवि आंखों का प्रकाश स्वयं आंखों से देखने के लिए कहता है। हरिकृष्ण प्रेमी ने भी यही बात कही है—

है क्या क्या इन आंखों में
देखें आंखों से आंखों वाले।

परमानन्द कहते हैं—

यो छुक तती छुक
छुक न बियन वुछोनुये।
अछन हुंद गाश
पानः अछव वछोनुये ।।[1]

मृत्यु का वर्णन बहुत से कवियों ने किया है लेकिन जो कलात्मक अभिव्यक्ति महमूद गामी ने की है उस की समता कोई नहीं कर सकता। दार्शनिकता के साथ समस्त करुणा सिमट आई है। शाहज़ादे अब्दुल अज़ीज़ की मृत्यु का शोक गीत बहुत प्रसिद्ध है। "पिंजरे से जब रंगदार पंछी भाग चला तो मिट्टी का शरीर आवारा हुआ और रंग बिगड़ गया—

पंजरः मंजः याम रंग बुलबुलचूरिचुल।
म्यचिम्बर आवार गव ताम रंग डुल ।।

इन पुराने कवियों के अतिरिक्त आधुनिक कवियों ने भी दार्शनिक चिंतन की कलात्मक अभिव्यक्ति की है लेकिन इन कवियों में व्यावहारिक दर्शन का पुट मिलता है। आधुनिक कवि शताब्दियों की दासता से मुक्त

1. तुलना कीजिए —
यत्र किंचिदपि तन्न किंचिदप्यस्तु किंचिदपि किंचिदेव मे।
सर्वथा भवतु तावता भवान सर्वतो भवति लब्धपूजितः।
—उत्पल स्तोत्रावली १२, २६

होने के लिए निराला जी की तरह 'जागो फिर एक बार' जैसे उद्‌बोधन गीत लिखता है। वह क्रांति का वाहक अग्रदूत है। सभी जीवों में उस परमतत्व का ही चेतनांश है तो एक चेतन जीव दूसरे चेतन जीव का दास कैसे हो सकता है। अब्दुल अहद आज़ाद के काव्य में आत्मा का यही स्वतंत्र रूप देखिये जहां वह अनंत यात्रा पर अग्रसर है—

गुलामः छुस न काह थाव्यम
म्य पंजरन होकलन अन्दर।
इवान छुम जिन्दगी हुन्द सोज़
सफरन मंज़िलन अन्दर।।[1]

मैं दास नहीं जो ज़ंजीरों और हथकड़ियों से बांधा जाऊं,
यात्रा की मंज़िलों में जीवन का संगीत गाऊं।

महजूर परिवर्तन का समर्थन करते हैं। निराला जी की भांति—

जलादे जीर्ण शीर्ण प्राचीन।
क्या करूंगा तन जीवन हीन।।

महजूर भी प्रकृति में अस्थिरता देख कर सोचने लगते हैं कि शरद में पुष्प झरते हैं फिर बसंत में जीवन का दौर शुरू होता है। मर मर कर फिर जीवन धारण करना दार्शनिक सत्य है—

गुल सरदः हरान होन्तः बियः दुबारः करान दोर।
मरि मरि छ फेरान जिन्दगी वसवास मरनुक त्राव।।

इस प्रकार संक्षेप में इतना स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक काल में कश्मीरी कवियों ने दार्शनिक अनुभूतियों को युगानुकूल अभिव्यक्त किया है। उन के गम्भीर चिंतन और मधुर रहस्यानुभूति से कश्मीरी काव्य गौरवान्वित है तथा भविष्य में भी इसी सम्भावना की पूर्ति करता रहेगा। इस दृष्टि से कश्मीरी काव्य किसी भी भारतीय भाषा के साहित्य के समकक्ष रखा जा सकता है।

●

---

1. तुलना कीजिए—
है चेतन का आभास,
जिसे, देखा भी उसने कभी किसी को दास?
नहीं चाहिए ज्ञान,
जिसे, वह समझा कभी प्रकाश?
—निराला अनामिका, पृ० १२५

महादेवी की रहस्यसाधना

प्रो० शक्ति शर्मा

काव्य के रहस्यवाद के रहस्य को खोलने के इतने प्रयास आधुनिक कवियों व लेखकों ने किये परन्तु वह रहस्य क्षितिज के धुन्धले छोर की तरह दूर ही दूर 'जहां तक गई नील झंकार' तक आगे ही आगे खिसकता जाता है। प्रकृति में उस की अस्पष्ट सी धूमिल छाया दिखती तो है परन्तु पट पर पट उघाड़ने पर भी वह स्पष्ट नहीं होती। विद्वानों ने इस रहस्यवाद को आत्मा परमात्मा के आध्यात्मिक सम्बन्ध की एक भूमिका के रूप में भी देखा हैं और प्रकृति के अनन्त व्यापारों में भी इसी रहस्य का उन्मेष।

सांसारिक आचरणों में आबद्ध मानव की जिज्ञासु आत्मा जब प्रकृति के व्यापारों में—उस के नैसर्गिक क्रियाकलापों में—उस अदृश्य सत्ता को कभी फूलों में मुस्कराते, झरते पहाड़ी निर्झर के संगीत में गाते, कभी चांदनी के बहाने बिछल जाने और फिर नन्हीं फुहारों में थिरकते आते पाती है तो अपनी अतृप्त जिज्ञासा और विकल चाह को ले कर वह अपने उस विस्मृत अंशी की ओर उन्मुख हो उठती है उसे पुनः पाने और अपने अज्ञानजन्य अभावों को मिटाने के लिए फिर तो ज्यों २ वह अज्ञान का आवरण भीना होता २ स्पष्ट से स्पष्टतर होता जाता है अर्थात आत्मा अपने को परमात्मा के समीप से समीपतर पाती जाती है—

तू जल जल जितना होता क्षय।
वह समीप आता छलनामय॥

त्यूं २ उस की जिज्ञासा शांत और प्राप्य के नैकट्य की अनुभूति होने पर भी अभिन्नता के अभाव में वेदना तीव्र होती जाती है। अंत में एक

स्थिति आती है जब साधक अपने उस आराध्य को पा लेता है। तब वह तदाकार हो स्वयं ही उस रहस्यमय का एक अंश हो उठता है और रहस्य खुल जाता है।

हो गई आराध्यमय मैं,
विरह की आराधना ले।

आत्मा-परमात्मा का यह मिलन व्यापार ही रहस्य की चरमावस्था है परन्तु इस से पहले साधक को जिन परिस्थितियों को पार करना पड़ता है, जो २ संबल साथ ले कर चलने हैं उन का दिग्दर्शन भी आवश्यक है क्योंकि रहस्यवाद का प्रचलित अर्थ तो साधक की वह विभिन्न अवस्थाएं ही हैं जिन्हें पार कर साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है।

यह रहस्य प्रवृत्ति प्रायः सभी आत्मचिंतक महापुरुषों में पाई जाती है और अपनी २ रुचि, सामर्थ्य और भाग्य में पड़ी सामग्री के सहारे साधक अपने अभीष्ट पथ पर अग्रसर होता है। कोई ज्ञान के माध्यम से कोई कर्म की लाठी के सहारे और कोई केवल अभिलाषा के द्वार से उस ओर प्रवेश पाना चाहता है।

शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिखा है कि 'छायावादी कवियों में' केवल महादेवी ही रहस्यवाद के भीतर रहीं हैं, इसका अर्थ समझाते हुए उन्होंने आगे स्पष्ट कर दिया है कि महादेवी की कविता का एकमात्र विषय है अज्ञात प्रियतम की साधना, वही महादेवी के हृदय का भाव केंद्र हैं और उस को पाने के लिए देवी जी ने अपनी सहज वेदना को सीधी, सरल, प्रांजल प्रवाहपूर्ण भाषा में व्यक्त किया है। प्राचीनकाल में साधक और साध्य के बीच मध्यस्थ का जो कार्य गुरु करते थे वही कार्य महादेवी के लिए उन की पीड़ा कर रही है गुरु के लिए जिस श्रद्धा विश्वास की आवश्यकता होती है आज के बौद्धिक युग में वह किसी भी हाड़ मांस के गुरु के लिए होती नहीं अतः गुरु की आवश्यकता ही क्या ?)

महादेवी "पीड़ा में तुम को ढूंढा तुम में ढूंढूंगी पीड़ा" कह कर पीड़ा का ठीक वैसे ही आदर करती है। जैसे कबीर ने—

गुरु गोबिन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु अपने जोगोबिन्द दियो बताय।

...कह कर किया था।

महादेवी पीड़ा का जो इतना आदर करती है उस का मूल कारण उन के अन्तर की गहन गुहा में झांकने पर और ध्यानपूर्वक उन के गीतों में उन का अंतः विश्लेषण करने पर यह तथ्य सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी के रहस्यवाद का रहस्य अभाव और समर्पण की भावना से ऐसा ओत प्रोत है कि एक को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि उन में कार्य कारण सम्बन्ध स्पष्ट है। यह अभाव उन के लौकिक जीवन की असफलता से उत्पन्न हो कर आध्यात्मिक समर्पण बन गए हैं जो अपने प्रथम रूप में तो कवियित्री के हृदय में जलन और दाह बन कर सुलगे और दूसरे रूप में माधुर्यरस पूर्ण गीतों में शतधार हो कर फूट पड़े और अभावों की वह दाह और जलन महादेवी की काव्य कोमलता में घुलमिल कर उन की अनुभूति चिंतन के धरातल पर उतरकर रहस्मयी हो उठी।

यहां पर यह प्रश्न स्वभावतः ही उठता है कि महादेवी की अनुभूति में मीरा और जायसी की सी तीव्रता क्यों नहीं? इस के समाधान में डा० नगेन्द्र का मत उचित ही है कि "आज के रहस्यवाद के साथ आध्यात्मिकता का सम्बन्ध जोड़ना उपहासमात्र ही है क्योंकि रहस्यवाद की प्रवृत्ति के लिए श्रद्धा और विश्वास की जो दृढ़ आधारभूमि अपेक्षित है आज के बौद्धिक युग में आधुनिक शिक्षा दीक्षा के वातावरण में उस का दावा करना अपनी हेठी कराना है आज तो मानवयुग है और उस की अपनी अहंता का युग है।"

फ्रायड के अनुसार कविता के मूल में हमारी कुंठाएं और वासनाएं जो बाह्य जगत में अभुक्त रह कर अन्तश्चेतना में दबी रहती हैं, वही परिष्कृत रूप में उभर पड़ती हैं। मानव का अभाव अपूर्ण रह कर समाप्त नहीं हो जाता, दबा रहता है। दबा पड़ा वह अभाव व अह अभिव्यक्ति के लिए मार्ग और समय ढूंडता है और कविता हमारे उन्हीं अभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

इस सिद्धांत के प्रकाश में महादेवी जी की कविता के मूल में भी कुछ लौकिक अभाव सिसकते दिखाई देते हैं। यह अभाव भी ऐसे हैं जो समर्पण चाहते हैं और पूर्ण समर्पण चाहते हैं बिना किसी चाह के,

अभिलाष के। उन्होंने कहा भी है—

क्या अमरों का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार
रहने दो हे देव अरे, यह मेरा मिटने का अधिकार।

यह अभाव उन्हें इतना प्रिय है कि सहज में वह इसे छोड़ने वाली भी नहीं।

उपरोक्त समर्पण की भावना डा० नगेन्द्र के मतानुसार आज के युग की ऐन्द्रिय अतृप्ति की भावना है। भक्ति युग के सन्तों की आत्म समर्पण की भावना में और इस में यही अन्तर है कि सन्त लोग अपने सम्पूर्ण अभावों को भगवान के चरणों के अर्पित कर देते थे उंडेल देते थे और फिर प्रसाद रूप में प्रभु से उसे पा कर जन-जन को बांट देते थे। उस में प्रसाद के भाव की उदात्तता भर उठती थी। तुलसी का मानस वही प्रसाद है। देखा जाए तो तुलसी की अभुक्त काम वासना ही तो रामचरित के पावन प्रयाग में अवगाहन करके पुनीत हो गई थी और तुलसी ने उसे अपने राम के चरणों में समर्पित करके 'मानस' के विशुद्ध प्रसाद रूप में उसे जनजन में वितरित करने के लिए पुनः प्राप्त किया था। सांसारिक अभावों से पूर्ण महादेवी जी का जीवन भी निसन्देह एक करुण सजल गीत होगा जिसे व्यक्त करने के लिए भारतीय नारी-कवि के पास दो ही साधन हैं एक स्वकीया रूप में जैसा मीरां ने किया और या फिर साधना द्वारा तपा तपा कर विशुद्ध कर लेने पर उसे परम प्रभु को समर्पण कर देने में, अब चाहे वह पवित्र हो चाहे अपवित्र—

तेरा तुझ को सौंपते क्या लागे है मोर ?

तीसरा साधन है परकीय भाव से आत्म समर्पण। परन्तु भारतीय नारी अपनी मर्यादा की 'सौमित्री रेखाओं को लांघ नहीं सकती।' परकीया भाव का सौंदर्य दर्शन या आत्म-निवेदन पंत, प्रसाद या निराला में मिल सकता है क्योंकि पुरुष के लिये तो हमारे यहां ऐसा कोई बधन नहीं पर महादेवी ऐसा नहीं कर सकती थी। मीरां की तरह सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करने का साहस उन में नहीं, अतः उन्होंने साधना का मार्ग अपनाया। अपने इस अभाव की पीड़ा की लौकिकता को मसल २ कर गला डाला जिस से सारा कलुष तो धुल गया परन्तु साथ ही इस की तीव्रता भी कम हो गई, अनुभूति दबती गई। ऐसा प्रतीत होता है कि

वह डर २ कर, छितर २ कर, बिखर २ कर पांव धरती है परन्तु इस कमी को महादेवी की रंगीन तूलिका, कोमल कल्पना, रेशमी भाषा और निर्बाध बहते संगीत ने पूरा कर दिया है। उन का रहस्य-भाव बड़ा मधुर है जिस ने सारे जगत को ही मधुर बना दिया है—

मधुर मुझ को हो गए सब मधुरता का दान दे।

महादेवी की रहस्य साधना दार्शनिक रहस्य साधना नहीं अभिलाष की साधना है। वह इस लोक में रह कर भी उस अज्ञात अनंत को जानने के लिए आकुल हैं जो सब के आकर्षण का केन्द्र है और युग भी जिसकी ओर खिचते जा रहे हैं—

तोड़ दो वह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है।
जा रहे युग पंथ से जिस ओर उसका छोर क्या है।।

हां नीरजा में अभिलाष कम है। वहां उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे अब वह अपने लक्ष्य को पाने ही वाली हैं अतः वह पूर्णतः तैयार हैं पिया मिलन के लिए और अन्तिम प्रसाधनों व सहायकों को जुटा रही हैं—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से,
आ वसन्त रजनी।

और—

तारक मय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन।
रश्मिवलय सितघन अवगुण्ठन मुक्ताहल,
अभिराम बिछा दे चितवन में अपनी।

और यह लो अब तो प्रिय आ ही पहुंचे तभी तो—

सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी।

स्वागत के लिए सिहर पुलक देखिए कैसी अनुभूत सी है—

सिहर सिहर उठता सरिता उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा भर,
मचल मचल आते पद फिर फिर......

और—

अब विरह की रात को,

तो—

चिर मिलन का प्रात।

कहते ही बनता है।

डा० नगेन्द्र ने कहा है कि 'महादेवी में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अंतर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य तृप्ति न पा कर अमांसल सौंदर्य की सृष्टि करता है। मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य चिंतन (अनुभूति नहीं) तितली के पंखों और फूलों की पंखड़ियों से चुराई हुई कला और इस सब के ऊपर स्वप्न से पटा हुआ एक वायवी वातावरण यह सभी तत्व जिस में घुले मिले रहते हैं वह है महादेवी की कला।'

महादेवी जी की पृष्ठ भूमि प्रसाद की तरह व्यापक नहीं। फलतः वे बार बार प्रकृति के कुछ गिने चुने उपकरणों को लेकर ही सामने आती हैं। दीपक तो निरंतर उनके प्राणों में जलता ही रहता है फिर चाहे वह प्रिय का पथ आलोकित करने के लिए हो चाहे तिलतिल जलने वाली साधना मार्ग का आवश्यक तत्व। परन्तु नीर भरी बदलियों और क्षितिज की रंगीनियों में भी निरंतर उनके अलस वेदना विह्वल नयन सदा किसी की अनंत खोज में विकल रहते हैं। 'पथ देख बिता दी रैन' ते मानों उनकी दैनिक चर्या है।

महादेवी के गीतों में संगीतात्मकता और लय की सदैव प्रधानता रही है। एक स्थान पर वह कहती हैं कि 'साधारणतः गीत सुख दुख की तीव्र अनुभूति का वह शब्द चित्र है जो अपनी ध्वन्यात्मिकता में गये हो सके। यद्यपि उन में सदैव अनुभूति की तीव्रता उतनी नहीं तथापि उस में एक ऐसा भोला ग्राम्य तत्व है जो अपनी सहज सरलता में अनायास ही मन को मोह लेता है। महादेवी के गीतों का प्रत्येक शब्द गाता हुआ प्रतीत होता है और कभी कभी तो उनकी वेदनामय अनुभूति भी इतनी तीव्र हो उठती है कि जीवन का सारा तत्व व सृष्टि का सम्पूर्ण सार उसी में पुंजीभूत हो उठता है—मैं नीर भरी दुख की बदली।

मेरा परिचय बस इतना ही कल उमड़ी थी मिट आज चली। में ऐसी दुःखात्मक तीव्रता है जो किसी पत्थर हृदय को भी अपनी अनुभूति में रुला देती है। जीवन की नश्वरता का इतना संक्षिप्त, संगीतमय व समग्र चित्र हिन्दी काव्य-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।



महजूर की काव्य शैली

अवतार कृष्ण राज़दान

शैली काव्य का अभिन्न तत्व है। शैली ही व्यक्ति है—प्रसिद्ध जर्मन विद्वान वफा की यह उक्ति काव्य में शैली के महत्व को प्रतिपादित करती है। अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी काव्य में शैली के महत्व को स्वीकार किया है। गेटे ने इसे मस्तिष्ककी प्रतिलिपि' कहा है। लुई ने इसे 'कवि के व्यक्तित्व का अंतरंग एवं अभिन्न अंग' माना है। भारतीय काव्य शास्त्र में वामन ने 'रीति' को काव्य की आत्मा माना है। इनके पूर्ववर्ती दण्डी एवं भामह जो अलंकारवादी थे, ने भी शैली के महत्व को स्वीकार किया है। उन का कहना है कि प्रत्येक कवि अपने स्वभाव के अनुरूप कवि-मार्ग बना लेता है।

गुलाम अहमद 'महजूर' (१८८५-१९५२) कश्मीर के क्रान्तिकारी, स्वतन्त्र-चिंतक एव समाज-सुधारक ही नहीं थे, बल्कि एक उत्कृष्ट कवि भी थे। कविता करना उन का अपने अनुभवों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति का एक माध्यम मात्र था। प्रारम्भ में उन्होंने फारसी में कविता की। १९१२ में उर्दू में लिखना शुरू कर दिया। यह क्रम लगभग २० वर्ष तक चलता रहा है। १९३२ में यहां की प्रसिद्ध कवयित्री हब्बाखातून (१६वीं शती) के एक प्रेम गीत के आधार पर 'पोशे मति जानानो' शीर्षक से एक गीत कश्मीरी में लिखा। इस में उन्होंने अपना सर्वस्व प्रेमिका को अर्पित किया है तथा भाव विभोर होकर उस की प्रशंसा करते हैं। उसे मन ही मन मनाते हैं तथा अपने पास बुला कर मिलने के लिए तरसते हैं—'गोशन मज़ हा वथरावय, वलो म्यानि पोशे मदनो' (आ मेरे फूलों के रसिया प्रेमी! मैं तेरे लिए सुन्दर बगीचे में फूल बिछाऊंगी),

इसे स्पष्ट हो जाता है कि 'महजूर' की अभिव्यक्ति विलक्षण थी। प्रेम के अनन्त सागर में डूब कर उन की वाणी कविता बन गई। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी कविता प्रेम के ही रंग में नहीं रंगी बल्कि इस में गुल, बुलबुल, बाग पर्वतमालाएं, यहां तक कि प्रकृति के असीम वैभव का चित्रण भी कर डाला है। इससे उन की कविता में नयापन सा दीख पड़ता है तथा इस का जीन टेलर की 'वायलेट' तथा बायरन की 'चायल्ड हैराल्ड' से काव्यमय साम्य हो जाता है।

यद्यपि 'महजूर' का व्यक्तित्व एक देश-भक्त कवि के रूप में अधिक उभरा और निखरा है, फिर भी उन की शैली विषय पात्र परिस्थिति के अनुकूल विचित्र एव वैविध्य पूर्ण है। उन की कविता के उद्देश्य मुख्यतः तीन हैं। एक समाज में विशेष सुधार लाना, दो कश्मीरी कविता को रूढ़िगत एवं मिथ्याडम्बरों से मुक्त कराना, तीन समय की परिवर्तनशीलता के साथ २ देश वासियों को उन्नति के पथ पर ले जाना। उन की काव्य शैली का रूप इन्हीं तीन सूत्रात्मक उद्देश्य के साथ त्रिविधात्मक है। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर अपने गहन अनुभवों को उन्होंने अपनी कविता-कामिनी द्वारा दूसरों तक पहुंचाया है। अंतः प्रेष्णीयता उन की काव्य-शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। 'नोव-कश्मीर' शीर्षक की एक कश्मीरी कविता में जहां उन्होंने कश्मीर के प्रत्येक प्राकृतिक स्थल का वर्णन किया है तथा यहां के कण-कण की हीरे एवं जवाहर से तुलना की है, वहां दूसरी ओर यहां के लोगों की गरीबी एवं बेबसी को नजरन्दाज नहीं किया। इस से उन की शैली सूत्रात्मक एवं सुगठित बन गई है। उन की छोटी-छोटी तुकों में अर्थवत्ता एवं अर्थ-गाम्भीर्य है। एक-एक शब्द विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखता है। 'वोल हा बागवानो' वाली कविता में तीखापन एवं चुभन है। इस में उन की शैली व्याख्यात्मक एवं व्यंग्यपूर्ण है। परन्तु 'महजूर' की यह विशिष्टता है कि उन की शैली में व्यग्य एव भर्त्सना होते हुए भी संयम एवं मर्यादा है, यथा—

वलो हा बाग वानो, नव बहारुक शान पैदा कर।
फलन गुल, गथ करन बुलबुल, तिथिय सामान पैदा कर॥
अगर वुजनावहन बस्ती, गुलन हँज जाव जीरो बम।
वुन्युल कर, वाव कर, गगराय कर, तूफान पैदा कर॥

(रे माली! तू बाग को संवार कर नव-बहार की शान पैदा कर।

इसी से गुलाब खिलेंगे तथा बुलबुल चहकेंगे। अगर तू सच्चे मानों में फूलों की बस्ती को जगाना चाहता है तो भूकम्प ला, गर्जना कर तथा तूफान ला)।

'महजूर' एक पटवारी थे। उन्होंने कश्मीर के अनेक प्राकृतिक स्थानों की यात्राएं की। वे जहां भी जाते थे, वहां के जन-जीवन, प्राकृतिक दृश्यों आदि का वर्णन कविता द्वारा किया करते थे। यही कारण है कि उन की शैली वैविध्य पूर्ण है। जिस प्रकार वे रूढ़िवादी न होकर प्रगतिशील विचारों को पनपाने के प्रयत्न में थें, उसी प्रकार उन की शैली भी पुरानी लकीरों को छोड़ कर समय, विषय तथा स्थान के साथ-साथ अपना रंग रूप बदलती है। उन की शैली विविधि प्रकार के काव्य रूपों, मुहावरों एवं विस्तृत शब्द-भण्डार से भरपूर है।

भाषा की दृष्टि से यदि देखा जाये, 'महजूर' अपने पूर्ववर्ती मकबूल शाह 'क्रालवारी' की तरह कट्टर पंथी नहीं थे। उन्होंने सदियों से व्यवहृत फारसी या अरबी निष्ठ कश्मीरी शब्दावली का प्रयोग अपनी कविता में नहीं किया। उन्हें साधारण जन की मातृ भाषा के प्रति बहुत अनुराग था। जनता की भाषा उनकी भाषा थी। भाषा उनकी अभिव्यक्ति की माध्यम मात्र थी। उन्होंने इसकी सरलता, स्पष्टता, सहज़ता, बोधगम्यता एवं व्यावहारिकता के प्रति अधिक ध्यान दिया। उस में स्थान, विषय, भाव, परिस्थिति, पात्र एवं श्रोताओं के अनुकूल विविधता है। एक दिन उन्हें मुशायरे में अपनी एक गज़ल सुनाने को कहा गया। परन्तु गज़ल को सुनाने से पूर्व यह शर्त भी रखी गई कि गज़ल का विषय 'निशात बाग के फूल' होना चाहिए। उन्होंने यह शर्त कबूल की तथा सरल कश्मीरी में 'बागे निशात के गुलो' शीर्षक से एक गज़ल लिख डाली। उसे मुशायरे में सुनाई। श्रोतागण झूम उठे तथा उनकी खूब वाह-वाही हुई। तब से यह गज़ल सारे भारत में लोकप्रिय हुई। कहने का तात्पर्य है कि 'महजूर' के गज़लों की लोकप्रियता से कश्मीरी भाषा के प्रसार में काफी सहायता मिली तथा हर एक को यह पूरी तरह मालूम हुआ कि कश्मीरी भाषा जो सदियों से पिछड़ी हुई समझी जाती थी, में भी कविता करने के तथा करिश्में दिखाने की गुंजाइश है। इतना ही नहीं, 'महजूर' के गज़लों की भाषा इतनी सरल तथा मुहावरेदार है कि कश्मीर के बाहर भी लोग इनको अपनी-अपनी

लय में गाने लगे। इसका मुख्य कारण है कि 'महजूर' की भाषा में विशेषता स्थान, भाव तथा विषय की विविधता है। उदाहरण स्वरूप 'बागे निशात के गुलो' शीर्षक की कविता में उन्होंने कश्मीर के निशात बाग तथा डल झील का जो वर्णन किया है, इस से सभी पाठक झूम उठते हैं। ये कश्मीर की ऐसी दो मनोरंजनार्थ टहलने-फिरने की जगहें हैं जिसके साथ यहां की जनता को मोह है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित ऐसी ही कई गज़लें हैं जिनकी भाषा में स्थान, पात्र तथा परिस्थिति का ध्यान रखा गया है। कहीं कहीं उनकी भाषा अत्यन्त समर्थ, भाव-व्यंजक एवं व्यावहारिक बन गई है। प्रेम की पीर, संयोग, वियोग तथा प्रकृति से सम्बन्धित तथ्य निम्न गज़लों में समाविष्ट हैं जो 'महजूर' ने बहुत ही सुन्दर, सरल एवं मुहावरेदार भाषा में लिखी हैं—

बागि-निशात के गुलो, नाज़ करान-करान वलो।

(ऐ निशात बाग के फूलो, झूम-झूम कर मेरे पास आओ)।

म्योन लोकचार वय कुय श्रोस दयोदार,
लब दरिया छावान ताज बहार।

(मेरा लड़कपन जंगल के पेड़ के समान था जो दरिया की हरियाली का आनन्द ले रहा था)।

मारमति आवार करथस, चार म्योन करिज़हे।
रोशि यिजिहे उल्फतुक मस लोल खासेन भरिजहे।

(प्यारे प्रीतम! तूने मेरा दिल उदास कर दिया। काश तू किसी समय टहलते-टहलते आ जाता तथा उल्फत की शराब प्रेम की प्यालियों में भर देता)।

'महजूर' की काव्य शैली का एक विशिष्ट गुण है माधुर्यपूर्ण संगीतात्मकता। संगीत एवं कविता का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन-काल से चला आया है। 'महजूर' की हर एक गजल तालबद्ध, तुकान्तबद्ध एवं संगीत बद्ध है। इसके अतिरिक्त उन्होंने जो भी गज़लें लिखीं, उन में भाव तथा विषय के अनुरूप ही कश्मीरी सूफियाना रागों का प्रयोग किया। इस से उनकी गज़लों के भावों में तीव्रता, प्रभाव तथा प्रेषणीयता की अभिवृद्धि हुई है। यही कारण है कि कश्मीर के गवैयों ने 'महजूर' की गज़लों को गा कर रिकार्डों में भर दिया है। इसके अतिरिक्त ये ग़ज़लें

शास्त्रीय संगीत के आधार पर गाये जाने से फारसी संगीत की जगह ले लेती हैं। विरह की वेदनापूर्ण मनः स्थिति का वर्णन वे एक विशेष राग के आधार पर कर लेती हैं। यथा—

नज़रे चानि बीमार बलि कोती,
म्यानि विज़ लोगुथ बेग्रार मदनो,
खून गोम जारी, ओश होरि होरी,
फलि-फलि गोम मुक्तहार मदनो,
त्य रोस आरवलि दोह गुज़रयोम कंडयेनप्यठ,
दज़स हरद् ब्रोंठ दरद क्यै आमतावैं।

(तेरी एक नज़र से कितने बीमार अच्छे हो गयें, मेरी बारी आ गई, तू निर्दयी हो गया। आंसू बहाते-बहाते अब मेरी आंखों से रक्त बहने लगा। मेरे प्रीतम! मेरा मोतियों का हार दाने-दाने होकर बिखर गया। मैंने अपने दिल में प्रेम की आग को दबाकर रख दिया। तेरा दिल नरम क्यों नहीं हो जाता? जिसको प्रेम की बीमारी हो, उसका शबनम का शरबत चाहिए। बीमार गुल चमन ही में अच्छा हो सकता है। मैंने तेरे विरह में आखला[1] की तरह कांटों पर दिन गुज़ारे हैं। हाय! मैं शरद से पहले ही प्रेम की अग्नि में जल गई)।

अपने सूक्ष्म चिंतन को चित्रात्मक एवं मूर्तिमान करने के लिए 'महजूर' ने अपने गज़लों में कई प्रतीकों का सहारा ले लिया है। इस से उनकी काव्य-शैली में एक प्रकार की विशिष्टता आई है। प्रेमिका की लटकती हुई केश राशि के लिए गुलमोहर, उसके कानों में झिलमिल बालियों के लिए सप्त ऋषियों का नील गगन पर अन्धेरी रात में चमकना, कश्मीर के आस-पास बर्फ से ढके हुए पहाड़ों को संगमरमर की दीवारों से उपमित करना, बाग को देश से, माली को देश वासियों से, नव-बहार को देश की उन्नति से तथा भूकम्प एव तूफान की क्रान्ति से तुलना करना आदि। प्रतीकों का चयन उनकी कल्पना शक्ति, सूक्ष्म निरीक्षण तथा सृजनात्मक प्रतिभा का परिचायक है। ये सभी प्रतीक भाव व्यंजक, सजीव, सार्थक एवं कवित्वपूर्ण है।

---

1. आखल एक प्रकार का गुलाब होता है जिसकी थोड़ी पंखड़ियां होता है परन्तु नीचे बड़े-बड़े नुकीले कांटे होते हैं। इस फूल की एक विशेषता यह है कि यह हर समय थर थराता हुआ दिखाई देता है।

'महजूर' अपना गहन अनुभव थोड़े ही शब्दों में व्यक्त करने की योग्यता रखते हैं। यह उनकी काव्य शैली का एक महत्वपूर्ण गुण है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

निश नाज़नीनन क्याज़ि वुन नाल दिनू लाज़िम।
बुलबुल छुम्र बनान शबनमस साथ अठरवनै।

(बुलबुल शबनम से पूछती है कि ज़रा ठहरकर मुझे बता कि सुन्दरियों के पास जाकर क्यों तुझे आंसू बह निकलते हैं और चिला-चिलाकर रोना पड़ता है) यह है गज़ल का प्रत्यक्ष अर्थ। लेकिन इसका परोक्ष अर्थ भी देखिए। शबनम और बुलबुल दोनों को रंग-बिरंगे फूलों से एक विशेष लगाव है। इसलिए बुलबुल शबनम से पूछती है कि जब प्रेमिका के दर्शन से एक प्रकार का आत्मसुख मिलता है, तू उसके पास जाकर आंसू क्यों बहाती है और चीख-चीख कर रोने लगती है। गज़ल को पढ़ कर लगता है कि बुलबुल और शबनम का यह वार्तालाप रात की आखरी घड़ियों में हो रहा है क्योंकि बुलबुल तो बाग में हर समय रहा करता है, मगर शबनम प्रातःकाल को ही फूलों पर पड़ती है। 'महजूर' की ऐसी ही कई गज़लें हैं जिन से कश्मीरी काव्य-साहित्य में तहलका मचा है।

'महजूर' की काव्य-शैली का महत्वपूर्ण गुण है सरल एवं सुगठित शब्दों का प्रयोग। यही कारण है कि उनकी गज़लें पढ़ने में सरल एवं भावपूर्ण लगती हैं। इन में सरल विचार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के दिल में बसे हुए लगते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

नज़रे चानि बीमार बलि कोती,
म्यानि विज़ि लोगुथ बे आर मदने।

(तेरी एक नज़र से कितने बीमार अच्छे हो गये, मेरी बारी आ गई, तू निर्दयी हो गया)।

अती रोज़ कथा बोज़, मदनवार अती रोज़।
दिलदार म्य छुम खार, वुछअत वार अती रोज़।
लोगिथ च्य पानस जाम छती, शाम पती द्राख।
लुअत त्राव कदम, कुअत गछ़ख, माह पार अती रोज़।

(प्यारे प्रीतम! ज़रा ठहर, एक बात तो सुन। मेरा दिल तड़प रहा है। तू शाम के समय सफेद कपड़े पहने हुए कहां जा रहा है।

चांद के टुकड़े ! ज़रा ग्राहिस्ता चल, वहीं ठहर। मुझ से क्यों रूठता है। मैं प्राण दे दूंगी, सब कुछ तुम्हारे अर्पण करूंगी। वहीं ठहर ! वहीं ठहर !!)

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'महजूर' की सभी गज़लों में उनके भाव अंत रंग साथी बनकर, उनकी भाव व्यंजना के सहायक हो गये हैं। इस से उनकी शैली में गाम्भीर्य ग्रा गया है। उनकी शैली अनुभूति का अनुकरण करती है। उनकी शैली कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह सहज भी है, सुन्दर भी, स्वाभाविक भी है और सरल भी। यही उनके व्यक्तित्व का सच्चा दर्पण है। यही कारण है 'महजूर' के सम्पूर्ण काव्य साहित्य का अनुशीलन करने के पश्चात् कवीन्द्र के शिष्य देवेन्द्र सत्यार्थी अपने एक लेख में यों लिखते हैं—'महजूर' के विचार रवीन्द्र की बंगला कविताओं से अधिकांश जगहों पर मिलते-जुलते हैं। ऐसा लगता है कि कवीन्द्र ने महजूर की तथा महजूर ने कवीन्द्र की नकल की है :

(कश्मीरी ज़बान और शायरी, भाग ३, पृ० २२२)

अस्तित्ववाद

मोहन लाल कौल

अस्तित्ववादी दर्शन-शास्त्र का उद्भव और विकास फ्रांस में हुआ। 'सार्त्रे', 'जीद' और 'कामू' के साहित्य में अस्तित्ववाद का अधुनातन रूप उपलब्ध होता है। यह दर्शन-प्रणाली क्लासिकी विश्वविद्यालयों से दूर कहवाखानों में पली और पनपी। 'हेडेगार' और 'यास्पर्स' में इस दर्शन के मूल तत्त्व मिलते हैं। १९वीं शताब्दी के मध्यम भाग में 'कारकेगार्ड' ने अस्तित्ववादी दर्शन के मूल-सूत्रों की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस चिन्तन-पद्धति में मानव की आशाहीनता, अवसाद, विघटन और टूटन की प्रधानता है। अस्तित्ववाद यथार्थ को उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ में न लेकर क्षण विशेष में ही ग्रहण करता है।

अस्तित्ववाद रुढ़ि-प्रधान परम्परागत दार्शनिक विचार-लहरी के विरुद्ध विद्रोह-स्वरूप प्रकट हुआ। 'अरस्तू' और 'हीगल' के दार्शनिक तत्त्वों में मानव-विशिष्ट को छोड़ जागतिक समस्याओं को प्रधानता मिली। वे मानव को किन्ही निश्चित लक्षणों का कुल मानते थे। इन दार्शनिकों की मानव-प्रकृति की व्याख्या बौद्धिक और विश्लेषणात्मक है। 'ह्यूम' सन्देहवादी थे और मत-निर्माण की सम्भावनाओं के विरुद्ध थे। विज्ञान ने धर्म-दर्शन क्षेत्र पर भी आक्रमण किया। धर्म भी मनोविज्ञान से विछिन्न हो बुद्धि की वस्तु रह गया है। अस्तित्ववादी विचार-धारा अपने मूल-स्वरों में बुद्धिवाद के विरुद्ध विद्रोह है। बुद्धिवाद जीवन की संभ्रमता को पकड़ने में असमर्थ है और मानव-आत्मा की सूक्ष्मताओं क इसे ज़रा भी ज्ञान नहीं। अस्तित्ववाद के प्रमुख प्रणेता 'कारकेगार्ड' बुद्धिवाद के विरोधी थे। 'फ्रेडरिक मेयर' का कथन है—"It goes

without saying that Kierkegaard was the enemy of intellectualism"[1].

अस्तित्ववाद युद्धोत्तरकालीन दर्शन-शास्त्र है। विगत दो महायुद्धों ने मानवता के सुन्दर स्वप्नों को चकनाचूर कर दिया। व्यक्ति की सारी योजनाएं छिन्न-भिन्न हो गईं। युद्ध-जन्य परिस्थितियों ने युग-जीवन के समक्ष प्रश्न-चिन्ह डाल दिया। व्यक्ति अपनी इकाई में सिकुड़कर रह गया। वह घुटन, बेचैनी, नैराश्य और लघुता के भावों को अनुभव करने लगा। युद्ध-सभ्यता तनाव और मूल्य-विघटन पर आधारित है। इस विषम वातावरण से मानव का मानस-लोक विघटित हुआ और वह अपने को एकाकी और असहाय पाने लगा। 'गन्थर अण्डर्स' विघटित मानव के विषय में लिखते हैं—"Each of us is split into two separate beings; each of us is like a worm, artificially or spontaneously, divided into two halves which are unconcerned with each other and move in different directions"[2]

आधुनिक युग मशीन-प्रसार के कारण भी एक ऐसे चौराहे पर पहुंच गया है जहां से भिन्न-भिन्न रास्ते विविध दिशाओं में जाते हैं। इस यन्त्र-युग में मशीन का साम्राज्य है और मानव जो कभी समस्त विश्व का केन्द्र था क्षुद्रावस्था में गिर हारा-थका एक अजीब अन्धेपन को महसूस कर रहा है। यन्त्र-युग ने मानव समाज के रिश्ते अर्थ-हीन बना दिए और अपने वशीभूत कर मानव को विवश बना दिया। मशीन ने व्यक्ति के व्यक्तित्व को खण्डीभूत किया और उसके जीवन की रसमयता और स्निग्धता को छीन लिया। आज का मानव अवसाद, अलगाव और नैराश्य में छटपटा रहा है। उस को सम्भालने वाले सभी मान-मूल्य सारहीन हैं। उस के मन में एक अजीब संघर्ष है—तनाव है। वह कुहासे से आच्छादित आंखें मीचे अपने ही अहम् में डूब संकट की स्थिति में तड़प रहा है। अस्तित्ववाद मानव की इसी संकटकालीन स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। इस दर्शन-शास्त्र ने यथार्थ की कुत्सा, क्षोभ,

---

1. A History of Modern Philosophy by F. Mayer page 471
2. Man Alone P. 298

रुदन और टूटन को दार्शनिक रूप में प्रस्तुत किया।

आज का युग अनास्था और सन्देहवाद का युग है। 'डारविन' ने विकासवाद की धारणा प्रस्तुत कर देने से मानव-मात्र के लिए एक नवीन संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी। ईश्वर और धर्म पर से मनुष्य का विश्वास उठ गया। वह अपने क्रिया-कलाप में स्वतन्त्र हो अजीब अराजकता का शिकार हुआ। ईश्वर की सत्ता ने पहले उसके मन और बुद्धि में एक समन्वय स्थापित किया था। किन्तु अब उसके विश्वास पंगु हुए और वह अपने व्यक्तित्व में ही संघर्ष पाने लगा। परिणाम स्वरूप मनुष्य का व्यक्तित्व विघटन अनुभव करने लगा। ईश्वर पर से श्रद्धा उठ जाने से मनुष्य का मानसलोक खण्ड-खण्ड हुआ। धर्म-भावना से हीन मानव की अवस्था के विषय में 'बेरैट' लिखते हैं—"In losing religion, man lost the concrete connection with a transcendent realm of being, he was set free to deal with this world in all its brute objecttivity. But he was bound to feel homeless in a world which no longer answered the needs of his spirit"[1]

अस्तित्ववादी दार्शनिक ईश्वर की सत्ता को महत्त्वपूर्ण समझते हैं। ईश्वर का नाम मूल्य-उत्पत्ति का कारण रहा है। मानव मूल्यों का सहारा लेकर जीवन से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। आज की मूल्य-हीन स्थिति से जूझने के निमित्त आस्तिक अस्तित्ववादी ईश्वर और धर्म का आश्रय लेते हैं। 'कारके गार्ड' ईश्वर को आत्मा की सुरक्षा के लिए बड़ा साधन मानते हैं। वह मनुष्य जीवन की सफलता ईश्वर-श्रद्धा में ही देखते हैं। 'मार्सल' और 'यास्पर्स' भी मनुष्य के आत्मान्वेषण के अमल में ईश्वर की महत्ता स्वीकारते हैं। 'यूनामूनु' भी मनुष्य जीवन में आध्यात्मिकता पक्ष को बहुत ही आवश्यक समझते हैं। आस्तिक अस्तित्ववादी अपनी मूल धारणाओं में 'एनसेलम' के ontological argument से प्रभावित हैं। आस्तिक अस्तित्ववादी ontological school से सम्बन्धित हैं। इसके विपरीत नास्तिक अस्तित्ववादी ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते नहीं हैं। 'ज्यां पाल सार्त्रे' इन में प्रमुख हैं।

---

1. Man Alone Page 161

सार्त्रे के अस्तित्ववाद का आधार नास्तिकता पर है। वह ईश्वर की सत्ता में विश्वास की मूल धारणा को ही व्यर्थ और सारहीन समझते हैं। उनका विचार है कि मानव अपनी अन्तर्शक्ति द्वारा ही अस्तित्व की स्थिति का सामना करने के योग्य है। 'सार्त्रे' के नास्तिक अस्तित्ववाद पर 'नात्शे' और 'मार्क्स' का खूब प्रभाव पड़ा है। नास्तिक अस्तित्ववादी phenomenological school से सम्बन्धित हैं।

अस्तित्ववादी विचारा-धारा में 'अस्तित्व' existence की धारणा ही मुख्य है। 'अस्तित्व' का शब्द व्यक्ति-विशिष्ट के लिए प्रयुक्त होता है। व्यक्ति वही है जो वह करता है। वह किसी पूर्व-निश्चित प्रकृति का वहन नहीं करता। व्यक्ति की समस्या जटिल और समाधानातीत है। गणित के फार्मूले में उसको बांधना असम्भव है। एक व्यक्ति सर्वदा क्रिया-कलाप में रत रहता है। उसकी सत्ता का व्यक्तिकरण योजनाएं बनाने और भविष्य के बारे में सोच-विचार करने से ही होता है। कारकेगार्ड का मत है कि अस्तित्व क्रिया-कलाप में रत व्यक्ति को सूचित करता है। यास्पर्स का कहना है कि अस्तित्व क्रिया-कलाप का ही मुख्य स्रोत है और इसको कोई ठोस सत्ता नहीं। अस्तित्व जीने का अमल है। सार्त्रे ने existence precedes essence की घोषणा करके तार्किक दर्शन-शास्त्र की धारणाओं को तोड़ दिया। सार्त्रे मनुष्य जीवन में किसी बाह्य-सत्ता के अवरोध को व्यर्थ समझते हैं। उनका कथन है—man is nothing else but what he makes of himself".[1]

आधुनिक युग का व्यक्ति रिक्तता, जड़ता और अनिश्चितता का शिकार है। किन्तु व्यक्तिगत चेतना में वह स्वतन्त्र है। इस चेतनात्मक स्वतन्त्रता को कोई भी उसे न छीन सकता है और न रौंद सकता है। वह अपने क्रिया-कलाप में पूर्ण स्वतन्त्र है। किन्तु स्वतन्त्र होकर भी वह विपद्ग्रस्त है क्योंकि कोई बाह्यात्मक शक्ति या मूल्य (values) उसका पथ-प्रदर्शन नहीं करते। यह स्थिति भी संकट-संकुल है। व्यक्ति को इस स्थिति में अपना कार्य-कलाप स्वयं आविष्कृत करना है। सार्त्रे ने इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"Man is Condemned to

1. Nothingness and Being by sartre

choice". ईश्वर की मृत्यु के साथ-साथ मूल्यों का भी निधन हुआ। जीवन के सभी मान-मूल्य ह्रासोन्मुख हुए। इस स्थिति में व्यक्ति आत्म-समर्पण के लिए बाध्य हो जाता है। इस आत्म-समर्पण (abandonment) की स्थिति की उत्पत्ति मान-मूल्यों के अभाव के कारण होती है। 'डर्कहीम' ने इस स्थिति को 'anomie' का नाम दिया है।

मानव का अस्तित्व नैराश्य (despair)से ओत-प्रोत है। नैराश्य का मूल-स्रोत मानव की अपनी सीमाएं हैं। वह मरणशील है—उसकी शक्तियां और संभाव्यताएं सीमित हैं। उसका समस्त क्रिया-कलाप नैराश्य की स्थिति में निमग्न है। मानव जीवन से नैराश्य कीड़े की तरह चिमटा हुआ है। मानव स्वतन्त्र है और उसकी स्वतन्त्रता सब सत्ता की द्रोही है। इस विलक्षण स्थिति में मानवमन तीव्र वेदना (anguish) में धंस जाता है।

मनुष्य को एक विघटनकारी स्थिति का सामना है। इस अजीब Situation में वह अपने को मुंह बाये शून्य में धंसा पा रहा है। संसार भी तो उसकी आंखों के समक्ष है। इस संसार में पदार्थों की प्रधानता है। कहीं ७० मंज़िल भवन हैं, कहीं फौलाद के कल-कारखाने हैं। प्रत्येक पदार्थ उस के वश में नहीं। वह हर वस्तु को अपने से दूर किसी अविज्ञात दिशा की ओर जाते देख रहा है। वह दुखी है और हर वस्तु से अपने को टूटा हुआ पा रहा है। इस अलगाव alienation की स्थिति में वह लघुता की भावना का शिकार हो जाता है। इस संसार की प्रत्येक वस्तु से वह उपेक्षित है।

अस्तित्ववाद की सीमाएं मानववाद को छूती हैं। अस्तित्ववादी दर्शन छोटे, महत्त्वहीन और नगण्य मनुष्य के लिए बड़ा चिंतित है। उसकी यह चिन्ता ही अस्तित्ववाद की मानवीयता है। यह दर्शन-प्रणाली यथार्थ की जटिलतम स्थितियों को क्षण विशेष में ग्रहण कर मानव की चेतना पर जकड़ी हुई सामाजिक, राजनैतिक, और धार्मिक जंजीरों को खोलकर उसे जीवन के नवीन सत्यों से जूझने के लिए प्रेरित करती है। अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने आधुनिक जीवन में तनाव tension उत्पन्न नहीं किया है अपितु आधुनिक जीवन में पाये जाने वाले तनाव को व्यक्त किया है—उसे छुपाया नहीं।

●

कर्मसिद्धान्त और मानव

डा० कौशल्या वल्ली

विभिन्न वृत्तियों से युक्त, विभिन्न परिस्थितियों में पनपा मानव, निर्धनता, अमीरी, सुख दुःख, सफलता, असफलता, मैत्री भाव, ईर्ष्या, राग-द्वेष-यह सब खेल देख कर मानव बहुधा आश्चर्यचकित हो जाता है, सोचता है समानता के संघर्ष में कितनी असामनता का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी हताश हो जाता है कि अथक प्रयत्न करने पर भी फलप्राप्ति नहीं होती, अपनी सद्‌मनोवृत्ति रखते हुए भी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामने आना उस के लिए पहेली बन जाती है। वह सोचता है, लोग कहते हैं भगवान् है, वह न्यायी है, दयालू है, सब को समभाव से देखता है, किन्तु व्यावहारिक जगत् में यह विषमता कैसी ? अन्ततोगत्वा वह इसी निष्कर्ष पर आता है कि यह अपना-अपना कर्मफल है।

निरक्षर जीव भी विपत्ति को टालने से भी टलते न देख कर यही कहते हैं कि यह हमारा भाग्य है। विद्यार्थी जीवन के दिनों अपने महाविद्यालय में एक अपनी चौकीदारिन के शब्द इस समय याद आते हैं—'दुःख जितना ही भोगू उतना ही कटेगा।' यह कर्म क्या है ? यह भाग्य क्या है ? यह सुख दुःख, सफलता, असफलता और जन्म-मरण की पहेली क्या है ? आइये, आज हम इसी का विश्लेषण करने का प्रयास करें।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि कर्म की पहेली क्या है ? कर्मन् शब्द कृ धातु से बना है। कृ धातु का अर्थ करना है। अब प्रश्न है कि मानव को कर्म करने की क्या आवश्यकता है ? मानव किस के

द्वारा कर्म करने में प्रेरित होता है ? इस का उत्तर स्थल-स्थल पर यही मिलता है कि बिना कर्म के कोई शरीर धारी नहीं रह सकता है।

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

(गीता ३. ५.)

अर्थात् कोई भी पुरुष किसी काल क्षणमात्र भी कर्म किए नहीं रहता, निःसन्देह सभी पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा परवश हुए कर्म करते हैं।

कर्म चार प्रकार के होते हैं—

१ कृष्ण—पापरूप कर्म अर्थात् हिंसा आदि दूसरों को हानि पहुंचाने वाले स्तेय, व्यभिचार आदि कर्म दुराचारी मानव के होते हैं।
२ शुक्लकर्म—पुण्यकर्म अहिंसा आदि दूसरों को लाभ पहुंचाने वाले स्वाध्याय, तप, ध्यान आदि सदाचारी मानव के होते हैं।
३ कृष्ण-शुक्ल—पापपुन्यमिश्रित कर्म—जिन के करने से किसी को हानि, किसी को लाभ हो, साधारण मनुष्यों के होते हैं।
४ अशुक्ल-अकृष्ण कर्म—वह कर्म हैं जिन के करने से न पुण्य होता है न पाप, जो फलों की वासना रहित निष्काम शुद्ध कर्म हैं।

कर्माशुक्लाकृष्णयोगिनः त्रिविधमितरेषाम् ॥

(पतंजलि योगसूत्र कैवल्यपाद सूत्र ७.)

कर्म में प्रवृत्त करने वाले पांच क्लेश हैं— अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥

(साधनपाद प० यो० सूत्र ३.)

इन्हीं के नामान्तर क्रमशः तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र हैं।

तमस और मोह आठ-आठ प्रकार के हैं। महामोह दस प्रकार के हैं। तामिस्र और अन्धतामिस्र अठारह प्रकार के हैं।

(सांख्य कारिका ४८.)

तमस् (अविद्या)—प्रधान, महत्तत्व, अहंकार और पांच तन्मात्राएं—इन आठ अनात्मप्रकृतियों में आत्मभ्रान्ति रूप अविद्यासंज्ञक तम आठ विषय

वाला होने से आठ प्रकार का है। मोह—(अस्मिता) गौणफल रूप अणिमा, महिमा इत्यादि आठ ऐश्वर्यों में जो भ्रान्ति रूप ज्ञान है वह अस्मिता संज्ञक मोह कहलाता है। यह भी अणिमा आदि भेद से आठ प्रकार का है। महामोह (राग)—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध संज्ञक लौकिक और दिव्य विषयों में जो अनुराग है वह रागसंज्ञक महामोह कहा जाता है। यह भी दस विषय वाला होने से दस प्रकार का कहा जाता है।

तामिस्र (द्वेष)—उपर्युक्त आठ ऐश्वर्यों और दस विषयों के भोगार्थ उवृत्त होने पर किसी प्रतिबन्धक से इन विषयों के भोगलाभ में विघ्न पड़ने से जो प्रतिबन्धक विषयक द्वेष होता है, वह तामिस्र कहलाता है। वह तामिस्र आठ ऐश्वर्यों और दिव्य अदिव्य दस विषयों के प्रतिबन्धक होने से अठारह प्रकार का है।

अन्धतामिस्र (अभिनिवेश)—आठ प्रकार के ऐश्वर्य और दस प्रकार के विषय भोगों के उपस्थित होने पर भी जो चित्त में भय रहता है कि यह सब प्रलयकाल में नष्ट हो जायेंगे, यह अभिनिवेश अन्ध तामिस्र कहलाता है। अभिनिवेश रूप अन्ध तामिस्र भी उदर्युक्त अठारह के नाश का भय रूप होने से अठारह प्रकार का है।

ये सब अज्ञानमूलक और दुःख जनक होने से अज्ञान, अविद्या, विपर्यय-ज्ञान, मिथ्या ज्ञान, भ्रान्ति ज्ञान, और क्लेश आदि नामों से पुकारे जाते हैं। अविद्या सब क्लेशों का मूल कारण है। (पं० यो०, साधनपाद, सूत्र ३-४)

प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्था वाले अस्मिता आदि क्लेशों का क्षेत्र अविद्या है। जिस प्रकार भूमि में रह कर ही बीज उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार अविद्या के क्षेत्र में रह कर सब क्लेश बन्धन रूपी फल देते हैं। अविद्या ही इन सबों का मूल कारण है। ये क्लेश चार अवस्थाओं में रहते हैं—

१ प्रसुप्त—जो क्लेश चित्त भूमि में अवस्थित हैं, पर अभी जागे नहीं, क्योंकि अपने विषय आदि के अभावकाल में अपने कार्यों को आरम्भ नहीं कर सकते हैं, वे प्रसुप्त कहलाते हैं। यथा शैशावस्था में विषयभोग की वासनाएं बीज रूप से दबी रहती हैं, युवावस्था में जाग्रत हो कर अपना फल दिखाती हैं।

२ तनु—वे क्लेश हैं, जो प्रतिपक्षभावना द्वारा अथवा क्रियायोग आदि से शिथिल कर दिए गए हैं। इस कारण वे विषय के होते हुए भी अपने कार्य के आरम्भ करने में समर्थ नहीं होते, शांत रहने, पर इन की वासनाएं सूक्ष्म रूप से चित्त में बनी रहती हैं। निम्न प्रकार से इन को शिथिल किया जाता है—यथार्थ ज्ञान के अभ्यास से अविद्या को, भेद दर्शन के अभ्यास से अस्मिता को, मध्यस्थ रहने के विचार से अस्मिता को, ममता के त्याग से अभिनिवेश क्लेश को तनु (शिथिल) किया जाता है।

विच्छिन्न—विच्छिन्न क्लेशों की वह अवस्था है जिस में क्लेश किसी दूसरे बलवान क्लेश से दबे हुए शक्ति रूप से रहते हैं और उस के अभाव में वर्तमान हो जाते हैं। जैसे राग अवस्था में द्वेष छिपा रहता हैं और द्वेष अवस्था में राग।

उदार—उदार क्लेशों की वह अवस्था है जो अपने सहायक विषयों को पा कर अपने कार्य में प्रवृत्त हो रहे हैं। जैसे व्युत्थान अवस्था में साधारण मनुष्यों में होते हैं।

इन सब का मूलकारण अविद्या है। उसी के नाश होने से सर्व क्लेश समूल नाश हो जाते हैं।

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।। ४ ।।

(साधनपाद प० यो०)

अब इस अविद्या की परिभाषा क्या है ?

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।। ५ ।।

अर्थात् अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मा का ज्ञान अविद्या है। सम्पूर्ण जगत् और उस की सम्पत्ति उत्पत्ति वाला और विनाशी होने के कारण अनित्य है किन्तु इस को नित्य समझना ही अविद्या है। कफ, रुधिर, मलमूत्र इत्यादि के स्थान अपवित्र शरीर को पवित्र समझना एवं अन्याय, चोरी, हिंसा आदि से कमाए हुए धन को पवित्र समझना तथा अधर्म पाप, हिंसा आदि से रंगे हुए अपवित्र अन्तःकरण को पवित्र समझना अविद्या है। संसार के सब दुःखरूप विषय में सुख का समझना; अनात्म शरीर, इन्द्रिय और चित्त को आत्मा समझना अविद्या है, यही बन्धन का मूल कारण है।

अस्मिता की परिभाषा—

पुरुष और चित्त में अविद्या के कारण एक जैसा भान होना अस्मिता क्लेश है इसी को हृदयग्रन्थि भी कहते हैं।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ।। ६ ।।

(साधनपाद)

अर्थात् दृक्शक्ति और दर्शन शक्ति का एकस्वरूप जैसा भान होना अस्मिता है।

सुखानुशयी रागः ।। ७ ।।

(साधनपाद)

सुख भोगने के पीछे जो चित्त में उसके भोगों की इच्छा रहती है, उस का नाम राग है। शरीर, इन्द्रियों और मन में आत्माध्यास हो जाने पर जिन वस्तुओं और विषयों में सुख प्रतीत होता है, उन में और उन के प्राप्त करने के साधनों में जो इच्छारूप तृष्णा और लोभ पैदा हो जाता है, उस के जो संस्कार चित्त में पड़ जाते हैं, उसी का नाम राग क्लेश है।

वस्तुतः राग ही द्वेष का कारण है, क्योंकि चित्त में राग के संस्कार जम जाने पर जिन वस्तुओं से शरीर, इन्द्रियों और मन को दुःख प्रतीत हो अथवा जिन से सुख के साधनों में विघ्न पड़े, उन से द्वेष होने लगता है।

दुःखानुशयी द्वेषः ।। ८ ।।

(साधनपाद प० यो०)

अर्थात् दुःख के अनुभव के पीछे जो घृणा की वासना चित्त में रहती है, उस को द्वेष कहते हैं।

जिन वस्तुओं अथवा जिन साधनों से दुःख प्रतीत हो, उन से जो घृणा और क्रोध हों उस के जो संस्कार चित्त में पड़ें उस को द्वेष-क्लेश कहते हैं।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ।। ९ ।।

(साधनपाद)

अर्थात् स्वभावतः मरने का भय विद्वान् के लिए भी हर एक प्राणी के समान होना अभिनिवेश क्लेश है। प्रत्येक के मन में यही भावना बनी रहती है कि शरीर और विषयादि से मेरा वियोग न हो। मूर्ख से लेकर विद्वान् तक अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को भूल कर भौतिक शरीर की

रक्षा में लगे रहते हैं और उस के नाश से घबराते हैं। इस मृत्यु के भय के जो संस्कार चित्त में पड़े रहते हैं, उन्हीं को अभिनिवेश क्लेश कहते हैं। यही अभिनिवेश क्लेश ही सकाम कर्मों का कारण है, जिन की वासनाएं चित्तभूमि में बैठ कर वर्त्तमान और अगले जन्मों को दवाने वाली होती है।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।। १० ।।

(साधनपाद)

अर्थात् क्लेक्ष जिस की जड़ है ऐसे कर्मों की वासना वर्तमान और अगले जन्मों में भोगने योग्य है। जो महान् योगी क्लेश को निर्वीज समाधि द्वारा उखाड़ देते हैं उन के कर्म निष्काम अर्थात् वासना रहित हो जाते हैं तथा केवल कर्त्तव्यमात्र रहते हैं। अतः उन को इन का फल भोग्य नहीं है। जब चित्त में क्लेशों के संस्कार जमे रहते हैं तब उन से सकाम कर्म उत्पन्न होते हैं। बिना रजोगुण के कोई क्रिया नहीं हो सकती है। इस रजोगुण का जब सत्वगुण के साथ मेल होता है तब ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य के कर्मों में प्रवृत्ति होती है और जब तमोगुण के साथ मेल होता है तो अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य और अनैश्वर्य के कार्यों में प्रवृत्ति होती है। यही दोनों प्रकार के कर्म शुभ-अशुभ, शुक्ज कृष्ण और पाप पुण्य कहलाते हैं। जब तम तथा सत्व दोनों रजोगुण से मिले हुए होते हैं तब दोनों प्रकार के कर्मों में प्रवृत्ति होती है और ये कर्म पाप पुण्य से मिश्रित कहलाते हैं। इन कर्मों से इन्हीं के अनुकूल फल भोगने के बीज रूप जो संस्कार चित्त में पड़ते हैं उन्हीं को वासना कहते हैं। इसी के अदृष्ट या अपूर्व या कर्माशय नाम दिया जाता है।

पुण्य कर्माशय मनुष्य से उच्च देवताओं आदि के सदृश भोग देने वाले होते हैं। पाप कर्माशय मनुष्य से नीचे पशु-पक्षी आदि के तुल्य भोग देने वाले होते हैं। पाप और पुण्यमिश्रित कर्माशय मनुष्यों के समान भोगफल देने वाले होते हैं। उपर्युक्त तीन श्रेणियों में बतलाए हुए कर्मों में केवल शरीर अथवा इन्द्रियां कारण नहीं होतीं, वास्तविक कारण उन में मनोवृत्ति होती है, इस हेतु वह मनोवृत्ति ही वास्तविक कर्म है, जिस की प्रेरणा से शरीर तथा इन्द्रियों में क्रिया होती है। उसी से वासनाओं के संस्कार पड़ते हैं। ये मनोवृत्तियां अनन्त हैं और इन से उत्पन्न हुए

कर्माशय अथवा फलभोग के संस्कार भी अनन्त हैं। इस प्रकार मनोवृत्ति रूप कर्मों से वासनाएं और वासनाओं से कर्म उत्पन्न होते रहते हैं। यह क्रम बराबर चलता रहता है जब तक कि उन से बलवान कर्म उन को दबा न दें। कुछ कर्माशय वर्तमान जन्म में, कुछ अगले जन्म में और कुछ दोनों जन्मों में फल देते हैं। इन कर्माशयों के अनुसार ही इन का फल, जाति, आयु और भोग होता है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः ।। १३ ।।

(साधनपाद)

अर्थात् अविद्या आदि क्लेशों की जड़ के होते हुए उस (कर्माशय) का फल, जाति, आयु और भोग होता है।

मनुष्य, पशु, देव आदि 'जाति' कहलाती हैं। बहुत काल तक जीवात्मा का एक शरीर के साथ सम्बन्ध रहना 'आयु' पद का अर्थ है। इन्द्रियों के विषय रूप-रसादि 'भोग' शब्द का अर्थ है। क्लेश जड़ हैं, उन जड़ों से कर्माशय का वृक्ष बढ़ता है। उस वृक्ष में जाति, आयु और भोग तीन प्रकार के फल लगते हैं। कर्माशय का वृक्ष उसी समय तक फलता है जब तक अविद्या आदि क्लेश रूपी उस की जड़ विद्यमान रहती है। विवेकख्याति द्वारा उस जड़ के कट जाने पर कर्माशय रूपी वृक्ष, जाति, आयु और भोगरूपी उस के फल तथा सुख दुःखी रूपी उन फलों के स्वाद की निवृत्ति स्वय हो जाती है। कर्माशय की उत्पत्ति तथा फल में भी अविद्या आदि क्लेश ही मूल हैं।

मन के वृत्तिरूपी कर्म अनन्त हैं, जो समस्त जीवन में होते रहते हैं। इन से उत्पन्न हुए संस्कार भी अनन्त हैं जिस से चित्त चित्रित रहता है। ये संस्कार चित्त में जन्म जन्मान्तरों से संचित चले आ रहे हैं। जब जिन कर्माशयों के संस्कार चित्त में प्रबलरूप से उत्पन्न होते हैं तब उन्हें प्रधान कहते हैं। जो शिथिल रूप से रहते हैं उन्हें उपसर्जन कहते हैं। मृत्यु के समय प्रधान कर्माशय पूरे वेग से जाग उठते हैं और अपने जैसे पूर्व सब जन्मों के कर्माशय के संचित संस्कारों के अभिव्यंजन होकर उन को जगा देते हैं (प० यो० ४।६)। इन सब प्रधान संस्कारों के अनुसार ही अगला जन्म, ऐसी जाति, देवता, मनुष्य पशु पक्षी आदि में होता है जिन में उन में कर्माशयों का फल भोगा जा सके और उतनी आयु देने वाले

होते हैं, जिस में निश्चित भोग समाप्त हो सके। उन्हीं कर्माशयों के अनुकूल उन का भोग नियत होता है। इस प्रधान कर्माशय से अगला जन्म, आयु तथा भोग नियत हो गया है, उस को नियत—विपाक कहत हैं। इसी को पतंजलि ने 'दृष्टजन्मवेदनीय कहा हैं'। (२.१२)

उपसर्जन कर्माशय जो अगले जन्मों में भोग्य है, पर अभी उन का फल नियत नहीं हुआ है, उन्हें 'अनियत विपाक' कहते हैं। इसी को योगसूत्र में 'अदृष्टजन्मवेदनीय' कहा जाता है। इन उपसर्जन कर्माशयों की, जो दवे पड़े हुए हैं, जिन का फल अभी निश्चित नहीं हुआ है अर्थात् जो अनियत विपाक वाले होते हैं, तीन प्रकार की गति होती है—

१ या तो वे बिना पके ही नियत विपाक को किञ्चित् न्यून (दुर्बल) करके स्वयं नष्ट हो जाते हैं। इस से यह नहीं समझना चाहिए कि वे बिना फल दिए ही नष्ट हो गए, किन्तु नियत—विपाक को कम (दुर्बल) करने में अपना फल दे चुके और नियत विपाक उन के नष्ट करने में उस अंक तक अपना फल दे चुका।

२ या व नियत विपाक के साथ ही हो जाते हैं और समय पाकर अपना फल देते रहते हैं।

३ या वे चित्तभूमि में वैसे ही दबे पड़े रहते हैं जब तक कि किसी जन्म में उन के फल देने का अवसर नहीं मिल जाता। जब कभी उन के जगाने वाले कर्माशय प्रधान होते हैं तो वे उस अभिव्यंजक को पाकर अपना फल देने के लिए जाग उठते हैं।

यह कहना भी यहां आवश्यक हो जाता है कि अवस्था भेद से कर्मों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। संचित, प्ररब्ध और क्रियमाण।

जो कर्म अनन्त जन्मों में किए गए हैं और अभी तक उन के भोग भोगने की वारी नहीं आई है, किन्तु केवल संस्कार रूपेण कर्माशय में हैं, उन्हें संचित कर्म कहते हैं।

कर्माशय में भरे हुए अनन्त कर्मों में से जिन थोड़े से कर्मों ने शरीर रूपी फल की उत्पत्ति कर दी है अर्थात् जिन का फल इस जन्म में हो रहा है, उन को प्रारब्धकर्म कहते हैं।

जिन नवीन कर्मों को संग्रह किया जाता हैं अर्थात् नवीन इच्छा से जो नवीन कर्म नवीन संस्कार उत्पन्न कर जाते हैं, वे क्रियमाण कहलाते हैं।

संचित कर्मों के संस्कारों को उपसर्जन, कर्माशय, अनियतविपाक और अदृष्टजन्मवेदनीय कहा गया है और प्रारब्ध कर्मों के संस्कारों को प्रधान कर्माशय, नियतविपाक और दृष्टजन्मवेदनी बतलाया गया है। क्रियमाण कर्मों के संस्कारों का वर्णन इस प्रकार हो सकता है या तो कुछ इन में से प्रारब्ध कर्मों के प्रधान कर्माशय के साथ मिल कर अपना फल देना आरम्भ कर देते हैं और कुछ संचित कर्मों के उपसर्जन कर्माशय के साथ मिल जाते हैं।

जैसा कि पहले कहा गया है मनोवृत्तियां अनन्त हैं। ये मनोवृत्तियां जब हिंसा, विषय भोग, मक्कारी, झूठ, अपवित्रता देश तथा कर्मद्रोह आदि दोषों से मिल कर होती हैं, तब वे मनुष्यत्व से नीची हैं। ये वृत्तियां नाना प्रकार के दोषों-काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि के न्यूनाधिक्य और तीन गुणों के परिणाम भेद से इतने प्रकार की हैं जितने प्रकार के पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जलचर आदि। पशु आदिकों की स्वाभाविक वृत्तियों और मनुष्य की इस प्रकार की वृत्तियों में कुछ अन्तर नहीं रहता। जिस अवस्था में मनुष्य में इस प्रकार की मनोवृत्तियां उदय होती हैं तो (मानो) वह सूक्ष्म शरीर से उन्हीं योनियों में होता है, यद्यपि स्थूल शरीर मनुष्य जैसा रहता है।

उदाहरणतया हिंसा और मांस भक्षण आदि क्रूरता का स्वभाव मनुष्यत्व के विपरीत धर्म हैं। हिंसकों के संसर्ग से जब किसी में यह दोष उत्पन्न हो जाए और किसी कारण से दूर या कम न हो, अपितु इस में प्रवृत्ति बराबर बढ़ती जाए तो उस का स्वभाव क्रूर और हिंसक हो जाएगा, क्योंकि कर्मों से संस्कार और संस्कारों से कर्म बनते रहते हैं। यदि यह क्रम बिना किसी रुकावट के चलता रहे तो एक सीमा पर पहुंच कर उस का सूक्ष्म शरीर उस की अन्य मनोवृत्तियों की विशेषताओं को सम्मिलित करके उस हिंसक पशु विशेष सदृश हो जाता है जिस में इस प्रकार की हिंसा के अन्तर्गत सर्वगुण होते हैं। ऐसे हिंसक और क्रूर मनुष्य के मुख के ऊपर खूंखारी टपकने लगती है। इस से यह प्रतीत होने लगता है कि

उस का स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर के आकार में परिणत होना आरम्भ हो गया है। स्वभावतः जहां कहीं भी वह मनुष्य जायगा, शिकार, हिंसा, मांस भक्षण आदि के साधन और सामग्री को चाहेगा। जब शरीर को छोड़ने का समय आएगा तो यही हिंसा से सम्बन्ध रखने वाले कर्माशय प्रधान रूप से जागेंगे और उस की सारी मनोवृत्तियों के अनुसार वैसी ही किसी हिंसक योनि में उस का अगला जन्म होगा और वैसी आयु तथा भोग होगा। कहावत भी है—अन्त समय जो मति सो गति—गीता भी इस बात का प्रमाण है—

यं यं वापि स्मरन्भाव त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
ते तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

(गीता ८।६)

अर्थात् वह मनुष्य अन्तकाल में जिस जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है उस उस भाव को ही प्राप्त होता है, सदा उस ही भाव को चिन्तन करता हुआ—

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्त कामयस्य कृतात्मवस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामा।।

(मुण्डक ३।२।२)

अर्थात् जो इच्छाओं को मन में रखता हुआ उनकी पूर्ति चाहता है, वह मनुष्य उन वासनाओं के अनुसार उत्पन्न होता है, पर जिस ने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है, उस पूर्ण हुए इच्छा वाले मनुष्य की समस्त कामनाएं इस शरीर में ही विलीन हो जाती है। एक हिंसक के उदाहरण को ही लीजिए। जहां किसी हिंसकयोनि में ऐसा गर्भ तय्यार होगा जिस में उसकी सारी वासनाओं की पूर्ति के सब साधन हों, वहीं यह अपना स्थान बना लेगा क्योंकि प्राकृतिक नियम यही है कि स्वभाव अपने सदृश स्वभाव की ओर ही आकृष्ट होता है। हिंसक-गर्भ अपने स्वभाव वाले सूक्ष्म शरीरों को अपनी ओर उसी प्रकार आकृष्ट कर लेते हैं जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी ओर खींचता है।

मानव को मांस, रुधिर आदि देख कर स्वाभाविक ग्लानि होती है, दूसरों की पीड़ा देखकर संवेदना होती है किन्तु हिंसा आदि मल का आवरण हृदय पर आ जाने से ईश्वर की यह आवाज सुनाई नहीं देती।

मानव योनि कर्म तथा भोग दोनों प्रकार की योनि है। इस योनि में संस्कार बनते भी हैं और मिटते भी हैं। दूसरी योनियां केवल भोग योनियां हैं उन में संस्कार बनते नहीं अपितु उनकी निवृत्ति होती है। विभिन्न मल को दूर करने के लिए नीचो योनियों में जाना होता है। इन योनियों में भविष्य के लिए संस्कार बनते नहीं अपितु गत हिंसा आदि के संस्कार समाप्त हो जाते हैं, तदनन्तर मनुष्ययोनि में पवित्र होकर आत्मोन्नति के लिए आता है। इस प्रकार मनुष्येतर योनियां अन्तःकरण के मल धोने का स्थान हैं। उदाहरणतया हिंसक यदि मनुष्य योनि में फिर से आ जाए तो पिछले कर्माशय से दबा हुआ हिंसा के कार्य करता रहेगा और उन से उसी प्रकार के संस्कार बनते रहेंगे। यह क्रम सदैव जारी रहेगा और वह अपने वास्तविक कल्याण से वंचित रहेगा। स्वरक्षाहेतु यदि किसी को शस्त्र दिया गया हो और पागलपन की अवस्था में वह अपने ही शरीर को घायल करने लगे तो उचित यही हाता है कि पागलपन से छुटकारा पाने तक उस से वह शस्त्र छीन ही लिया जाए। इस प्रकार मानवशरीर आत्मोन्नति प्राप्त करके आत्म-साक्षात्कार से लाभन्वित होने के लिए है।

जिस प्रकार एक अनजान बालक अपने शरीर को हर प्रकार की गन्द में सान लेने में झिझकता नहीं और माता नल के पास ले जाकर पानी से धोती है, ठीक इसी प्रकार कल्याणकारिणी प्रकृति माता अपने पुत्रों के इन मलों को विभिन्न योनियों में धोती है।

प्रत्येक मानव अपनी इच्छा की पूर्ति में ही सुख समझता है और इस प्रकार ईश्वर के पूर्ण ज्ञान वाले नियम उनकी इच्छाओं के अनुसार योनियों में भेज कर उनकी इच्छा पूर्ति करते हैं। इस प्रकार सब गन्द धुल जाने के बाद मनुष्य को फिर उन्नति करने का सुअवसर मिलता है।

हर प्राणी को उसके कर्मानुसार फल मिलने में ईश्वर की न्यायकारिता छिपी है। ईश्वर की सर्वज्ञता भी इस से स्पष्ट है—घड़ी के चलाने में जिस प्रकार सब यन्त्र कार्य करते हैं, इसी प्रकार जगत् रूपी घड़ी के चलाने में सब शरीरधारी अपने अपने स्थान पर कुछ न कुछ कार्य करते रहते हैं।

जाति, आयु और भोग में पाप और पुण्य के अनुसार सुख दुःख मिलता

है। जाति, आयु और भोग सुख दुःख रूपी फल के देने वाले होते हैं क्योंकि उनके कारण पुण्य और पाप हैं।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।।१४।।

(साधनपाद, १० यो०)

दूसरों को सुख पहुंचाने वाले कर्मों से जाति, आयु और भोग में सुख मिलता है। दूसरों को दुःख पहुंचाने वाले कर्मों से दुःख मिलता है। दूसरे प्राणियों के कल्याणार्थ किए हुए निस्वार्थ कार्य जब प्राणियों की यथार्थ भलाई और सुख पहुंचाने की मनोवृत्ति से किया जाता है, तब वे कर्त्ता को सुख पहुंचाने का कारण होते हैं और जब वे स्वार्थवश दूसरे प्राणियों को काम, क्रोध, लोभ, मोहादि से दुःख देने की मनोवृत्ति से किए जाते हैं तब वे करने वाले को दुःख का कारण होते हैं। यही कारण है कि सर्व योनियों में सुख दुःख दूसरों को दिये जाते हैं, उनका फल सुख दुःख अवश्य मिलता है चाहे इस योनि में अथवा दूसरी योनियों में। सुख दुःख पहुंचाने वाले कर्मों में भी मनोवृत्तियां ही कारण होती हैं। वैद्य उपचार करने के लिए किसी को भूखा रखता है तो इस से वैद्य के चित्त में सुख पाने के कर्माशय बनते हैं, यदि कोई उसी मनुष्य को दुःख देने के लिए भूखा रखता है तो उस के चित्त में दुःख पाने के कर्माशय बनते हैं। अकर्म में भी कर्म होता है और कर्म में भी अकर्म होता है।

जो पुरुष कर्म में अर्थात् अहंकार रहित अनासक्त भाव से की हुई सम्पूर्ण चेष्टाओं में अकर्म अर्थात् वास्तव में उनका न होना देखे और जो पुरुष अकर्म में भी कर्म के अर्थात् अज्ञानी पुरुष द्वारा किए सम्पूर्ण क्रियाओं के त्याग में भी त्याग रूप क्रिया को देखे, वह पुरुष मनुष्यों में बुद्धिमान है, और वह योगी सम्पूर्ण कर्मों का करने वाला है। जिस के सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं, ऐसे उस ज्ञान रूप अग्नि द्वारा भस्म हुए कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानी जन पण्डित कहते हैं। जो पुरुष सांसारिक आश्रय से रहित सदा परमानन्द परमात्मा में तृप्त है वह कर्मों के फल और सङ्ग अर्थात् कर्तृत्व अभिमान को त्याग कर कर्म में अच्छी प्रकार बर्तता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है।

(गीता ४।१८।२०)

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ।। (४।१८)

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः । (४।१९)
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मन्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ।। (४।२०)

संक्षेपतया कर्मसिद्धान्त का यही सार है कि कोई कर्म भी किसी को दुःख देने की वृत्ति से न किया जाय—"मा हिंस्यात्सर्वभूतानि ।" वास्तव में न कोई किसी को सुख दे सकता है न दुःख पहुंचाने की नीयत से कर्म करके अपने अन्दर सुख दुःख पाने के कर्माशय एकत्र करता है।

यही कर्म सिद्धान्त दूसरे शब्दों में भाग्य कहलाता है। अपने पति के विरह में उदास दमयन्ती वन में यही सोचती है कि मन, वचन और कर्म से उसने कभी भी कोई बुरा कार्य नहीं किया था, न मालूम यह किस कर्म का फल है।

अहो ममोपरि विधेः संरम्भो दारुणो महान् ।
नानुबध्नाति कुशलं कस्येदं कर्मणः फलम् ।। ३१ ।।
न स्मराम्यशुभं किंचित् कृतं कस्यचिदपि ।
कर्मणा मनसा वाचा कस्येदं कर्मणः फलम् ।। ३२ ।।
(वनपर्व अध्याय ६५)

राज्याभिषेक की तय्यारी में संलग्न राम को जब बनवास दिया जाता है तो लक्ष्मण उग्र रूप धारण कर लेता है। राम लक्ष्मण को समझाता है कि यह सब भाग्य की ही करनी है, कैकेयी एक निमित्त मात्र बनी है।

न लक्ष्मणास्मिन् खलुकर्मविघ्ने मातायवीयस्याति शङ्कनीया ।
दैवाभिपन्नाहि वदत्यनिष्टं जानासि दैवे च तथा प्रभावम् ।।३०।।
(रामायण, अयोध्याकाण्डम्, २२ सर्ग)

दशरथ का अपने प्राणप्रिय राम से वियुक्त होना तथा तदुपरान्त मृत्यु का कारण भी, दशरथ का युवावस्था में श्रवण कुमार को मृग समझ कर मार देना तथा उस के अन्धे माता पिता को एक मात्र सहारे से अलग कर देना एवं तत्फलस्वरूप शोकाकुल श्रवण कुमार के पिता के अभिशप्त वचन—'जाओ, तुम भी बुढ़ापे में अपने प्रिय पुत्र के वियोग में प्राण छोड़ दो' ही है। (अयोध्याकाण्ड ३, सर्ग ६४।१।६०)

राम और सीता के वियोग का कारण राम का पूर्व जन्म का ही कारण है। राक्षसों और देवताओं में पारस्परिक द्वन्द्व के कारण दैत्य भृगुपत्नी के शरण में गए और उन्हें शरणागति प्राप्त भी हुई। भगवान् विष्णु ने क्रुद्ध होकर भृगुपत्नी का सिर काट लिया। भृगु ने शोकसन्तप्त हो कर विष्णु भगवान् को अभिशाप दिया—आप ने क्रोध के वशीभूत होकर मेरी पत्नी को मार दिया और इस के परिणामस्वश आप मर्त्यजगत् में जन्म लेकर बहुत काल पर्यन्त अपनी पत्नी के वियोग में दिन बिताएंगे। इस अभिशाप के बाद भृगुमहर्षि स्वयं अपने शाप के वचनों पर पश्चाताप करते रहे और भगवान् विष्णु की आराधना की। विष्णु भगवान ने उत्तर दिया—'महर्षि! दुःख का कोई कारण नहीं! मैं मानव जगत् में लोक हित के लिए जन्म लूंगा।' इस प्रकार भगवान राम भी अपनी करनी के आधीन हो कर मर्त्य जगत् में आकर सीता से वियुक्त हो कर बहुत दिन रहे।

इति शप्तो महातेजा भृगुणा पूर्वजन्मनि ॥ १८ ॥

(उत्तरकाण्ड सर्ग ५२)

संक्षेपतया कर्म सिद्धांत का सार यही है कि दूसरों का बुरा सोचना एवं करना अपना ही बुरा सोचना एवं करना है तथा दूसरों का भला चाहना एवं करना अपना ही भला चाहना एवं करना है। जिन परिस्थितियों में आज हम अपने को पाते हैं, उस का उत्तरदायित्व हमारे ही ऊपर है, यह अपने किए हुए कर्मों का ही फल हम भोग रहे हैं, जैसा हम आज कर रहे हैं, वैसा हमारा भविष्य बनेगा।

●

गुरु नानक–एक अध्ययन

भुवनपति शर्मा

भूमिका

गुरु नानक असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी थे उन में पैगम्बर, दार्शनिक, राजयोगी गृहस्थ, त्यागी, धर्म सुधारक समाज सुधारक, कवि, संगीतज्ञ देश भक्त और विश्व प्रेमी के सभी गुण विद्यमान थे। वे महापुरुषों की उस परम्परा से सम्बन्ध रखते हैं जिनका जन्म किसी नष्ट हो रही जाति को पुनरुज्जीवित करने के लिए होता है—भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा जो है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

हे अर्जुन, जब जब धर्म कमजोर हो जाता है अधर्म बढ़ जाता है, तो मैं धर्म की रक्षा के लिए अवतार लेता हूं। भले लोगों की सहायता और दुष्टों का नाश करने के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए बार बार हर युग में जन्म लेता हूं। तो यह ठीक ही था कि १५वीं शताब्दी में जब देश पर आक्रमण हो रहे थे और लोग शासकों के क्रूर अत्याचारों से पिस रहे थे, समाज का बौद्धिक और आर्थिक पतन हो चुका था चतुर्दिक रिश्वत का बोल बाला था, भ्रष्टाचार और स्वार्थ प्रियता से समाज का नैतिक व मानसिक पतन हो चुका था, शासक विलासता के मद से अन्धे थे सत्ता के नशे में चूर थे और जैसा गुरु नानक कहते हैं

कि राजा भेड़ियों की तरह और राज कर्मचारी कुत्तों की तरह थे। युग तलवार की धार की तरह था राजे कसाई हो गये थे धर्म पंख लगाकर उड़ गया था और अज्ञान के भयानक अन्धकार में सत्य का चन्द्रमा कहां चढ़ रहा है कुछ पता नहीं लगता था :—

कल काती राजै कसाई धर्म पंख कर उडरिया,
कूड़ अमावस सच चंदरमा दीसै नाही कहं चड़िया ।

(माझे की वार सलोकु ३५)

तो स्वाभाविक ही था इस प्रकार के भयानक वातावरण में भगवान किसी महापुरुष को जन्म लेने भेजते और अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करते इसलिए उन्होंने गुरु नानक को भेजा कि वे अज्ञानाधकार में भटक रहे लोगों को ठीक रास्ता बता सकें। उन्होंने यह काम इतनी सुन्दरता से किया कि वे हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर हो गये। कहते भी हैं :—

गुरु नानक शाह फकीर हिन्दु का गुरु मुसलमान का पीर ।

गुरु नानक ने यह श्रद्धा कैसे अर्जित की इसका उत्तर उनके जीवन का विहंगम अवलोकन करने से मिल सकता है और जैसे कहावत भी है—"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" .गुरु नानक भी जो कुछ वे बाद में बने अपने बाल्यकाल में ही उस प्रकार की प्रवृत्तियां दिखाने लगे थे।

बाल्यकाल

गुरु नानक का जन्म १५ अप्रैल १४६९ को तलवंडी नामक स्थान में हुआ था। आजकल यह स्थान पाकिस्तान में है और गुरु नानक के नाम पर इसे ननकाना साहिब कहते हैं। इनके जीवन के विषय में जानकारी भाई गुरदास की वार पुरातन जन्म साखी और मेहरबान जन्म साखी के आधार पर मिलती है। उनकी जन्म तिथि भी कार्तिक और वैशाख दो मासों में मानी जाती है। इनके आधार पर दो दिन बनते हैं १५ अप्रैल और २० अक्तूबर। १५ अप्रैल ही उनकी सर्वमान्य जन्म तिथि मानी गई है हालांकि सुविधा के लिए गुरु नानक का जन्म उत्सव कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है। तलवण्डी लाहौर ज़िले में लाहौर शहर से ३० मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है।

गुरु नानक के पिता का नाम कालू चन्द और माता का नाम तृप्ता देवी था। कालूचन्द जी खत्री थे और वेदी वंश के थे। वे कृषि और साधारण व्यापार करते थे और गांव के पटवारी थे। गुरु नानक बचपन में गांव में ही रहे और बाल्यावस्था में ही उन में असाधारणता थी। वे कहते थे कि अगर तुम कोई नया खेल खेलना चाहते हो तो मन ही मन सत्य करतार कहते रहो और आंखें बन्द करके आत्म चिंतन में लीन हो जाते। सात साल की आयु में वे पढ़ने के लिये पंडित गोपाल पाठक जी के पास भेजे गये। एक दिन जब वे आत्म-चिंतन में मग्न थे तो गुरू ने पूछा पढ़ क्यों नहीं रहे हो? गुरु नानक ने कहा आप मुझे क्या पढ़ा सकते हैं? अध्यापक ने कहा, मैं वेद शास्त्र और सब विद्याएं जानता हूं और पढ़ा सकता हूं। गुरु नानक ने कहा मुझे तो सांसारिक पढ़ाई से परमात्मा की पढ़ाई अधिक आनंद देती है और यह बात कही :—

जल मोह घस मसु करि मत कागद कर सार।
मन कलम कर चित लेखारी गुरु पुछि लिख वीचारु,
लिख नाम सालाह लिख लिख अन्त न पारा वार।

अर्थात—मोह को जलाकर उसे घिस कर स्याही बनाओ, बुद्धि को श्रेष्ठ कागद बनाओ प्रेम की कलम बनाओ और चित्त को लेखक। गुरु से पूछ कर विचार पूर्वक लिखो राम नाम की लिखो नाम की स्तुति लिखो और यह भी लिखो कि उस परमात्मा का न तो अन्त है और न ही सीमा है। अध्यापक आश्चर्य चकित हो गये और गुरु नानक को पहुंचा हुआ फकीर मान कर बोले तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो। गुरु नानक ने पंडित बृज लाल से संस्कृत और मौलवी कुतबुद्दीन से फारसी भी पढ़ी।

इस घटना के बाद गुरु नानक ने स्कूल छोड़ दिया। वे अपना सारा समय मनन, ध्यान और सत्संग में लगाने लगे उनकी सभी जन्म साखियां इस बात की पुष्टि करती हैं कि उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के साधु महात्माओं का सत्संग किया था। उनकी इस अन्तर्मुखी प्रवृत्ति से उनके पिता चिन्तित रहा करते थे गुरु नानक को पागल समझ कर उन के पिता ने उन्हें भैंसें चराने का काम सौंपा। एक दिन वे भैंसें चराते चराते सो गये तो कहते हैं कि एक सर्प ने आ कर उन पर अपने फन की छाया की और धूप से रक्षा की इस बीच भैंसें खेत चर गईं।

किसान ने आकर देखा तो जाकर इनके पिता जी से शिकायत की पर कहते हैं कि जब लोगों ने आकर देखा तो खेत पुनः हरा भरा था।

९ वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। इस अवसर पर उन्होंने कहा "दइया कपाह सन्तोख सतु जन गंढी सत वट एह जनेह जीअका हई ता पांडे धत, ना एह तुटै मल न" लगे नां एहु जले न जाई।

(गुरु ग्रन्थ साहब आसा की बार महला १ पृ० ४७१)

अर्थात् दया कपास हो, सन्तोष सूत हो संयम गांठ हो और सत्य उस जनेऊ की पूरन हो यही जीव के लिए अध्यात्मिक जनेऊ है। पण्डित जी अगर इस प्रकार का यज्ञोपवीत आपके पास हो तो मेरे गले में पहना दो यह जनेऊ न तो टूटता है और न इस में मैल लगता है न यह जलता है और न ही यह गुम होता है।

इस प्रकार की प्रवृत्ति देख कर उनके पिता जी ने उनका विवाह करवा दिया कि गृहस्थ धर्म में बंध कर शायद वह सांसारिकता की ओर लग जाये। उनका विवाह सन् १४८५ में बटाला निवासी मूला जी की कन्या सुलखनी देवी से हुआ और उन से दो पुत्र भी उत्पन्न हुए मगर गुरु नानक संसार में रह कर भी संसार से विरक्त रहे। बड़े पुत्र श्री चन्द के जन्म के समय उनकी आयु २८ वर्ष थी और ३१ वर्ष की आयु में दूसरे लड़के लक्ष्मीदास अथवा लक्ष्मीचन्द का जन्म हुआ। गुरु नानक ने इसीलिए संसार से भागने की बात नहीं कही। उन्होंने कहा संसार मे भागो मत-संसार को बदलो। वे यह मानते थे कि गृहस्थी में ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है। वे कहते हैं :—

घाला खाय किछु हत्थहु देहि,
नानक राह पछानहि सोई।

अर्थात् परिश्रम द्वारा जो कमाकर खाता है और अपने हाथ से धर्म कार्यों के लिए दान देता है नानक कहते हैं वही सच्चा मार्ग पहचानता है। तभी उन्होंने संदेश दिया था किरत करो, राम जपो और वंड चखो। किरत करो अर्थात परिश्रम करो, नाम जपो अर्थात भगवान की स्तुति करो और वंड चखो अर्थात इकट्ठे खाओ। इस प्रकार की बातें देखकर उनके पिता ने उन्हें कृषि-व्यापार में लगाना चाहा। घोड़े के व्यापार

के लिए दिये गये रुपयों को नानक ने साधु सेवा में लगा दिया और पिता जी को कहा यही सच्चा सौदा है। खेत की रक्षा करने के लिए उन्हें कहा गया तो चिड़ियों के आने पर बोले राम जी की चिडिया राम जी का खेत खाओ नीं चिड़ियो भर भर पेट। इसके बाद नवम्बर १५०४ में उनके बहनोई जयराम ने उन्हें अपने पास सुलतानपुर बुलवा लिया और अक्तूबर १५०७ तक वह सुलतानपुर में ही रहे वहां उन्होंने मोदी खाने में काम भी किया और उसी समय की घटना कहते हैं कि तोलते समय जब तेरह आया तो तेरह तेरह करते हुए सारा अनाज तोल दिया। वे अपनी अधिकांश आय गरीबों और साथियों पर व्यय करते थे।

गुरु नानक नित्य प्रति बेई नदी में स्नान करने जाया करते थे एक दिन स्नान करने के बाद में वे बन में अन्तरध्यान हो गये और कहते हैं वहां उन्होंने भगवान से साक्षात् किया। परमात्मा ने उन्हें अमृत पिलाया और कहा कि मैं सदा तुम्हारे साथ हूं मैंने तुम्हें आनंदित किया है जो तुम्हारे सम्पर्क में आयेंगे वे भी आनंदित होंगे। जाओ नाम लो, उपासना करो और दूसरों से भी नाम स्मरण कराओ। अपने धर्म ग्रन्थों में आता है कि कलियुग में नाम स्मरण ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है। गुरु नानक ने इसी नाम धर्म का प्रचार किया और अपने परिवार का भार अपने श्वसुर मला जी को सौंप कर यात्रा करने निकल पड़े और धर्म का प्रचार करने लगे।

यात्रा विवरण

उन की पहली उदासी (विचारण यात्रा) अक्तूबर १५०७ से १५१५ तक रही। इस यात्रा में उन्होंने हरिद्वार, आयोध्या, प्रयाग, काशी गया पटना असम, पुरी, रामेश्वर, सोमनाथ, द्वारिका, नर्मदा तट, बीकानेर, पुष्कर, दिल्ली, पानी पत कुरुक्षेत्र, मुलतान और लाहौर आदि स्थानों का भ्रमण किया। इस यात्रा में वे गरीब और नीच लोगों के घरों में ठहरे। भाई लालो जैसे परिश्रमी लोगों से सम्पर्क किया और मलिक भागो जैसे अत्याचारियों का हृदय परिवर्तन किया। यह पूछे जाने पर कि वे उच्च जाति के हो कर भी नीच लोगों में क्या ठहरते हैं उन्होंने उत्तर दिया—

"नीचा अदरि नीच जाति नीचीहु अति नीच
नानक तिनके संग साथ वडयां सु क्या रीस।
जित्थे नीच समालियन तित्थे नदरि तेरी बख्शीश।"

नीचों के अन्दर भी जो नीच है उन नीचों में भी जो नीच है, नानक उन के संग है। उसे बड़ी जात वालों, कुलीनों से कुछ लेना देना नहीं है, परमेश्वर की बख्शीश भरी दृष्टि वहीं पड़ती है जहां नीचों को संभाला जाता है। इस प्रकार उन का समाज सुधारक रूप बड़ी प्रबलता से उभरता है। उन्होंने नीच समझे जाने वाले लोगों और स्त्रियों के प्रति समाज की धारणा को बदला। ठगों को साधु बनाया। वैश्याओं का सुधार किया। कर्म काण्डियों को बाहयाडंबरों से हटा कर रागात्मिका भक्ति में लगाया। अहकारियों का अहंकार दूर किया और मानवता का पाठ पढ़ाया। यात्रा से लौट कर वे दो साल अपने माता पिता के साथ रहे। उन की दूसरी उदासी १५१७ से १५१८ तक एक साल रही। इस में वे ऐमनाबाद, सियालकोट और सुमेर पर्वत की यात्रा करते हुए अन्त में करतार पुर पहुंचे। तीसरी यात्रा १५१८ से १५२१ तक लगभग तीन वर्ष रही। इस में उन्होंने बहावलपुर, साधुबेला, मक्का मदीना, बगदाद, बलख, बुखारा, काबल कंधार और ऐमनाबाद की यात्रा की और ऐमनाबाद पर हुए बाबर के आक्रमण को अपनी आंखों से देखा। उन की चौथी यात्रा एक साल तक रही जिस में उन्होंने पंजाब प्रदेश में ही भ्रमण किया। कुछ लोगों के विचार में उन्होंने पांच यात्राएं की और कुछ चार ही मानते हैं।

अपनी, यात्राओं को समाप्त कर वे करतारपुर में बस गये और १५३९ तक वहां ही रहे। इन यात्राओं में उन्होंने अन्ध-विश्वासों पर करारे प्रहार किये। गंगा के किनारे लोगों को सूर्य को जल अपर्ण करते देख आप पश्चिम की ओर अपने खेतों में पानी देने लगे लोगों ने कहा तो बोले कि जब आप का दिया पानी सूर्य लोक में पितरों तक पहुंच सकता है तो मेरा दिया पानी कुछ सौ मील दूर पंजाब में मेरे खेतों में क्यों नहीं पहुंचेगा। इसी प्रकार मक्का गये तो वहां मस्जिद की ओर पैर करके सो गये! काजियों ने पूछा तो कहने लगे जिधर खुदा का घर न हो उधर मेरे पैर कर दो और जिधर-जिधर उन के पैर किये गये काबा उधर-उधर ही घूमता गया। गुरु नानक का सन्देश था कि तृष्णा को त्याग कर नाम स्मरण करना चाहिए। एक बार एक काजी ने उन्हें कहा आप नमाज नहीं पढ़ते गुरु नानक बोले पढ़ता हूं। काजी ने कहा आप हमारे साथ आइये और नमाज पढ़िये। वे गये। काजी तो नमाज पढ़ता

रहा और वे खड़े मुस्कराते रहे। काजी ने नमाज पढ़ कर पूछा क्या बात है उन्होंने कहा सोच रहे हो बछड़ा खुला रह गया है और मुंह से नमाज बोलते हो। मैं तो पांच नमाजें पढ़ता हूं। पहली सत्य की दूसरी ईमानदारी से जीवन व्यतीत करने की, तीसरी स्नेह की, चौथी लोगों की भलाई की और पांचवी नाम स्मरण की। काजी चुप रह गया। हरिद्वार में उन्होंने देखा वैरागी और सन्यासी आपस में लड़ रहे थे कि श्रेष्ठ कौन है, गुरु नानक ने कहा श्रेष्ठ वह है जो प्रेम से भगवान का स्मरण करता है।

नारी के प्रति गुरु नानक का दृष्टिकोण

गुरु नानक ने कहा—

> भंडि होवे दौसती भंडहु चले राहु
>
> भंड मुआ भुंडु मालिये घंडि होवे बन्धानु।
>
> सो किऊ मंदा आखिये जितु जमहि राजानु।

उन्होंने कहा कि स्त्री से ही मनुष्य जन्म लेता है उसके उदर से ही मनुष्य का शरीर निर्माण होता है। स्त्री द्वारा ही लोगों से सम्बन्ध कटता और जुड़ता है। एक स्त्री के मरने पर दूसरी की खोज की जाती है और स्त्री ही हमें सामाजिक बन्धनों में रखती है तो उस स्त्री जाति को बुरा क्यों कहा जाये जो बड़े से बड़े राजाओं को जन्म देती है, संसार में कोई मानव स्त्री के बिना उत्पन्न नहीं हुआ। केवल भगवान ही अयोनि है। आसा की वार के श्लोक ४१ में यह विचार व्यक्त किये गये हैं। इस प्रकार की मर्मस्पर्शी उक्तियों से स्त्री के माध्यम से समाज की जीवन रक्षा का स्पष्ट बोध गुरु नानक देते हैं।

गुरु नानक ने मरदाना को भाई कहा और उस के साथ-साथ ही रहे। गुरु जी ने विदेहराज जनक के ही समान गृहस्थ और सन्यास को मिला दिया और अपना उदाहरण सामने रख कर लोगों को सादा जीवन, उच्च विचार का सन्देश दिया। उन्होंने गीता धर्म का प्रसार किया और लोगों को धन और जीवन से निर्लिप्त रहने का सन्देश दिया। गीता में आता है :

> **सुखदुः खेसमेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**
>
> **ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।** (२।३८)

एषा ते भिहिता सांख्ये बुद्धियोऽगे त्विमां श्रुणु
बुद्धयायुक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ।। (२।६९)

गुरु नानक ने कहा—जो नर सुख में दुख नहीं माने—

सुख सनेह भह नाही जाके कंचन माट्टी जाने
नही निंदा नही अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना
हर्ष लोभ ते रहे नियारा नहीं मान अपमाना
आसा मनसा सकल त्यागि के जगते रहें निराला
काम क्रोध जेही परसे नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा
गुरु क्रिरपा जेहि नर पे कीनही तिन यम जुगति पिछानी
नानक लीन भयो गोविंद सों जयों पानी संग पानी

गुरु नानक ने सब कहीं एक करतार को स्मरण रखने का आदेश दिया। वे कहा करते थे हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोई। इस में कबीर के 'बुरा जो देखन में चला बुरा न मिलयो कोय' की छाप स्पष्ट है। उन्होंने भक्ति भावना की एक ऐसी रागात्मक मंदाकिनी प्रवाहित की कि उस में संकीर्णता और धर्मान्धता बह गई। लोक-मंगल की भावना उन की वाणी में साकार हो उठी। उन्होंने परम्परा से चली आ रही कुरीतियों का विरोध किया और व्यवहारिक जीवन का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में सफल रहे।

गुरु नानक की वाणी जपुजी सिद्ध गोसिट वार काव्य (आसा माझ, मलार राग) बाबर वाणी, अलाहुणीया छंन्द आदि में जहां दार्शनिकता है वहां यथार्थवादी चित्रण तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों का भी बड़ी ही मार्मिकता से किया गया है। उन की वाणी में जितनी राष्ट्रीयता है उतनी ही नीतिकाव्य के अन्तर्गत जीवन की यथार्थता से परिचित कराते हुई आध्यात्मिकता की भूख को मिटाती है और भौतिकता का चित्रण करते हुए निश्रेयस की ओर ले जाती है। वे मानवता को शिवं का संदेश देते हैं, यथार्थवादी होने के नाते सत्यं का भोग करते हैं और अपनी रागात्मक एवं संगीतमय स्वर लहरी के कारण सुन्दरं से अलंकृत हैं। संवेदनशीलता उन की वाणी का शरीर है और सच्चाई की कटुता और यथातथ्यता उस का प्राण है। नैतिकता उस का संबल है और वह समकालीन आचार व्यवहार के दर्पण रूप में व्यंग्य चित्रों के माध्यम

से युग के लिए प्रकाश स्तम्भ बन चुकी है। गुरु नानक निराशा के घोर अन्धकार में आशा की किरण बन कर अपनी आध्यात्मिक शक्ति को लोकजागरण की ओर लगाते हैं। एक पंक्ति में गुरु नानक की वाणी युग दर्शन को प्रस्तुत करने वाले प्रतिनिधि कवि की वाणी है।

गुरु नानक ने मूर्तिपूजा का विरोध करके एकेश्वरवाद का प्रसार किया। यह इस बात का द्योतक है कि वह सब धर्मों की अच्छी बातों को ले लेने के लिए प्रस्तुत थे जैसे कुरान की एक आयत में कहा भी है:

अल्लहुलाउ इलाह इल्ला हुवल हुलस्मा उलहुस्ना

कि केवल अल्लाह की अर्चनीय है और सब अच्छे नाम उसी के हैं। गुरु नानक ने भी इसी बात से गुरु ग्रंथ साहब का प्रारम्भ किया। एक ओंकार सतनाम करतार पुरख निरभऊ निरवैरु अकाल भूरति अयूनी सैभं गुरु प्रसादि।

भगवान एक है वह सर्वोच्च सत्य है वह रचियता है वह भय और घृणा से परे है, वह सर्वव्यापी और जन्म मरण से परे है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दू और इस्लाम धर्मों के बीच एक अद्भुत समन्वय स्थापित किया। गुरु नानक मानते थे कि गुरु के बिना मोक्ष प्राप्ति असम्भव है। वे कहते हैं "ईश्वर संसार में है पर संसारिकता से दूर है।" उन का एक भजन है कि धर्म के दर्शन योगी के वस्त्रों, तिलक या शरीर पर पुती भस्म या कुण्डलों में नहीं होते। अगर आप सच्चे धर्म के दर्शन करना चाहते हैं तो संसार की कलुषता में भी रह कर उस से दूर रहिए। देखिए :—

बाहरि भसम लेपन करे अंतरि गुबारी
खिथा झोली बहु भेख करे दुरमति अहंकारी
साहिब सबद न ऊचरै माया मोह पसारी
अन्तरि लालच भरम है भरमें गावारी
नानक नानु न चेतई जूए बाजी हारी।

गुरु नानक साधना का मार्ग पांच सोपानों से बताते थे। इन सोपानों को उन्होंने धरम खंड, ज्ञान खंड, सरम खंड, करम खंड और सच खंड का नाम दिया और इन के माध्यम से नाम धर्म का प्रसार किया। उन के शिष्यों में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। इन के गुरु मौलवी

मुहम्मद हसन जिन्होंने इन्हें फारसी पढ़ाई थी इन के पहले शिष्य बने बचपन में गुरु नानक से अलिफ का अर्थ पूछा —जब वह चुप रहे तो उन्होंने बताया कि अलिफ का मतलब है—"अल्लाह को याद कर।" इस के बाद राम बुलार, नवाव दौलत खां और सिकन्दर लोधी, नवाव फैज तलब खां, शेख ब्रह्म और शाह शरफ तथा पीर बहाउद्दीन जैसे लोग भी इनेक शिष्य बने। पीर बहाउद्दीन जी मुलतान के थे उन्होंने गुरु नानक को दूध से लबालब भरा एक कटोरा भेजा। अभिप्राय यह था कि मुलतान में आगे ही बहुत फकीर हैं। गुरु नानक ने कटोरा लेकर उस पर चमेली का फूल रख कर लौटा दिया और उन्हें समझाया कि जिस प्रकार फूल का भार नहीं होता और वह ऊपर तैरता है मैं भी उसी तरह आप के बीच रहूंगा और केवल महक का ही भार डालूंगा। इस के बाद पीर, करतार पुर की ओर मुंह करके नमाज पढ़ने लगे क्योंकि उन्हें गुरु नानक में भी रोशनी दिखाई दी थी। गुरु नानक ने स्वयं को भगवान राम के कुल का माना और नाम स्मरण को असार संसार से तरने का एक मात्र माध्यम। वे कहते थे :—

संग सखा सब तज गये कोउ न निवहो साथ।
कहो नानक तब विपत में टेक एक रघुनाथ।

वे पूतना के संहारक कृष्ण को अपना आदर्श मानते और उन्हें भगवान, मानते थे। उन्होंने कहा भी है :—

एक कृष्णं सर्व देवा देव देवात आत्मा
आत्मं श्रीवासुदेवस्य जे को जानस मेव
नानक ताका दास है सोई निरंजन देव
आपे गोपी आपे कान्हा आपे गऊ चरावे बाना
आप उपावै आप खपावै तुध लेंप नहीं इक तिहा रंगा।

उन्होंने मास, मदिरा, तम्बाकू, भांग आदि का प्रबल विरोध किया और इन मादक वस्तुओं को ईश्वर भक्ति और मोक्ष में बाधक माना उन्होंने कहा :—

जो को इवादत बंदगी उस नूं मांस न पाक,
समना अंदर रमरेया हरदम साहुब आप।

उन्होंने कहा कि यह भांग और मदिरा की खुमारी एक रात की होती

है हम तो नाम का नशा पीते हैं जो कभी न उतरे।

भांग तम्बाकू धतूरा, उतर जाय परभात
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।

उन्होंने किसान, व्यापारी, दुकानदार और सैनिकों को आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने का सन्देश दिया और बताया कि वे ऐसा कैसे कर सकते हैं :—

किसान को कहा—

मनुहाली किरसानी करणी सरम पाणी तन खेत
नामू बीज संतोख सुहागा रख गरीबां वेस।
भाऊ कर्म करि जमसी सो धन भागरु देखू।

गुरु नानक ने नाम सिमरण की महानता सब को समझाई और बताया कि सांसारिक कौन होता है :—

सो ग्राही जो निग्रह करे जपतप संजम विग्राख्या करे
पुन दान का करे सरीर सो ग्राही गंगा का नीर।

अर्थात इच्छाओं पर काबू पा कर भक्ति, तपस्या और निग्रह ही परमात्मा से मांगे वही सत्य निग्रही गंगा की तरह पवित्र है। श्रम की महत्ता बताते हुए गुरू जी ने कहा कि इमानदारी और यहां किये हुए दान का फल आगे मिलेगा।

घा खाए किछ हथों देह नानक राह पछाने से
नानक आगै सो मिले जो खट्टे थल्ले दे।

वे दूसरों के अधिकारों को छीनने के बिरुद्ध थे और उन्होंने मलिक भागो का स्वादिष्ट भोजन छोड़ कर भाई लालो का रूखा भोजन स्वीकार किया। वे कहते थे :—

हक्क पराया नानका उस सुअर उस गाय।

कि दूसरे का हक्क लेना मुसलमान के लिए सुअर और हिन्दू के लिए गाय के मांस के समान है।

समस्त जगत एक अकाल पुरुख की सत्ता है और विवाद और द्वेष छोड़ कर आडम्बरों को त्याग कर सचाई से उसे स्मरण करना चाहिए। इस आधार पर व्यवहारिक एकत्व का महान आदर्श उन्होंने उपस्थित

किया। गुरू नानक ने एकत्व, मातृत्व सेवा और सादगी सिखाई और आत्म संयम, आत्मालोचन एवं अन्तर्मुखी होने की प्रेरणा दी। गुरु गद्दी का भार गुरु अंगद देव (बाबा लेहना) को सौंप कर वे करतारपुर में ज्योतिलीन हुए। उन में विचार शक्ति और क्रिया शक्ति का अद्भुत समन्वय था। उनकी रचनाएं (श्री गुरु ग्रन्थ साहब में) महला एक के नाम से संकलित हैं।

गुरु नानक की शिक्षाओं का मूल निचोड़ यही है कि परमात्मा एक अनंत अनादि, सर्वशक्तिमान, सत्यकर्ता निर्भय, निरवैर, अयोनी और स्वयंभू है। सर्व व्याप्त है। मूर्ति पूजा और कर्म कांड निरर्थक है। भगवान को वाह्य साधना से प्राप्त नहीं किया जा सकता। आन्तरिक साधना ही उसकी प्राप्ति का एकमात्र माध्यम है। गुरु कृपा, भगवन कृपा और शुभ आचरण इस साधना के अंग हैं। नाम स्मरण उसका सर्वोपरि तत्त्व है और नाम गुरु द्वारा ही प्राप्त होता है।

गुरु नानक की वाणी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से ओत प्रोत है। उन्होंने हिन्दुओं को सच्चे हिन्दू और मुसलमानों को सच्चे मुसलमान बनने का मार्ग दिखाया। उन्होंने स्त्रियों की निन्दा नहीं की अपितु उनकी महत्ता स्वीकार की। गुरु नानक की कविता में प्रकृति का सुन्दर चित्रण भी मिलता है। तुखारी राग के बारह मासा में प्रत्येक मास का हृदयग्राही वर्णन किया गया है। चैत्र में वन, प्रफुल्लित हो उठता है, पुष्पों पर भ्रमरों का गुंजन बड़ा सुहावना लगता है। ज्येष्ठ, आषाढ़ में तपती धरती, सावन, भादों की रिमझिम, दादुर मोर, और कोयलों की पुकारें, दामिनी की चमक और सर्दी और मच्छरों के देश का यथार्थ वर्णन है और प्रत्येक ऋतु की सुन्दरता का सुन्दरता से वर्णन किया गया है।

उनकी वाणी में शांत और श्रृंगार रस की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त करुण, भयानक, रौद्र, अद्भुत और वीभत्स, हास्य आदि रस भी हैं। उपमा और रूपक अलंकारों की प्रधानता है। कहीं कहीं अन्योक्ति का भी सुन्दर प्रयोग मिलता है।

गुरु नानक ने अपनी रचना में निम्न उन्नीस रागों का प्रयोग किया है - सिरी, माझ, गउड़ी, आसा, गूजरी, वडहंस, सोरठी, धनासरी तिलंग

सूही, बिलावल, रामकली, मारु, तुखारी, मरेऊ बसन्त; सारंग, मलार और प्रभाती ।

भाषा की दृष्टि से फारसी, गुजराती, पंजाबी, व्रज, सिन्धी और खड़ी बोली के प्रयोग मिलते हैं। संस्कृत अरबी और फारसी, के भी कई शब्द मिलते हैं। इस प्रकार गुरु नानक भक्त परम्परा में कवि रूप में भी अपना विशेष स्थान रखते हैं और जैसा पहले कहा जा चुका है, उन में पैगम्बर, दार्शनिक, राजयोगी, गृहस्थ, त्यागी, धर्म सुधारक, समाज सुधारक, संगीतज्ञ, कवि; देश भक्त, और विश्व बन्धु के सभी गुण उत्कृष्ट मात्रा में मिलते हैं। उनकी शिक्षाओं में कृष्ण का कर्मयोग, राम की मर्यादा, बुद्ध की अहिंसा और इस्लाम की एकेश्वरता का समन्वय है और मानवता का प्रचार प्रसार ही उनका उद्देश्य है।

कहानी और मैं

ओ० पी० शर्मा

स्वयं को दर्पण में देखता हुआ मैं सोचने लगता हूं :

दर्पण में द्रष्टा, दृष्टि तथा दृश्य सभी एक रूप होते हैं। परन्तु साहित्यिक रचना के दर्पण में दृश्य और उस की प्रतिक्रिया दोनों चीज़े भिन्न होती हैं जो द्रष्टा के दृष्टिकोण से आ मिलती हैं। फिर दृश्य सिमट कर द्रष्टा का दृष्टिकोण बन जाता है और उस की रचना फैल कर एक विराट दृश्य।

एकायक—दर्पण में हलचल सी होती है और दृष्टि के सामने पडोस की पुरानी हवेली की मोटी दीवार आ जाती है जो एक सदी को निगल चुकी है परन्तु जिस के सीने के छेद अभी तक भरे नहीं। जिन मे चिड़ियों ने घौंसले बना लिए हैं। देखते ही देखते चिड़िया का एक 'बोट' घौंसले मे गिर कर गराज की तपती हुई टीन पर आ पड़ा है और सहकने लगा है। जैसे मेरी सोच भी मुझ से अलग हो कर मांस के उस लोथड़े से जा मिली हो और सहकने लगी।

अब - दृष्टि के घेरे में एक लडकी आ गई है। वह है तो किसी की पत्नी। उस का तीन महीने का लड़का हृदय में सुराख रहने के कारण कुछ ही दिन हुए मर गया है। मैं उसे लड़की ही कहता हूं क्योंकि उस की चाल-ढाल में वह ठसक नहीं आ पाई है जो उसे पत्नी प्रकट करे। उस की आवाज़ में वह सख्ती भी नहीं है जो उसे किसी शराबी की पत्नी अथवा मरे हुए बच्चे की मां ही बना दे।

चिड़िया के उस सहकते 'बोट' को दुपट्टे से उठा कर वह घौंसले में

रखने का प्रयत्न करती है। कि चिड़ियां उस के सिर पर भूत की भान्ति मण्डराने लगती है। वह लड़की मुस्करा उठती है। उस कसैली मुस्कराहट में एक कहानी है। एक नहीं दो कहानियां हैं। चिड़िया समझ रही है कि वह कोई छापा मार है। परन्तु वह लड़की! वह लड़की तो स्वयं ही एक खाते पीते घौंसले से गिर कर शराबी पति के पन्जों में फंसी सहक रही है।

दर्पण धुन्धला गया है। मैं स्वयं से प्रश्न करता हूं। मैं कौन हूं? कहानी क्या है और कहां है? कहानी लड़की में है? घौंसले में है? सहकने में है? कहानी यदि वहां है तो मैं कौन हूं?

क्या मैं:—एक ऐसा मैदान हूं जहां भावना और विचार आपस में कुश्ती लड़ते रहते हैं और अधिकतर भावना मार्मिक कल्पना का शस्त्र ले—विचार को पराजित करके दूर फेंक देती है? उत्तर मिलता है:—

ऐसा नहीं है। मैं तो मैं हूं। देखता हूं सुनता हूं। अनुभव करता हूं। फिर उस अनुभव को कल्पना के पंखों पर बिठा कर बस्ती और वीरानों की सैर कराता हूं। फिर—फिर सफेद कागज़ पर काले मकोड़े भिन्न-भिन्न रूप तथा आकृतियां लिए हुए पंक्तियों में बन्ध जाते हैं। फिर मेरे सन्मुख एक कहानी पड़ी रहती है।

फिर हर बार मुझे 'स्वयं' से पूछना होता है यह कहानी क्या मैंने लिखी? उत्तर मिलता है:—

'नहीं तुम ने नहीं लिखी! तुम तो केवल दर्शक मात्र हो। कहानी तो कोई और लिख गया।'

'कौन लिख गया? यदि यह कहानी मैंने नहीं लिखी तो उस का क्या हुआ? जो मैं लिखना चाहता था? वह कहानी कहां है? कहानी कहां है?'

मैं झुंझला उठता हूं। उठ कर किसी ओर चल देता हूं। विचार शून्य नहीं हूं। न ही कभी हो सकता हूं। यदि हो सकूं तो योगीश्वर हो जाऊं। फिर राम चन्द्र शुक्ल मेरे सन्मुख आ जाते हैं। कहते हैं:—

आत्मा की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है और मन की मुक्तावस्था ज्ञान दशा। उस दशा की अभिव्यक्ति ही कर्म योग है। साहित्यकार

कर्म योगी होता है। हां ! मैं यह सब कुछ सोच रहा हूं, परन्तु कहानी के बारे में नहीं।

नीले में पीला, काले में लाल और हरे में सफेद रंग ! इक घिसा पिटा सा टुण्ड ब्रश रंगों को एक दूसरे में गड़मड़ करता है। फिर अपनी घिसी हुई नोक पर मूंग के दाने भर का रंग उठाकर कन्वास तक ले जाता है। फिर वह रंग कन्वास की सृष्टि का एक अंश बन जाता है। फिर अनगिनत अंश जुड़ जाते हैं और कन्वास पर एक मज़दूर एक किसान, एक विधवा नहाता हुआ एक यौवन, भीक मांगता हुआ बुढ़ापा उभर आता है। यह सारे पात्र क्या पैलट पर थे या ब्रश में छुपे बैठे थे या अपना अपना भिन्न रूप लेकर रगों की बन्द टयूवों में छुपे बैठे थे ? या सारे ही पात्र चित्रकार के महमान थे जिन को यह भी पता नहीं था कि चित्रकार के अन्तर से निकलने की बारो किसकी और कब है।

मैं शायद कहानो के किसी झंझट में फिर से घिर गया हूं। तभी तो यह सोच रहा हूं कि पानी के लिए धरती की छाती छीलो। अन्न के लिए फोहड़े और कुदालियां बरसाओ। फिर उंगलियों का छत आंखों पर बना कर बादल के टुकड़े की प्रतीक्षा करो। फिर जब अन्न का दाना मिले तो उस के हिस्से बट जाएं। पसीने का पात्र उगाने वाला हो और सुख सुविधा का पात्र बटवाने वाला। हां एक ही ससय में दो चित्र उपस्थित हो गए हैं। दोनों को चित्रित करने की उत्सुकता हो रही है। परन्तु चित्र लेखनी का हो अथवा तूलिका का। दर्द की शर्त तो दर्द मन्द दिल से है। 'गोदान' और 'कफन' के पिता मुन्शी प्रेम चन्द कहते है।

लिखते वही लोग हैं जिन के दिल में कुछ दर्द होता है। वह क्या लिखेंगे जिन्होंने जीवन के ऐश्वर्य को जीवन का लक्ष्य माना है।

फिर आगे कहते हैं :—

साहित्य मानव जीवन का दर्पण है।

हां है ! मैं भी सोचने लगा हूं। उस दर्पण में जीवन अवधि में घटने वाले दुःखों अथवा सुखों का मार्मिक अथवा वास्तविक दृश्यावलोकन तभी हो सकेगा, जब दिल में दर्द होगा।

तो कहानी घोंसले से गिरी वह लड़की और कन्वास पर उभरा वह

बूढ़ा भिकारी दोनों हैं जो विधना के हाथों नचाए गए पुतलों की भान्ति कन्वास रूपी दर्पण से झांक रहे हैं। कहानी लड़की है। कहानी भिकारी है। कहानी ब्रश रंग अनुभव, अनुभूति है तो मेरा इन से सम्बन्ध ? तो मैं क्या हूं ?

मैं जब भी स्वयं से पूछता हूं कि मैं क्या हूं तो उत्तर मिलता है :—

तुम समय के कोल्हू पर बंधे हुए बैल की भान्ति हो और ऋतुओं के द्वारा डाले गए सुख दुःख रूपी, तिलों का तेल निकालने के लिए विवश हो।

क्या मैं बैल हूं ? प्रश्न उभरता है। मैं इन्कार करता हूं :—

नहीं ! मैं मानव हूं ! मैं चित्रकार हूं। मैं कहानी कार हूं। मुझ में सब से बड़ी विशेषता यह है कि मैं संसार भर के मानव के दुखों का राज़दार हूं। तो मेरा 'मैं' मुझ पर हंस देता है। कह देता है :—

तुम दूसरे के दुखों की हाय हाय का बहाना कर के, अपने दुखों को दूसरों के दुखों के कपड़े पहनाकर प्रदर्शन करने के लोभी हो।

मेरी अनुभूति और विचार शक्ति में फिर इक जग छिड़ गई है। बहुत तर्क वितर्क होता है। मेरे भाव कहते हैं :—

हमारे पास आहों, दुक्खों और दर्द के खजाने हैं।

मेरी विचार शक्ति कहती है :—

तुम्हारे पास जीवन है। परन्तु इस जीवन पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। और न होना चाहिए।

हां ! मानता हूं। मेरे जीवन पर मेरा ही अधिकार नहीं है। राबर्ट फ्रास्ट भी तो मुझे यही कहते हैं कि तुम्हारी सम्पत्ति तुम्हारा सर्मपित जीवन तथा तुम्हारा दर्द-मन्द दिल ही तो है। यही वह दौलत है जिस के सहारे तुम इस संसार की कचहरी में एक ऊंचे और शानदार जीवन की कल्पना के लिए जीवन के सस्ते और घटिया व्योपारों से लड़ झगड़ सकते हो।

दूध का भरा बरतन मेरे आगे पड़ा है। दूध पर मलाई तैर रही है। मैं चम्मच लेकर मलाई को उस में डुबोने का प्रयत्न करता हूं। परन्तु बार बार ऐसा करने पर मलाई चम्मच के दाएं बाएं से निकल

कर, ऊपर तैर आती है। मुझे विस्मय है, दूध ही में से निकली मलाई को दूध में फिर से मिला देने में मैं असमर्थ हूं।

झट से, कलम लेकर मैं बैठ जाता हूं। और सोच रहा हूं किसी ऐसे पात्र के सम्बन्ध में जिसका कोई दुख उस के जीवन का अभिशाप बन कर उस के जीवन की कड़ाही पर, मस्तिष्क के सरोवर पर झिल्ली की भान्ति तैर गया हो उसे मैं इस प्रकार व्यक्त करूं कि बुद्धि चाहे कितनी ही तर्क-वितर्क में उलझाए अन्ततः उसे हार माननी पड़े।

अभी कुछ ही अक्षर फौज की पहली परेड की भान्ति पंक्ति में खड़े किए हैं कि रात्रि की स्तब्ध चादर पर उस बुढ़िया की हाय-हाय की टंकार लग कर गूंजने लगी है।

सत्तर वर्ष की मरी-मुरझाई बुढ़िया जिसके खरगोश जैसे बिखरे बाल कभी भी संवरने पर राजी नहीं होते, जो बोलती है तो लगता है हेमन्त के सूखे पत्ते खड़खड़ा रहे हों और जब चलती है तो अनुभव होता है कि इस जर्जर खिलोने की चाबी अब समाप्त हुई कि अब हुई। उसे चुगली और निन्दा करने का बड़ा ढंग है। जिन पड़ोसियों को यह दोनों बातें प्रिय हैं वह लोग इस बुढ़िया की नमक, मिर्च, मसाले और कभी कभी खाड की अवश्यकता पूरी कर देते हैं। इस की दूर-पार की एक जवान, गोरी चिट्टी भान्जी इस के साथ रहती है। बुढ़िया निन्दा के लिए मशहूर है और उसकी भान्जी......के लिए। वास्तव में उस के निन्दा करने में एक कहानी है। यदि वह दूसरों की निन्दा न करे तो अपनी भान्जी के अवगुणों को किस ताकचे में छुपाए। वह जानती है कि कुछ समय बाद वह कैंसर से मर जाएगी परन्तु वह यह भी जानती है कि उसकी गोरी चिट्टी, भटकती जवान भान्जी को अभी जीना है और वह भी दूसरों की बदनामी की छांव में।

यह क्या कहानी हुई जो मैंने लिखी है? अपनी बागी कल्पना को क्या कहूं, वह बुढ़िया तो एक ओर रह गयी और कहानी इस मुई कल्पना की हो गई।

तो कहानी क्या है? क्यों है? और कैसे है? मेरी कहानी से और कहानी का मुझ से सम्बन्ध, मेरे दर्द, विचार शक्ति, भावों अथवा कल्पना

शक्ति से है ? अथवा मेरे देखने सुनने और महसूस करने से ? मेरे लिए कहानी कहां है ?

एक शिकारी शिकार पर है। उस को चीते का और चीते को उसका पता चल गया है। जैसे जैसे चीता उसकी ओर बढ़ता आ रहा है, वैसे ही ट्रिगर पर उसकी पकड़ सख्त होती जा रही है। ओह......। चीता बराबर में आ गया। फायर हुआ। यदि निशाने पर लगा तो चीता ढेर हो गया। और यदि निशाना चूक गया तो शिकारी की शामत आ गई।

क्या इस शिकार और शिकारी में कहानी है ? मैं स्वयं से पूछता हूं। उत्तर मिलता है :—

यह कहानी नहीं है। यह कहानी की कहानी है।

मैं कहानी लिखने बैठता हूं तो अनुभव करता हूं कि अपनी मौत का परवाना लिखने बैठ गया हूं। अथवा लगता है कि एक मरुस्थल में दुखों की कचहरी लगी है। वहां निर्णय होगा। यदि निशाना ठिकाने पर लगा तो मैं छूट जाऊंगा। यदि चूक गया तो चीता मुझे खा जाए गा।

मैं कभी कभी ऐसा क्यों अनुभव करने लगता हूं कि इस संसार में सभी मनुष्यों के पीछे दुखों के चीते लगे हुए हैं। यदि जीवन का सार इन चीतों के आगे आगे भागना है तो मेरा धर्म कैसा है कि मैं इन चीतों का शिकार करता फिरूं ? मैं ही इस त्रास, ह्रास और बेचैनी को समाप्त करने की चेष्टा करूं और उन चीतों के रखवाले मुझ जैसों को समाप्त करने की धुन में लगे रहे।

परन्तु मुझ जैसे मनुष्यों का समाप्त होना सहज तथा सम्भव नहीं है। क्यों हम लड़कियों के पिता हैं। कुछ छोटी बड़ी, कुछ अजनबी लड़कियों के पिता। हमें उनको जन्म देना है। उनको पालना है। उनको मस्तिष्क के सूक्ष्म पर्दों पर खिलाना-सुलाना है। फिर कल्पना के पंखों पर बिठाकर संसार का भ्रमण कराना है। फिर वह लड़कियां जब जवान हो जाएं तो उन्हें प्रतीकों के वस्त्र तथा उपमाओं के भूषण बनवा देने हैं। फिर मोतियों के ससान सुन्दर और मूल्यवान अक्षरों की माला

उनके हाथों में पकड़ा कर विदा कर देना है कि वह स्वयं अपना स्वयंम्वर कर लें।

कुरूप पिता की पुत्री कुरूप हो, यह जरूरी नहीं। पुत्री तो मेनका, उवर्शी भी हो सकती है।

मैं पिता हूं! हर मेरी कहानी मेरी पुत्री है।

●

काश्मीर की राजधानी जम्मू प्रांत का
रमणीक और स्वास्थ्यप्रद मर्ग

नन्दीमर्ग

अनन्त राम शास्त्री

पर्वतराज हिमालय की तराई में दूर-दूर तक विस्तृत इस परम पुण्यमयी
पवित्र डुग्गर की धरती पर स्थित जम्मू प्रान्त के उत्तर की ओर नन्दीमर्ग
नाम का एक अत्यन्त सुन्दर, शीतल तथा स्वास्थ्यप्रद स्थान है। यहां
पहुंचने के लिए मुख्य तीन मार्ग हैं। एक तो जम्मू से कटड़ा, रियासी,
अरनास, कुण्ड, साड़, तथा देवल होते हुए हमें नन्दीमर्ग पहुंचाता है।
यह मार्ग सब से छोटा और सुगम है। अनुमानतः १३२ मील के लगभग
है, जिस में से ५२ मील जम्मू में मोटर, बस व जीप पर सवार हो कटड़ा
में से रियासी तक हम सरलता से पहुंच जाते हैं, क्योंकि जम्मू से रियासी
तक पक्की सड़क है, कोलतार पड़ा हुआ है। आगे ८० मील पैदल चलना
पड़ता है। रियासी से चलकर ६ मील पर कन्थान नामक स्थान पर हमें
चन्द्रभागा दरिया पार करना पड़ता है, जिस पर स्वर्गीय महाराजा बहादुर
श्री रणवीरसिंह जी के समय से रस्से और लकड़ी के तख्तों का एक पुराना
पुल बन्धा हुआ है। पुल पर से दरिया पार कर ३ मील चलने पर
अरनास आ जाता है, फिर कुण्ड, साड़, देवल में से होते हुए आगे १३०००
फुट की ऊंचाई पर जब हम जज्जीमर्ग पीर के शिखर पर पहुंचते हैं तो
वहां हरियावल से भरे पड़े एक विस्तृत मैदान के दर्शन होते हैं, कुछ क्षण
विश्राम कर ज्यों ही हम उस पीर की ढलान ढल कर नीचे पहुंचते हैं
तो उसकी तलहटी में बसे नन्दीमर्ग को पा लेते हैं।

दूसरा रास्ता रामबन से जाता है, जो जम्मू से कश्मीर जाते हुए

बनिहाल रोड़ पर ठीक मध्य में स्थित है। इस प्रकार जम्मू से लारी या मोटर पर सवार हो १०० मील पक्की सड़क का सफर कर हम आसानी से रामबन पहुंच जाते हैं, फिर वहां से दरिया के किनारे किनारे पैदल चलते हुए ठीक १० मील पर रस्सों पर टंगी हुई ढोलकनी पर बैठ चन्द्रभागा दरिया को पार करते हैं, जिसे प्रान्तीय भाषा में खरोड़ी कहा कहा जाता है। दरिया के दोनों ओर कस कर बन्धे हुए रस्सों पर यह ढोलकनी बन्धी रहती है, इस के नीचे रस्सियों से बुना हुआ एक छिक्का जैसा लटक रहा होता है, जिस में बैठा जाता है और जिस ओर जाना हो, उस तरफ से एक आदमी रस्सा खींचना शुरू कर देता है और ढोलकनी रस्से के संग संग चलने लगती है, ज्यों हम दरिया पार कर लेते हैं। आगे १० मील चलकर गूल आ जाता है, फिर १०००० फुट की ऊंचाई पर स्थित मंगनाड़ पीर को पार कर ५० मील चलने के अनन्तर हम नन्दीमर्ग पहुंच जाते हैं। यह मार्ग जम्मू से १७० मील के लगभग है, जिस में से १०० मील लारी-मोटर द्वारा और ७० मील पैदल चलना पड़ता है।

तीसरा रास्ता पुन्छ में से है। जम्मू प्रान्त के अन्दर पुन्छ एक छोटी कश्मीर है जो जम्मू से पश्चिम की ओर १५० मील पर स्थित है। काश्मीरी लेखक कल्हण की लिखी हुई पुस्तक राजतरङ्गिणी के अनुसार इस का प्राचीन नाम परन्तस था। आजकल यहां पहुंचने में लारी-मोटर की सुविधा प्राप्त है। १५० मील पक्की सड़क है, कोलतार बिछा हुआ है। इस से पूर्व की ओर १७ मील पर एक 'मण्डी' नाम का सुन्दर तथा रमणीक स्वास्थ्यप्रद प्रदेश है, इस से आगे ३ मील फैली हुई एक वादी है, जिसे 'लोरन' कहा जाता है। पुन्छ से मण्डी तक पहुंचने के लिए एक कच्ची सड़क है, जिस पर जीप आदि बड़ी सरलता से चल सकती है। यहां से एक बड़ा भारी दरिया पुन्छ की ओर बहता जाता है जो 'मण्डी दरिया' के नाम से प्रसिद्ध है : इस पर पुराना पुल पड़ा हुआ है। यों हम जम्मू से लारी पर सवार हो १५० मील पक्की सड़क का सफर कर पुन्छ से १७ मील जीप-कार आदि पर कच्ची सड़क का सफर कर पुल पर से दरिया को पार करते हुए मण्डी पहुंच जाते हैं और वहां से आगे पद-यात्रा करते हुए लोरन से होकर पीर पंजाल की १०००० फुट ऊंचाई लांघ छपैइयां होते हुए नन्दीमर्ग पहुंच जाते हैं।

नन्दीमर्ग को यदि दूसरा पहलगांव कह दिया जाए तो अत्युक्ति न होगी। यहां एक नाला बहता है, उस के दोनों तरफ बस्ती है, चारों तरफ सब्जा ही सब्जा दिखाई देता है। पास ही घना जंगल है जो चीड़ों के वृक्षों से भरा पड़ा है। इस के आगे ढोक है, यहां ग्रीष्म ऋतु में गुज्जर अपना माल-मवेशी साथ ले आते हैं। यह चरागाहों से भरा पड़ा है। थोड़ी दूर आगे जुम्मस्थल नामक एक स्थान है, यहां बर्फ पर चलना पड़ता है, तनिक भी पांव फिसला तो नीचे खूनी तलाई में जा गिरे। यहां बड़ी तेज़ हवा चलती है, जिस से मण्डली बनाकर चलना पड़ता है, अकेले चलना कठिन हो जाता है। यहां से ५ मील चढ़ाई चढ़ने के उपरान्त हम फिर जज्जीमर्ग के विस्तृत मैदान में पहुंच जाते हैं यहां दूर दूर से गुज्जर आकर गर्मियों के दिनों में रहते हैं, इसे बड़ी ढोक भी कहते हैं विशेषकर कंजदौरा से लोग अपनी भेड़-बकरियां तथा माल-मवेशी साथ ले यहां आए हुए होते हैं। चारों तरफ हरियावल ही हरियावल दिखाई देती है। वनफशा और हारतार के फूलों की बहार होती है, जो सूखने पर दूर-दूर देश-विदेश में बिकने को जाते हैं, इनका यहां सरकार की ओर से ठेका दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यहां कुट्ठ भी अधिक मात्रा में होती है। साथ ही यहां एक नाला बहता है, जिस का जल दूध की तरह सफेद हैं, इस लिए इस का नाम ही चिट्टा पानी नाला पड़ गया है। इस के आगे ५ मील चलने पर कौंसर नाग चला आता है, यहां एक बड़ी भारी झील है, जिस में वर्फ के तोदे तैरते हुए दीखते हैं, जिसे देखने के लिए दूर-दूर से देशी-विदेशी पर्यटक कश्मीर होते हुए छपैइयां के रास्ते आया करते हैं। यहां इतनी अधिक सर्दी पड़ती है कि पांच उनी कम्बलों से भी गुजारा होना कठिन है, जिस से यहां लोक कम ठहरते हैं। प्रायः बकरवाल यहां रहते हैं। जो लोक इसे देखने जाया करते हैं, वे दिन भर यहां मनोविनोद कर रात्री को कुंगवटन स्थान पर वापिस चले आते हैं और उस रात वहीं ठहरते हैं। यहां एक डाक बंगला बना हुआ है, जिस में रात्री बिताने की सब सुविधा प्राप्त हैं। दूसरे दिन छपैइयां में से होते हुए कश्मीर पहुंच जाते हैं।

नन्दीमर्ग में सेब नाशपाती, तरेलां और नाखां फल बहुत होता है, मक्की की खेती के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। धान की खेती तो यहां बिल्कुल नहीं होती। अखरोट, घी और ऊन अत्यधिक प्राप्त है। यहां

एक-दो ऐसी दुकानें भी हैं यहां सब कुछ प्राप्त हो सकता है। स्वर्गीय महाराजा बहादुर श्री गुलाबसिंह जी भी यहां चार दिन स्वास्थ्य लाभ के लिए आए थे और बोसी खानदान के गुज्जरों के मेहमान बने थे। जिस के फल स्वरूप इस वंश को महाराजा की ओर से मुआफी का पटा दिया गया था, जो अभी तक उन के पास है। यहां पहुंचने का मार्ग मार्गशीर्ष तक खुला रहता है, बाद में अत्यधिक बर्फ पड़ जाने से बन्द हो जाता है और फिर चैत्र में जा कर कहीं खुलता है। यहां ऐसी नशीली जड़ियें हुआ करती हैं, जिन की सुगन्धमात्र से ही पर्यटक मदमत्त हो जाते हैं। कुछ ऐसी भी वनस्पतियां यहां देखने में आती है जो रात को जगमगाती हैं।



विश्व धर्म सम्मेलन के प्रवर्तक
मुनि सुशील कुमार

एक भेंट

डा गंगादत्त शास्त्री

देर से सुनता चला आ रहा था कि मुनि सुशील कुमार जी विश्व सर्वधर्म सम्मेलन का प्रचार और प्रसार कर रहे हैं। सर्वधर्म सम्मेलन, जैसा कि उस का नाम है इस के उद्देश्यों का कुछ परिचय ढूंढने में मुझे देर नहीं लगी। फिर भी इसके सम्बन्ध में अभी काफी जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा थी।

सम्मेलन का जन्म सन् १९५४ में बम्बई की धरती पर हुआ था। जन्मदाता मुनि जी के अथाह परिश्रम और शान्ति-नियोजन के फलस्वरूप उस समय उस अधिवेशन की काफी सज-धज रही।

सन् १९५७ के धर्म सम्मेलन में तो महत्व एवं व्यक्तित्व वाले अनेक राज-पुरुषों तथा जन-पुरुषों ने भाग लिया। एशिया तथा योरुप से भी अनेक मान्य व्यक्ति आये थे और भारत के राष्ट्रपति की अध्यक्षता में यह कार्य सम्पन्न हुआ। वक्ताओं में प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू भी थे।

विशेष नेताओं तथा सत्ताधारी मानवों के इस उल्लास पूर्ण जमघट से ही प्रतीत होता है कि सम्मेलन का व्यक्तित्व कितना विशाल रहा होगा। इसके अनन्तर उसी स्तर के अन्य अधिवेशन उज्जैन तथा दिल्ली में भी हुए। सम्मेलन की अन्य गतिविधियां विविधताओं के साथ आगे कैसे चलती रही, इस सम्बन्ध में मुझे अभी पूर्ण ज्ञान नहीं था, हां मुनि जी का नाम जनता की जिह्वा पर अवश्य नाच रहा था, यह सुन कर तथा पढ़

कर मुझे मालूम होता रहा। समाचार पत्रों में तो निकलता ही रहता था।

सम्मेलन से सम्पर्क न रहने पर भी इस के प्रति मेरा स्वाभाविक आर्कषण था। मैं समझता था कि इस जगत की एक नियामक शक्ति है, जो अदृश्य होकर अपनी चेतना स्फूर्ति के द्वारा विश्व को अनुप्राणित कर रही है। संसार के सभी धर्म उसी अनन्त की व्याख्या करते हुए एक जैसी भूमिका अदा कर रहे हैं और सब का लक्ष्य एक ही है। यदि धर्म का स्वरूप इस सन्दर्भ के अन्तर्गत हो कर मानवतावादी बने तो विश्व के मानव इस नाते भावात्मक रूप से एक सूत्रता में पिरोए जा सकते हैं। कहां रहा फिर कलह, कहां रहे संकीर्ण विचार और कहां रहे वे रुढ़ि-ग्रस्त धर्म जो भौतिक स्वार्थों के लिये बनाये गये हैं। जिन में वर्ग सघर्ष है, राजनैतिक स्वार्थ हैं, ज ति पांति रंग भेद तथा ऊंच नीच की दीवारें खड़ी होकर अपनों को ही पृथ्क करती है, लड़ाती हैं, विघटन करती हैं और भयंकर विखण्डन भी।

धर्म का उपर्युक्त मानवतावादी रूप एकेश्वरवाद तथा आध्यात्मिकता पर निर्भर होने के कारण संसार के मानव को मिलाने में जितनी शक्ति रखता है, उतनी भौतिक साधन नहीं। एक में मनुष्य की अन्तः प्रेरक शक्तियां काम कर रही होती हैं तो दूसरे में बाह्य शक्तियां। जिन में, हृदय का तार तम्य नहीं, तनाव तथा राजनैतिक स्वार्थ पर धर्म के समयापेक्षी अनेक रूपों का निर्माण है जो विघटन की भावनाओं पर पर आधारित है। इस बाह्य आधिभौतिक धर्म द्वारा क्या कभी मनुष्यों में हार्दिक एकता लाई जा सकती है? इसी कारण एकता स्थापित करने में आज तक जितने भी राजनैतिक या प्रशासनिक साधन अपनाए गए हैं उन से स्वप्न पूरा नहीं हो पाया है।

वह स्वप्न पूरा तभी हो पाएगा जब धर्म का रूप संकीर्ण एवं रुढ़िग्रस्त न होकर उदार एवं मानवतावादी हो। जिस में एक ही विराट का रूप एवं चेतना के बोध द्वारा मानव एक दूसरे में अपना स्वर मुखरित होता हुआ सुन पाएं।

इस रूप में सर्वधर्म सम्मेलन की व्यवस्था होनी ही चाहिए। मुनि जी ने यह ठीक ही किया है। विचारों की इस शृंखला ने मुझे मुनि जी

से मिलने की प्रेरणा दी। अब मैं इस के लिए अनुकूल अवसर के सम्बन्ध में सोचने लगा।

जिस वस्तु के पाने में सच्ची भावना होती है वह तो मानव के पास स्वयं आएगी ही। क्योंकि उस में ईश्वरीय शक्ति अनुप्राणित है।

सन् १६६८ के मार्च महीने में मैंने श्रीनगर आने और उनके विश्वधर्म सम्मेलन प्रसार के सम्बन्ध में पढ़ लिया। सोचा कि मेरी कामना स्वयं पूर्ण हुई। अब मैं उन से मिले बिना थोड़े ही रहूंगा।

अमीरा कदल की बड़ी सड़क पर प्रातः काल का सन्नाटा था। यही था मेरे प्रातः कालीन भ्रमण का समय। जब मैं उसी सड़क पर प्रकृति तथा वितस्ता नदी का रमणीक रूप निहारता हुआ तथा धीरे-धीरे टहलता चला जा रहा था। सामने की पर्वत माला इन्द्रधनुषी रूप लिये हुए जैसे मुझे अपनी ओर बुला रही थी। मई महीने में ऐसी शीतल शोभा कश्मीर को छोड़ कर अन्यत्र कहां मिलेगी ?

पुल पार करने के पूर्व ही दो शुभ्र वसनधारी तथा मुंह पर वस्त्र-खण्ड लटकाए हुए दो जैन मुनियों को अपनी ओर आते देख कर सहज ही मेरे मन में मुनि सुशील कुमार जी का स्मरण हो आया। काश ! इन्हीं में हों मुनि जी भी। एकाएक मेरे मस्तिष्क में विचार घूम गया। हृदय में विचार-तरंग उठते ही देखा कि मुनि जी मेरे बहुत पास से होकर जा रहे हैं। उन के पीछे थे, दो चार भद्र पुरुष चेहरों पर नम्रता-मिश्रित श्रद्धा के भाव लेकर चलते हुये। मैं अनायास समझ गया कि इन श्रद्धालुओं से घिरे हुए एवं सम्मानित तथा सब के उत्सुकता का केन्द्र बन कर चलने वाले जैन-महात्मा मुनि सुशील कुमार के व्यक्तित्व की झलक दे रहे हैं। शायद वही न हों। ऐसा लगता था कि आज उन्हें कहीं प्रवचन देने के लिये ले जाया जा रहा है। बाद में मेरा अनुमान ठीक ही निकला। इच्छा हुई कि इन से मिल लूं परन्तु ये तो जल्दी में हैं। सोच कर कुछ संकोच में तो पड़ा किन्तु मुनि जी से अपनी नमस्कार का मुस्कान भरा उत्तर फिर भी पा गया। इस से अनुगामी श्रद्धालुओं के साथ उन का वार्तालाप थोड़ा सा अवश्य टूटा, परन्तु मुझे यह लाभ हुआ कि बीच में ही चलते हुए श्री ओम् सराफ का ध्यान मेरी ओर घूम गया। वे एकाएक कह उठे......हैलो शास्त्री जी......आप यहां। आइए......

सुन कर मैंने भी उस मंडली में सम्मिलित होने का अच्छा अवसर पा लिया। उसी बीच ओम् सराफ ने मेरा परिचय कुछ बढ़ा चढ़ा कर मुनि जी से कराया, जिस से मैं संकोच के भार से कुछ दबने सा लगा। मैं इस प्रशंसा के कहां तक योग्य हूं यह भाव भी मुझ में उठा।

इस प्रथम भेंट में मुनि जी को भाव भरी सज्जनता और भोले स्नेह की स्निग्धता का प्रथम उन्मेष पाकर मुझे ऐसा लगा कि मैंने किसी वात्सालय-लोक के क्षणिक दर्शन पा लिए हैं। प्रत्यक्ष लाभ तो यही उटाया कि उन से दूसरे दिन मिलने का समय भी मिला। यह कितनी सफलता थी मेरी। जिस सुअवसर के लिये मैं चिर लालायित था, वह विना श्रम अकस्मात मिल गया।

मुनि जी से साक्षात्कार तथा उन की विचारधारा प्राप्त करने और लिखने का मेरा यही प्रथम उपक्रम था।

अगले दिन की भेंट

दूसरे दिन मैं निश्चित समय पर (मई ता० १६) उन के निवास पर पहुंचा। उस समय आंध्र के एक सज्जन वहां बैठे थे। जिन से बाद में परिचय पाने पर पता चला कि वे उसी प्रांत में समाज कल्याण केन्द्र के महामंत्री हैं, वे इतनी दूर से केवल मुनि जी से मिलने आये थे। मुझे देखते ही मुनि जी का रुख मेरी ओर घूम गया। यद्यपि उन्होंने आगन्तुक सज्जन से अभी और आवश्यक बातें करनी थी।

मैंने सहज ही जान लिया। उन की प्रफुल्लित मुख-मुद्रा देख कर कि मेरे आने पर उन्हें प्रसन्नता हुई। अब वार्ताक्रम वहीं स्थगित करते हुए वे मुझे तत्काल दूसरे कमरे में ले गए। किवाड़ बन्द कर दिए गए। दोनों आमने सामने बैठ गए। मुनि जी ने कहा—अब पूछ लीजिए जो कुछ पूछना हो मैं कुछ प्रश्न मस्तिष्क में बिठा कर ही तो गया था पूछने का क्रम बांधते हुए मैंने कहना शुरू किया—यह तो बतलाइए कि काश्मीर में साम्प्रदायिक एकता कान्फ्रेंस स्थापित करने तथा अपने सिद्धांतों का प्रचार करने में आप को कहां तक सफलता की आशा है और अभी तक इस सम्बन्ध में क्या कुछ हो पाया है? सुन कर उन्होंने उतर देना शुरू किया। मुझे ऐसा लगा कि जैसे सम्बन्धित विषय पर कहने के लिए

हृदय में संचित विपुल भाव-सामग्री वेगवती धारा सदृश स्वयं बाहर आना चाहती है। उसे सम्भालते हुए वे कहने लगे :—

सर्वधर्म सम्मेलन कश्मीर में अधिक सफल हो सकता है ऐसी मेरी धारणा है। इस में भी कुछ कारण है, सुन लीजिये :—

सन् १९४७ के साम्प्रदायिक संघर्षों में कश्मीर ने कोई योग-दान नहीं दिया और साम्प्रदायिक एकता बनाए रखी। हिन्दू मुसलमानों की यह परम्परागत एकता देखकर आज मैं सोचता हूं कि बापू के वे शब्द कितने सत्य सिद्ध हुए हैं कि जो उन्होंने कहा था—"मुझे कश्मीर से ही प्रकाश की किरण नज़र आ रही है।" यही नहीं और भी देखिए, यहां दोनों जातियों के घरेलू मेल मिलाप, एक दूसरे के घरों में बिना भेद-भाव के आना जाना। धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में मिलकर एक साथ बैठना यहां तक कि भट्ट, डार, पण्डित आदि के रूप में दोनों की समान जातीयता का होना यह सिद्ध करता है कि काश्मीर में हिन्दू मुसलमानों की एकता स्वतः सिद्ध है। इसलिए ऐसे वातावरण में धार्मिक एकता का आन्दोलन काफी सफल हो सकता है। किन्तु इस बात को अभी तक इस रूप में प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है।

सुनाई पड़ रहा है केवल रानैतिक तथा व्यापारिक स्तर का कलह, जिस से एक मानवतावादी एकता के झंकार के स्थान पर सत्ता हस्तान्तरित करने, कुर्सी हथियाने और वर्गगत दलगत तथा व्यक्तिगत स्वार्थ साधन के लिए धर्म को साधन बनाने का कटु कल-र व जो अपेक्षित एकता में विघटन ही पैदा कर सकता है। इस राजनीति संदर्भित एकता प्रचार की अपेक्षा शुद्ध धार्मिक एकता प्रचार में अधिक बल है। वहां राजनैतिक प्रलोभनों के अन्तर्गत परस्पर संघर्ष है और शुद्ध सैद्धान्तिक चेतना के अभाव के कारण एक दूसरे को गिराने की चेष्टा रहती है, यहां स्वार्थलाभ-शून्य आदर्श स्नेह द्वारा सब को साथ ले जाने की भावना है। वहां राजनीति के शतरंज के चतुर खिलाड़ियों का लाभान्वित स्रोतों पर अधिकार हो जाता है और किसी दल से सम्बन्ध न रखने वाले योग्य पुरुष को भी अपने क्षेत्र में प्रोत्साहन नहीं मिल पाता और होता क्या है योग्यता की कसौटी केवल पहुंच पर आधारित हो जाती है। काश्मीर में परम्परागत इस एकता के रहते हुए भी ऐसे राजनीतिक प्रभाव द्वारा वर्गगत दलगत

स्वार्थों के कारण साम्प्रदायिक एकता में बाधा आ सकती है। इसीलिए धार्मिकता के आधार पर एकता का होना अधिक निश्चित बन जाता है क्योंकि इस में आध्यात्मिकता है और उस में भौतिकवाद, आध्यात्मिकता में अधिक बल और आकर्षण है।

मैंने जान लिया कि मुनि जी अब वार्ता के इस दौर को समाप्त करने जा रहे हैं, मुझे उनकी उन दलीलों से काफी सन्तोष हुआ था। सत्य तो यह है कि जब वे अबाध गति में कहते चले गए तो मेरी शंकाओं के समाधान स्वतः उनके मुख से निकलते गए इसलिये अब प्रश्न का अवसर ही नहीं आया। अब मैंने फिर पूछा—

"यह बताइए कि शेख अब्दुल्ला तथा उनके शेष साथियों के इस विषय पर क्या विचार आपने देखे या उन्हें किस रूप में पाया ?"

सुनकर मुनि जी पूर्ववत गम्भीरता अपनाकर फिर कहने लगे - मैंने इन सब में धार्मिक एकता के सम्बन्ध में एक जैसी ही तड़प देखी है। शेख, अब्बास, फारूक, बेग, जमायते इस्लामी तथा बौद्ध यहां किसी को भी ले लीजिये उनके राजनैतिक विचार भिन्न हो सकते हैं किन्तु धार्मिक एकता में सब का एक ही विचार है। मेरे आयोजनों में सब धर्मों के नेता और लोग आते हैं।

शेख साहब ने तो धार्मिक एकता पर ऐसा सुन्दर प्रकाश डाला कि मुझे आश्चर्य हुआ उनके मानवतावादी एकता सम्बन्धी भाषण पर।

मैंने फिर प्रश्न किया—"सन् १९५४ से अब तक आप के इस संगठन का उतना अधिक प्रभाव क्यों नहीं पड़ सका कि देश भर में साम्प्रदायिक दंगे बंद हो जाते और लोगों में भाईचारे की भावना ज़ोर पकड़ती...... सुनकर मुनि जी का गौर वर्ण गोल मुख मण्डल अगले उत्तर के लिये व्यग्र हो उठा। उन्होंने कहना शुरू किया अभी तक हमारा एतत्सम्बन्धी संगठन ठीक ढंग से नहीं चल पाया, किन्तु अब जल्दी ही ठीक हो रहा है। हम अभी तक शान्ति सेना की पूर्ण व्यवस्था नहीं कर पाए किन्तु अब उसकी भी व्यवस्था हो रही है। वास्तव में जितने साधन राजनैतिक स्तर पर किसी आयोजन को मिल सकते हैं उतने हमें नहीं मिल पाए हैं। इसका कारण तो आप जान ही जायेंगे। सरकार ने राजनीति

में धर्म को कोई स्थान नहीं दिया हुआ है। राजनैतिक स्वार्थ आ पड़ने पर राजनीतिज्ञ धर्म का आधार लेकर अपने अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने लगते हैं। यहां तक कि धर्म-विचलित लोग भी 'धर्म खतरे में है' कह कर साम्प्रदायिक विद्वेष फैला कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। वैसे तो धर्म से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है पर धर्म रूपी शस्त्र का इसी भांति समय समय पर क्षणिक प्रयोग किया जाता है।

आज तक जितने दंगे फिसाद हो रहे हैं, ये धर्म की दुहाई देकर ऐसे ही भ्रमित लोगों द्वारा कराए जा रहे हैं। हम चाहते हैं कि यदि विश्व धर्म सम्मेलन पर जनता चलने लगे तो सब की एकता कायम हो सकती है। इस में न कोई राजनीति है न अवसरवादिता और न स्वार्थ सिध्यर्थ धर्म को शस्त्र बनाकर साम्प्रदायिक विघटन की भावना है। हमारा कार्य कलाप, आध्यात्मिकता ही सब धर्मों का संगठन कर सकती है न कि भौतिकवाद जिसमें कही गई अनेक विकृतियां हैं।

मैंने बीच में पुनः प्रश्न किया :—

शान्ति सेना का कार्य अब तक कहां-कहां सम्पन्न हुआ है मुनि जी? मेरी बात सुन कर उन्होंने आशा भरी मुस्कराहट बिखेरते हुए कहा इस संगठन की अभी योजना बन रही है। एक-एक सेना में सौ-सौ व्यक्ति भरती होंगे। ऐसी योजना हम ने अभी तक जम्मू तथा दिल्ली में चरितार्थ कर भी दी है।

मुनि जी की उत्तर देने की भाषा आकर्षक और तर्कपूर्ण थी। इस लिये मुझे बीच में कहीं अन्य प्रश्नों का अवकाश नहीं मिल पाया इस लिये कि एक ही प्रश्न का उत्तर देते समय संभावित आंतरिक शंकाओं का समाधान भी वे साथ-साथ ही कर जाते थे। उन का कथन प्रकार ही कुछ ऐसा था जिस से मुझे उन के विषय—सम्बन्धी गम्भीर चिन्तन का आभास मिला। बड़ी बात यह कि मुनि जी अधिक शांत और सौम्य प्रकृति के हैं। उन से जितने भी प्रश्न कीजिये कभी खीझना जानते ही नहीं। शान्तिपूर्वक और प्रेम से उत्तर देंगे जो दूसरे को सन्तुष्टि भी दे सकें। अभी वह कहते ही जा रहे थे तो बीच में मैंने फिर पूछा—मुनि जी, शुरू-शुरू में आप की वर्ल्ड रिलेजस कान्फ्रेंस की स्थापना पर राष्ट्रपति जी ने अध्यक्षता की थी। पं० नेहरू जैसे महापुरुषों ने उस पर से

साम्प्रदायिक एकता की उपादेयता पर भाषण दिये थे। राष्ट्रपति भवन में भी इस का एक आध बार अधिवेशन सम्पन्न हो चुका है। इस से यह नहीं समझा जा सकता कि आप का आयोजन राज-स्तरीय भी है। मुनि जी ने कहा—केवल इसी से राजस्तरीय नहीं समझ लेना चाहिये, हां राज—समर्थित अवश्य है।

मैंने पूछा—क्या आप इस 'वर्ल्ड रिलिजस कान्फ्रें' का प्रचार योरुप ऐशिया में पूरी तरह कर पाएंगे? उन्होंने उत्तर दिया—इस पर अभी तक थोड़ा बहुत कार्य हो भी चुका है जैसे योरुप ऐशिया दोनों में मिला कर ४० शाखाएं हम ने खोल दी हैं, वहां काम तेज़ी से हो रहा है। पैरिस और तेहरान में इस की कान्फ्रेंस हो चुकी हैं और अब जर्मनी और टेक्सास नगर में तथा लंदन में भी होने जा रही है।

मैंने पूछा—भारत के किन-किन प्रांतों में अब तक आप ने इस का प्रचार किया है? उन्होंने कहा—कलकत्ता, बम्बई, मध्य भारत राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, काशी तथा जम्मू कश्मीर में अब तक प्रचार किया गया है और अब इसे और बल देना है।

पूर्व प्रसंग पर वार्ताक्रम जोड़ते हुये मुनि जी फिर कहते चले गए—देखिये न एकता के लिये बाह्य साधनों की अपेक्षा अन्तर-साधन अधिक उपयोगी होते हैं। हिन्दू जिसे ईश्वर कहता है, मुसलमान उसे अल्लाह ईसाई उसे प्रेमस्वरूप। इस प्रकार संसार के सब धर्म उसी एक शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। वास्तव में वह सब का परमसत्य एक ही असीम सत्ता रूप है। सब में उसी का प्रकाश झिलमिला रहा है। यह तथ्य मानव मात्र को जोड़ने वाला है। यदि लोग इस विवेक भूमि पर उतरें तो धार्मिक एकता के सन्दर्भ में सब एक हो जाएं। ऐसा ही मानवतावादी धर्म लोगों को जोड़ता हैं। लेकिन धर्म के बाह्य रूप जो मनुष्यों द्वारा अनेक भांति घड़े गये हैं वे मानव को जोड़ने के स्थान पर विखण्डित ही कर रहे हैं। हम यह समझते हैं कि अल्लाह, रहीम, राम ईसा, सब उसी एक शक्ति के नामान्तर हैं। सब जातियों के लोग व सभी जीव उसी के स्वरूप हैं सब को एक समान नींद आती है एक समान भूख लगती है तथा अनुभूति मिश्रित अनुभव होते हैं। वे सब एक ही असीम शक्ति के रूप हैं और सब का ऐसा ही एक धर्म है। उस धर्म के आधार

पर दुनिया के सब धर्मानुयायी एक हो सकते हैं। इस से स्पष्ट हैं कि अच्छा धर्म वही है जो सब को जोड़ सकता हो। जो धर्म विखण्डन कर रहे हैं वे वास्तव में धर्म नहीं हैं।

धर्म के इसी रूप में प्राचीन युग में भी एकता का प्रयास किया जाता रहा हैं। अलेकज़ेण्डर ने यूनान में ऐसा ही एक सर्वधर्म सम्मेलन बुलाया था। अशोक तथा कनिष्क ने भी ऐसे ही प्रयत्न किए। कुम्भ पर्व का भी वास्तव में यही उद्देश्य है। हमारा भी यह सर्वधर्म सम्मेलन एक पर्व है जो दुनिया के सब धर्मानुयायियों को एक साथ मिला सकता है। समय अधिक हो चला था और मेरे प्रश्नों का उत्तर भी मुझे मिल चुका था। मैंने सोचा अब वार्ताक्रम समाप्त करना चाहिए।

अन्य आगन्तुक मुनि जी की प्रतीक्षा में कब से दूसरे प्रकोष्ठ में बैठे थे। उन का भी मुझे ख्याल था।

उपसंहार करते-करते उन्होंने फिर एक विशेष बात की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया—हां यह भी सुन लीजिए कुछ लोगों का विचार है कि मैं अन्दरूनी तौर से "कश्मीर समस्या" हल करने को आया हूं, ऐसी बात कतई नहीं है। मेरा केवल मात्र उद्देश्य 'वर्ल्ड रिलिजस कान्फ्रेंस' का सन्देश देना है। इसी के आधार पर दुनिया में सच्ची और स्थायी एकता कायम हो सकती है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है तभी तो मैं वर्षों से इस कार्य में लगा हूं। कहते-कहते मुनि जी आसन से उठ बैठे ज्योंही हम बाहर निकले तो देखा ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों को बादलों ने घेर रखा है। आकाश पर काली घटा छाई हुई थी तथा बूंदा-बांदी हो रही थी। पश्चिम की ओर ढलते हुये सूर्य की लाली की कुछ किरणें अन्धकार की कालिमा से झांक कर घाटी की शोभा निहार रही थीं।

कथा साहित्य



मेरी गली का पाप

मूल लेखक : मदन मोहन
अनुवाद : वेद राही

आसमान पर तारकोल पुता हुआ है। कहीं गहरा, कहीं उथला। उस की स्याही के प्रभाव में साहुकारों की गली भी है। वह गली देख कर किसी मरे हुए और उलटे पड़े हुए कनखजूरे का ख्याल आ जाता है, जिस के दायें-बायें खड़े घर कनखजूरे की ऊपर उठी हुई टांगों के समान हैं। गली की छाती पर, खम्बे पर जल रहे बल्ब की मुर्दा रोशनी पड़ रही है। यह रोशनी एक जगह पर आकर अंधेरे के मुंह में जा समाई है। उस के आगे और अंधेरा है—फिर और अंधेरा है—और उस अंधेरे के आगे वह ऊंची दीवार है, जिसे अपना सिंहासन बना कर घना-घुप्प अंधेरा विराजमान है, और जिस के कारण यह गली अवरुद्ध हो गई है।

गली यहां से शुरू होती है, वहीं बिजली का खम्बा है। उसी खम्बे के साथ टेक लगा कर एक टांग के भार वह यों खड़ा है, जैसे कोई तांतरिया—बावा भूत-प्रेत वश करने के लिये ध्यानस्थ हो :

उस ने बेहिसाब शराब पी हुई है। नशे से कभी उस की आंखें बंद होने लगती हैं तो डोलती नज़रों से वह गली के अंदर झांकने लगता है। उस की पागल नज़रें मुर्दा रोशनी पर करवटें बदलती अंधेरे तक पहुंचती हैं। वे नज़रें ज़रा और आगे बढ़ती हैं, और फिर दीवार की मोटी ईंटों के साथ अपना आप टकरा कर पीछे फिसलने लगती हैं, वापस आते हुए वे घरों की खिड़कियों की तरफ लपकती हैं, बंद दरवाजों की तरफ दौड़ती हैं, और आखिर थक-हार कर उसी के पांवों पर आ गिरती हैं। पांवों पर पड़ी हुई वे नज़रें पल-भर आराम करती हैं, और फिर वे ऊपर

को उठती हैं, चींटियों के समान सनासाहट करती हुई वे उस की टांगों पर चढ़ने लगती हैं, चढ़ती जाती हैं, चढ़ती जाती हैं, और जब वे छाती तक आ पहुंचती हैं तो वह उन से घबरा कर मुंह ऊपर उठा लेता है। पल भर रोशनी के पीले बल्ब की तरफ देखता रहता है, और फिर उस की नज़रें आसमान पर पुते हुये तारकोल में लतपत हो जाती हैं।

काफी समय के बाद उस ने आंखें उठाई हैं। आंखें उठाते ही उस की नज़रें बिखर सी गईं। बड़े जतनों से उस ने उन नज़रों को समेटा है। अपनी कांपती बांह को उस ने उठाया है। अब वह घड़ी देख रहा है। ......दो बजे हैं ...... जम्मू से कब टैक्सी की थी? ......यहां कितने बजे पहुंचा?...... ये सारी बाते सोचने में इसे पूरे पंद्रह मिनट लगे हैं। अब वह अंदाज लगा रहा है। माथे पर त्यौरियां चढ़ा रहा है। बिखरे हुये बालों पर हाथ फेर रहा है।.........और फिर कहीं जाकर उसे ख्याल आता है कि उसे इस खम्बे के सहारे एक टांग पर खड़े-खड़े पूरे सत्तर मिनट बीत चुके हैं ......और सत्तर मिनटों का ख्याल आते ही उस की टांग दर्द करने लगती है। हाथ बर्फ के समान ठण्डे हो जाते हैं। सर्दी से शरीर अकड़ने लगता है। अपने ठिठुरते हाथों को वह अपनी बगलों में दाब लेता है; और अपने आप को सिकोड़ कर—एक गठरी सी बन कर बल्ब के नीच बैठ जाता है।

ऐसे गठहरी सी बने हुये वह कितनी ही देर तक बैठा रहता है। उस का सिर उस के घुटनों पर पड़ा हुआ है। उस की ठोड़ी उस की छाती में घुसी हुई। उस की सोचें बुरी तरह उलझी हुई हैं। सोचों के कुछ सूत्र वह सुलझाना चाहता है, पर यह काम उस की सामर्थ्य से बाहर है। थक-हार कर वह फिर अपना सिर घुटनों पर से उठा लेता है।

एक बार फिर वह डरी हुई नजरों से गली के भीतर देख रहा है। अब के वह केवल देख ही नहीं रहा, गली के बायें तरफ खड़े मकानों की गिनती भी कर रहा है; और याद करता जा रहा है कि कौन सा घर किस का है।

पहला लाहौरी साहुकार का है।
दूसरा बाबू साहुकार का है।
तीसरा मुन्ने साहुकार का है।

चौथा मेरा और मेरे बाप सांझी साहुकार का है।

और पांचवां......और पाचवां घर सावित्री का।

इस पांचवें घर पर आकर उस की नजरें रुक जाती हैं। यह घर गली के पक्के मकानों का मुंह चिढ़ाता नज़र आता है। इस के दरवाज़े इस तरह टूटे फूटे हैं कि कोई चोर भी इस के अंदर झांक कर नहीं देखेगा। गली में खुलती हुई इस की खिड़कियां जगह-जगह से उखड़ी हुई हैं। एक जबरदस्ती बरसात होने का देर है, कि 'गड़, गड़, गड़ाम' हुआ समझो।

कभी इस घर का मालिक तारा साहुकार था, पर पंद्रह साल पहले लक्ष्मी इस की दहेलीज़ से बाहर आ गई। तारा साहुकार को सोने के सट्टे में पचास हज़ार का घाटा पड़ा था। वह घाटा तारा साहुकार भर पूरा नहीं कर सकता था, सो उसने मरना ही भला जाना। आप तो वह गया, और पीछे रह गई उस की पत्नी रामदेई और दो बरस की बेटी सावित्री। भाग्यहीनता के उस दिन के बाद इस घर पर कभी बहार नहीं आई। इस की भुरभुराती दीवारों पर कभी किसी ने दो पैसों की सफेदी भी नहीं कराई।

कितनी ही देर तक वह उस घर की तरफ देखता रहता है। देखता रहता है और 'ऊं ऊं' करता रहता है......और फिर एक विचित्र दृश्य सामने आ जाता है। अचानक ही उस घर के दरवाज़े 'खड़ाक' से खुल जाते हैं। दरवाज़े क्या खुलते हैं उस की हड्डी-हड्डी सुन्न हो जाती है। खुले हुये दरवाजों में से बेतहाशा एक शोर बाहर आ रहा। घर में कोई ज़ोर-ज़ोर से रो-पीट रहा है। आंगन में खड़ी स्त्रियां खुसर-पुसर कर रही हैं।

'अभागिन के पेट में तीन महीने का पाप था।'

'सुना कि ज़हर खा लिया है।'

'छिनाल मर गई, मगर गली की नाक कटवा गई।'

'पता नहीं किस मरे की करनी थी।'

'हाय मेरी बेटी, तूने क्या जुल्म कमाया।'

'ओ देवी का धर्म बरबाद करने वाले, तुझे ईश्वर मारे।' राम देई बैन पा रही है। वह दीवारों से अपना सिर फोड़ रही है। दुहत्थड़ों

से उस ने छाती नीली-सुर्ख कर ली है। फिर शंख की ध्वनि गूंजी, और अर्थी उठाने वाले चल पड़े। आगे-आगे अर्थी है; पीछे 'नमें शहर' के सौ के लगभग औरतें और मर्द।

उस की नज़रें लोगों के पांवों के नीचे कुचली जा रही हैं। उस के श्वास आंधी के समान सायं-सायं कर रहे हैं। अब लोग बिल्कुल उसके समीप आ गये हैं। लोग धीरे-धीरे उस के पास से गुज़र रहे हैं, पर वे चार व्यक्ति जिन्होंने सावित्री की अर्थी उठाई हुई है, उस के पास ही खड़े रह गये हैं। वे उस को आंखें फाड़-फाड़ कर कह रहे हैं कि वह व्यर्थ ही उन्हें भार उठाने को दे रहा है, क्यों नहीं वह अपना मुंह खोल कर सारा काम खत्म कर डालता। उन लोगों के बार-बार हठ करने पर वह मुंह खोल देता है, और वह लोग बड़ी सतर्कता से सावित्री की अर्थी उस के मुंह में घुसेड़ देते हैं। वह अर्थी धीरे-धीरे उस के गले में से ढलती उस की छाती में जा फंसती है। वह चीखता है, तड़फड़ाता है। मिट्टी में लोट-पोट हो जाता है। पर वे चार व्यक्ति अपना काम खत्म होने पर पल भर वहां नहीं रुकते।

आधा घण्टा बीत जाता है उसे मुर्दे से पड़े हुए। उस के कानों में, अचानक 'चप्प-चप्प' की आवाज़ सुनाई देती है। वह बड़बड़ाता हुआ उठ खड़ा होता है। वह देखता है कि उस के पैरों के पास काले रंग का एक पिल्ला खड़ा है। पिल्ले के थूक से लिथड़े हुए अपने गालों पर वह हाथ फेरता है और हंसने लगता है।

अब वह ज़मीन पर बैठे-बैठे उस पिल्ले से खेलने लगता है। वह कभी उस की मुलायम पीठ पर हाथ फेरता है, कभी उसे दुम से पकड़ कर अपनी तरफ घसीटता है। कभी उसे अपनी टांगों में लेकर दबाने लगता है।

अब वह पिल्ले को उस के कानों से पकड़ कर उठा लेता है, वह देखना चाहता है कि पिल्ला 'पिस्ती' नस्ल का है या नहीं। हलकी नस्ल का होता तो यह जरूर 'चौं, चौं' करने लगता, यह तो चुप-चाप हवा में लटक रहा है, यह ज़रूर किसी बढ़िया नस्ल का कुत्ता है। वह भी 'पिस्ती' ही थी—बिना किसी को कुछ बताये उस ने मरना स्वीकार किया। पर उस की मां उस नस्ल की नहीं। इस गली के तमाम लोग

ही उस की मां के समान हैं। सब घटिया कुत्तों के समान हवा में लटक कर 'चौं, चौं' करने लगते हैं। उस के होंठों पर एक ज़हरीली मुस्कान आ जाती है।

शराब का नशा कुछ कम हुआ है। अब वह सोच रहा है कि उसे वहां से उठ जाना चाहिए। कुल चार कदम तो चलना है। यह तो घर है।

पिल्ला उस की छाती में मुंह घुसेड़ रहा है। उस की छाती के बालों में पिल्ले के मुंह मारने से गुदगुदी होने लगती है। उसे पिल्ले पर प्यार आ जाता है। प्यार में वह उसे बांहों से दबाता है, दबाव कुछ ज्यादा ही पड़ जाता है, और हवा में एक मरी हुई 'चौं' की आवाज़ सुनाई देती है। वह डर जाता है। पिल्ले को दुम से पकड़ कर परे फेंकता है। वह आंखें फाड़-फाड़ कर पिल्ले की ओर देख रहा है। पिल्ला उठता नहीं, वह हिलता-डुलता भी नहीं, जैसे पड़ा है पड़ा रहता है।

वह कांपता हुआ आगे बढ़ता है। अपने बूट की नोक से वह पिल्ले को सीधा करता है। पिल्ले के दांत खुले हुये हैं, आंखें बाहर निकल आई हैं, और मुंह में से थूक बह रहा है।

मर गया साला। जिस के साथ पल भर खेलता हूं वही मर जाता है। जिसे अपने छाती की गर्मी देता हूं, वही दूर हो जाता है। मर जाओ सालो—सभी मर जाओ।

वह पिल्ले के ऊपर पेशाब कर देता है। सावित्री को, सावित्री की मां को, सभी गली वालों को दांत भींच-भींच कर गालियां निकालने लगता है। फिर एक पत्थर उठा कर ज़ोर से बिजली के बल्ब की तरफ फेंकता है। बल्ब 'फक्क' से फूट जाता है।

अब आसमान से लेकर ज़मीन तक सिर्फ तारकोल ही तारकोल पुता हुआ है।

वह गली के भीतर आ जाता है। गिरता-पड़ता आगे बढ़ रहा है। लहराते हुए दाएं तरफ जाकर वह दरवाज़े पर हाथ मारने लगता है, फिर एक और लहर आती है और वह बाएं तरफ की खिड़कियों पर हाथ मारने लगता है। फिर एक लहर—'ताड़...ताड़...,' फिर दूसरी

लहर ठल...ल...ठल्ल...र...र...र—इसी तरह लहराते-लहराते वह दूर निकल जाता है।

दरवाजों और खिड़कियों की खट...खट...से कई लोग जाग पड़ते हैं, और खिड़कियों के सीखचों में से गली के अंधेरे को घूरने लगते हैं। लेकिन अंधेरे से डर कर फिर खिड़कियां बन्द कर लेते हैं।

अब वह रुक गया है। उसे कुछ पता नहीं कि वह कहां आ रुका है। वह कभी आगे देखता है कभी पीछे। चारों ओर सिर्फ अंधेरा है।......और उस अंधेरे में दो जलती-सुलगती आंखें जाग पड़ती हैं। उन आंखों की लौ जलती हुई चिता की लौ जैसी है। वे मोटी-मोटी आंखें बड़ी तेजी से उस के इर्द-गिर्द उड़ने लगती हैं। आंखों के सेंक से अपने आप को बचाने के लिये वह कभी बैठ जाता है, कभी अपने सिर को अपनी बांहों में छिपा लेता है। कभी घबरा कर उठ खड़ा होता है। पर वे आंखें उस का पीछा नहीं छोड़तीं।

अब वह हवा में मुक्के मार रहा है। कितनी ही देर वह मुक्के मारता रहता है और फिरे वे दो आंखें उस से दूर होने लगती हैं। वे उड़ती जाती हैं—उड़ती जाती हैं—और फिर अंधेरे के विस्तार में खो जाती हैं। वह पल भर सुख का सांस लेता है। पर अभी उस के माथे का पसीना सूखा ही है कि उस के कानों में भारी जूतों की आहट सुनाई देती है। वह घबरा कर उस आवाज को सुनने लगता है।

सीटियां बज रही हैं। जूतों की आवाज आ रही है। हत्थकड़ियां छनछना रही हैं—और सैंकड़ों, हजारों लोगों की आवाजें उभरने लगती हैं—'पकड़ो—मारो—फांसी पर लटका दो।'

'आओ, आओ हरामियों—आओ—मेरे हाथों तक पहुंचो पिल्लो—मैं एक-एक को मसल दूंगा। मेरी गली के पाप पर मेरी छाती का पर्दा पड़ा हुआ है—कौन माई का लाल उसे बेपर्दा करता है? वह पूरे जोर से चीखता है पर अपनी आवाज उसे सुनाई नहीं देती।

अब लोगों की वे आवाजें उस के बिलकुल पास आ गई हैं। कई हाथ उसे अपनी तरफ लपकते हुए नजर आते हैं। वह डर जाता है। उस के नशीले पैरों में फुरती आ जाती है। वह दौड़ने लगता है, लेकिन जल्दी ही गिर पड़ता है। उस का सिर दीवार से टकरा कर फट जाता

है। थोड़ी देर तक वह वैसे ही पड़ा रहता है। लेकिन फिर वह साहस जुटाता है और अपने आप को सम्भालता है, उठता है।

'पकड़ो।'

'मारो।'

'फांसी पर लटका दो।'

अब वह दीवार से संघर्ष कर रहा है। बांहों में जितनी भी शक्ति है, वह दीवार को रास्ते से हटाने में लगा रहा है। आखिर दीवार की ईंटें हिलने लगती हैं, एक बड़ा सा सुराख हो जाता है। उस सुराख में पहले वह एक टांग घुसेड़ता है, फिर दूसरी, और फिर उस का सारा धड़ उस सुराख में घुस जाता है।

सवेरे के छः बज गये हैं, पर साहुकारों की गली उस समय तक नहीं जागती जब तक कि धूप सिर पर नहीं आ जाती।

टाऊन एरिया कमेटी की मेहतरानी सुलतानी गली में झाड़ू देने आई है। आते ही सब से पहले वह मरे हुए पिल्ले को देखती है—'मर मुआ, तुझे भी यहीं मौत आनी थी।' वह बड़बड़ाते हुए आगे बढ़ जाती है। चलते-चलते वह एकाएक रुक जाती है, सामने राम देई का घर है—'अनर्थ हुआ बेचारी के साथ!' कहते-कहते वह और आगे चल दी। वह गली में हमेशा दूसरे सिरे से बुहारना शुरू करती है। गली की आखिरी दीवार के पास पहुंचते ही उस के हाथ से टोकरा और झाड़ू छूट जाते हैं—'ओ गली वालो' वह जोर से चीखती है। एक कदम और आगे बढ़ कर वह सामने पड़ी हुई लाश को देखती है—'यह तो साहूकार का बेटा है।'

'ओ—' वह साहूकार का नाम लेने ही लगती है कि उसे याद आता है, सांझी शाह का नाम सुबह-सुबह कोई नहीं लेता। लेकिन दूसरे ही क्षण वह इस बात को भूल जाती है और दौड़ती हुई चिल्लाती है—'ओ सांझी शाह, तुम लुट गये।'

सुलतानी की चीखें सुन कर गली के दरवाजे और खिड़कियां खुलने लगती हैं।

कमरा नम्बर आठ

धर्म चन्द 'प्रशान्त'

चम्पा हाथ लैम्प पकड़े सैनेटोरियम के बरामदों में घूम रही थी। उस की ऊंची एड़ी वाली सैण्डल की टपटप कमरों के अन्दर बीमारों के कान में पड़ रही थी। वह सहसा कमरा नम्बर आठ के दरवाजे पर आकर रुक गई।

बटोत के घने जंगल में तपेदिक का हस्पताल कई वर्षों से चल रहा था परन्तु कोई चार वर्ष चम्पा यहां नर्स बन कर आई तो रोगियों ने समझा कि उन के लिये स्वर्ग से एक देवी उतर आई। बीमारों की सेवा करना उस का एक मात्र लक्ष्य था। उस ने कभी भी किसी टी० बी० के बीमार से घृणा नहीं की।

उस ने देखा आठ नम्बर वाले कमरे का दरवाजा कुछ खुला है, अन्दर किसी के कराहने की आवाज आ रही है। वह अन्दर चल गई। वहां एक बीमार चारपाई पर लेटा कराह रहा था।

उस ने लैम्प मेज पर रख दी और बीमार के पास आकर खड़ी हो गई।

'आज ही आए हो ?'

बीमार ने सिर हिला कर हां की सूचना दी। उस के पास लकड़ी की तख्ती पर चार्ट लगा था उसे पढ़ने लगी वहां लिखा था।

नाम मोहन। आयु २८ वर्ष। बीमारी टी० बी०।

उस ने चार्ट फिर टेबिल पर रख दिया और बीमार की ओर देखने लगी। वह गौर वर्ण का सुन्दर नवयुवक था परन्तु उस का चेहरा

बिल्कुल पीला । नर्स ने देखा उल की आंखें अन्दर धंस गई हैं और चारों ओर काली स्याही फिरी हुई हैं। उस के मुंह पर कोई मुस्कराहट नहीं। वह संसार से और जीवन से बिल्कुल निराश हो कर मृत्यु की अन्तिम घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है।

लैम्प की रोशनी बीमार के मुंह पर पड़ रही थी । वह उस की ओर देख रहा था । उस ने देखा नर्स असाधारण है उस के मुंह पर मुस्कराहट खेल रही हैं। आंखों में प्रेम है, दया है और ममता।

बाहिर से शीतल वायु मन्द-मन्द चल रही थी । रात के सन्नाटे में पास बहने वाली नदी की मधुर गर्जन सुनाई दे रहा था। उस कमरे में चार आंखें टकरा रही थीं । दो में घोर निराशा और दो में आशा की झलक।

चम्पा ने जेब से थर्मामीटर निकाला और मरीज को बिना पूछे उस की जीभ के नीचे रख दिया। एक हाथ में घड़ी पकड़ ली और दूसरे से उस की नाड़ी दबा ली । कोई पांच मिंट के उपरान्त उस ने मोहन के मुख से थर्मामीटर निकाल कर उसे देखा और झटक कर और स्पिरिट से साफ कर जेब में रख लिया और फिर चार्ट पर कुछ लिखा।

उस ने तिपाई पर दवाई की शीशी को भरा देख कर समझ लिया कि बीमार ने दवाई पी नहीं है । शीशे के छोटे से गिलास में एक खुराक डाल कर उस ने मोहन के होंठों के पास किया और बोली। 'पी लीजिये'।

उस ने सिर हिला कर कहा—'नहीं। मैं दवा नहीं पीऊंगा।'

वह हंस पड़ी। भला क्यों ? सुनूं तो...... ।

'मैं यहां मरने के लिये आया हूं, जीने के लिये नहीं।'

चम्पा अट्टहास कर उठी। उस की मधुर हंसी पर्वतों से जा टकराई। 'यह हस्पताल है' शमशान घाट नहीं । हम मरीजों को ठीक करने के लिये यहां लाते हैं, मारने के लिये नहीं।"

मोहन बड़े निराश भाव में बोल उठा—'मैं बच नही सकूंगा, कहे देता हूं।'

चम्पा ने उत्तर दिया—'हम दवाई के मामले में बीमारों को बहस में पड़ने नहीं देते हैं। यह कहते-कहते उस ने मोहन को दवा पिला दी।

बीमार बोल उठा—'मेरी दो बातें सुनते जाओ।'

चम्पा कुर्सी पास करके उस पर बैठ गई। मुंह पर हाथ धर कर वह बीमार की ओर देखती रही। उस के मुख पर मुस्कराहट थी।

लम्बी सांस खींच कर मोहन ने कहा—'मुझे सम्बन्धी छोड़ चुके हैं, मित्र दूर हो गये हैं। सचमुच बीमारी ने मुझे सब से दूर कर दिया है। मुझ से सभी भागते हैं। कोई मुझे प्रेम की दृष्टि से भी नहीं निहारता है।'

उस की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली।

चम्पा फिर हंस पड़ी और बोली—'बस यही तकलीफ है न। कोई चिंता न करो। इस हस्पताल में हम रोगियों के कष्ट को अपना कष्ट समझते हैं। उन्हें प्यार देते हैं और लेते हैं।'

कुछ देर बाद वह फिर बोली—'मोहन बाबू! आप की बीमारी अधिक तो नहीं है, ठीक हो सकते हैं आप!'

मोहन की आंखों में आशा की धीमी सी किरण दिखाई दी। चम्पा ने बिस्तरे का कम्बल चारों ओर दबा दिया और पूछा—'किसी चीज़ की आवश्यकता तो नहीं?'

पता नहीं कितने समय बाद उस के मुख पर तनिक सी मुस्कराहट दिखलाई दी। वह बोल पड़ा'—नहीं।'

लैम्प उठा कर चम्पा टप टप करती कमरे से बाहिर चली आई। दरवाजा उस ने बन्द कर दिया।

उस के जूतों की टप टप सारे बीमारों के कानों में पड़ रही थी।

दूसरे दिन मोहन चम्पा के आने की प्रतीक्षा में कुछ सोच रहा था। बाहिर से उसे उस का अट्टहास सुनाई पड़ा। उस ने झट दबा पी ली। वह अन्दर आ गई और हंसते-हंसते बोली—'कहो जी, कैसा हाल है।'

वह केवल मुस्करा पड़ा। चम्पा ने थर्मामीटर लगाया और फिर चार्ट पर कुछ लिखा और बैग से इन्जैक्शन वाली सूई निकाल कर उस में दवाई भर दी।

मोहन बोल उठा—इन से मेरी भुजायें और पीठ के नीचे का भाग भी छलनी हो चुका है, रहने दो।'

उस ने उस के वक्ष-स्थल पर स्पिरिट मलते हुए कहा—'मोहन बाबू, हस्पताल में ये बातें नहीं कही जातीं।' इतना कहते-कहते उस ने सूई लगा दी। उस के उपरान्त नर्स ने बीमार की पीठ और छाती पर पाऊडर मला।

कई वर्षों उपरांत स्नेह का हाथ पीठ पर फिरते देख कर मोहन को अपनी मां का स्मरण आ गया। कितने प्यार से वह उसे सहलाती थी! परन्तु मां की मृत्यु के बाद उसे स्नेह कहीं नहीं मिला। पुरानी याद ने उसे रुला दिया। आंसू आंखों से गिरने लगे।

चम्पा उस की चारपाई पर बैठ गई और पास पड़े हुये रुमाल से उस की आंखें पोंछते-पोंछते बोली—'रो क्यों पड़े हो? कुछ सुनूं तो।'

मोहन चुप रहा।

उस ने उस के सिर के बाल सहलाते हुये पूछा—'क्या कोई रहस्य है इस में?' 'कोई नहीं। मुझे मेरी मां याद आ गई। यह प्यार मुझे कई वर्षों के बाद मिला है।'

'क्या बहन या और कोई नहीं है?'

केवल बड़े भाई की पत्नी है परन्तु बीमार पड़ जाने के बाद वह मुझ से दूर भागती है।

'और भाई!'

वह भाभी की इच्छा के बिना कुछ नहीं कर सकते।

'और व्याह भी नहीं हुआ है?' पूछते हुए चम्पा के होंठों पर मुस्कराहट खेलने लगी।

नर्स ने समझ लिया कि बीमार प्यार का भूखा है। उस के हृदय में प्रेम का समुद्र है जिस की लहरें बीमारों को स्नान कराती है। यह बीमारों को दोनों हाथों से प्यार लुटाती चलती है।

वह कह उठी—'इस सैनेटोरियम में किसी भी बात की कमी नहीं है।' उस ने बड़े स्नेह की दृष्टि से मोहन को देखा और हंसते-हसते कमरे से बाहिर चली गई। उस के जूतों की टप-टप सुनाई पड़ रही थी।

हस्पताल में उसे आये हुए एक सप्ताह हो चुका है। इस समय में

चम्पा ने हृदय से उस की सेवा की है। वह जो भी दवाई देती है मोहन हंसते-हंसते ले लेता है और जो वह देती है उसे वह अमृत समझता है। पहले ही हफ्ते में मोहन का ज्वर एक दर्जा घट गया। उसे विश्वास हो गया है कि चम्पा उसे ठीक कर देगी।

एक दिन चम्पा दवाई पिला रही थी, कहने लगी—'मुझे विश्वास है आप ठीक हो जायेंगे।'

मोहन ने उत्तर दिया—'पहले तो मैं इसे स्वप्न मानता था परन्तु अब आशा की किरण दिखलाई पड़ रही है।'

उस ने फिर स्नेह भरी दृष्टि से चम्पा की ओर देखते हुये कहा—'मुझे अपने जीवन से कुछ मोह-सा हो रहा है। परन्तु चम्पा इस का कारण केवल तुम हो। बताओ तो कौन सा अमोघ मन्त्र है तुम्हारे पास ?

यह सुन कर चम्पा जोर से अट्टहास कर उठी और बोल पड़ी—'मेरे पास कोई भी अमोघ मंत्र नहीं है। मैं केवल अपने कर्त्तव्य को पहचानती हूं, और कुछ नहीं।'

चम्पा ने एक हाथ से मोहन के बिखरे हुये बालों को सहला दिया।

वह हस्पताल के सभी बीमारों से अधिक मोहन की सेवा कर रही थी। वह कभी चिन्तित हो उठती थी कि यह नाटक कहीं दुखदायी ही न बन जाए। वह समय पर उसे पथ्य देती थी और समय पर दवाई पिलाती थी। दिन में आठ-दस बार कमरा नम्बर आठ में चक्कर लगा लेती। आते-जाते कोई हंसी की बात अवश्य ही कर देती।

मोहन को हस्पताल में आये एक माह हो चुका था। उस का स्वास्थ्य सुधरता जा रहा था। ज्वर भी उस का कुछ कम हो गया और खांसी भी घट रही थी। वह कभी-कभी बिस्तरे पर बैठ जाता। उसे हर समय चम्पा का ध्यान रहता। जब वह कमरे से बाहिर चली जाती तो उस का रास्ता देखता रहता है।

एक दिन चम्पा उसे दवाई पिला रही थी, पूछ बैठीं—'आप राजी तो हो ही जायेंगे। घर जाकर विवाह कर लेना।'

मोहन ने कुछ देर ठहर कर कहा—'मेरी सगाई तो हुई थी परन्तु ।' उस ने तत्क्षण पूछते हुए कहा—'परन्तु फिर क्या हुआ ?'

'जब मैं बीमार पड़ गया तो उसे किसी और से विवाह करने को कह दिया था।'

वह कौन है ?

'स्कूल में मास्टरानी है।'

'नाम क्या है उस का ?'

'कमला।'

चम्पा ने कुछ सोचते हुए पूछा—'क्या उस ने कहीं विवाह कर लिया है ?'

मोहन ने कहा—'इस का कुछ पता नहीं। मेरा उस के साथ कोई पत्र व्यवहार नहीं हुआ। शायद वह मुझे मरा हुआ समझ रही होगी।'

चम्पा का हाथ सहसा मोहन के मुख पर चला गया। अपने पतले हाथ उस के होंठों पर रखते हुए बोली—भगवान् के लिए ऐसा न कहो।'

कुछ देर बाद उसने कहा—'क्या मैं उस का पता लगाऊं ?'

सिर हिलाते हुए उसने कसा—'इस की क्या आवश्यकता है। मैं उसे भूल चुका हूं। मुझे तो अपने जीवनदान देने वाली के सिवा किसी और का पता ही नहीं है।' यह कह कर उस ने चम्पा का हाथ पकड़ लिया।

चम्पा चुप चाप बैठी रही।

उस ने हंसते-हंसते कहा—'भला इस हस्पताल में बीमार को पिछली बातें याद भी रह सकती हैं ?'

उस ने चम्पा का हाथ दबाते हुए कहा—'तुम्हारे सिवा मेरा इस संसार में और है भी कौन ?'

चम्पा ने जान लिया मोहन क्या चाहता है। वह बोली—'पहले पूरी तरह स्वस्थ तो हो लें। ये बातें तो पीछे की हैं।'

मोहन की छाती पर से बड़ा बोझ उतर गया। चम्पा को ऐसा जान पड़ा कि जिस स्थान पर यह नाटक आन पहुंचा है अब उस से पीछे हटना मोहन के लिए असम्भव होगा। उस ने हृदय में सोचा कि इस परित्यक्त व्यक्ति को बचाने के लिये उसे बलिदान विशेष तो नहीं देना पड़ेगा ? क्या उस में वह क्षमता भी है ?

मोहन को हस्पताल में आये एक वर्ष हो गया, उस की हालत

बिल्कुल ठीक हो गई थी। उस की छाती का फोटो जम्मू भेजा गया था, वह भी वहां से वापिस आ गया। बड़े हस्पताल में मोहन को स्वस्थ घोषित किया गया था।

मोहन के ठीक हो जाने पर सारा हस्पताल प्रसन्न था और चम्पा तो हर्ष में समा नहीं रही थी।

मोहन की प्रसन्नता का तो ठिकाना ही नहीं था परन्तु उसे अधिक हर्ष इस बात का था कि उस ने चम्पा को पा लिया था। यह बात हस्पताल के सभी लोग जानते थे कि चम्पा का हृदय जीतना मोहन का ही काम है। वे मोहन को बड़ा भाग्यवान समझ रहे थे। सब को यही विश्वास था कि चम्पा विवाह करने के लिये तैयार हो चुकी है परन्तु चम्पा और मोहन ने इसे रहस्य ही रहने दिया।

एक दिन डाक्टर ने मोहन को मुबारिकबाद दी और कहा कि वह हस्पताल से जा सकता है। मोहन ने जम्मू की दो सीटें बुक करवा लीं और यह बात भी उस ने गुप्त ही रखी।

दूसरे दिन वह प्रातः उठ बैठा और चलने की तैयारी करने लगा परन्तु अभी तक चंपा बीमारों की सेवा में तल्लीन थी। वह कुछ समय बाद कमरा नम्बर आठ में आ गई।

मोहन ने अपने दोनों हाथ उठाकर उसके कन्धों पर रखते हुये कहा है—'चम्पा तुम तो आज भी बीमारों का साथ नहीं छोड़ रही हो। बाहर बस इन्तजार कर रही है।'

चम्पा ने मन में कहा तुम्हें क्या पता है कि मुझे इन से कितना प्रेम है? परन्तु वह बोल उठी—'मोहन बाबू ये लोग मुझे थोड़ा भी अवकाश नहीं देते हैं।'

मोहन ने हंसते हंसते कहा—'अब तो तुम्हें अवकाश ही अवकाश है। अच्छा अपना सामान लाओ, बस चलने ही वाली होगी।'

वह मुस्कराकर बोली मेरे पास सामान ही कितना है? जो भी है वह बस तक पहुंचा चुकी हूं।

यह सुन कर उसकी छाती पर से बड़ा भारी बोझ उतर गया। उसकी भुजा पकड़ कर बाहर ले गया और बोला—'सब से बिदा मांग लो, चम्पा।'

दोनों को कमरे से बाहिर निकलते सब ने देखा। डाक्टर चम्पा के पास आ गये। एक ने कहा—'चम्पा क्या सचमुच ही तुम जा रही हो हस्पताल छोड़कर? परन्तु तुम्हारा त्याग-पत्र कहां है?' चम्पा नीची आंखें किये खड़ी थी। सब उसका उत्तर सुनना चाहते थे।

वह डाक्टर फिर बोला—'चम्पा! विश्वास नहीं आ रहा है कि तुम सचमुच ही जा रही हो। तुम तो हस्पताल को मन्दिर कहती थी और बीमारों को देवता। फिर आज क्या हो गया?

चम्पा ने सिर नीचा कर लिया और मोहन के पीछे चल पड़ी। गेट के बाहिर आकर चम्पा ने फिर हस्पताल की ओर नजर दौड़ाई और जो कुछ उसने देखा, वह गद गद हो उठी।

डाक्टर, नर्सें और सारे बीमार कमरों से बाहिर निकल आये थे और सभी फूट फूट कर रो रहे थे। सब की आंखें उसकी ओर थीं और प्रणाम कर रहे थे। कितना सफल जीवन था उसका?

चम्पा ने दोनों हाथों से सब को प्रणाम किया और कदम आगे की ओर किये। मोहन की छाती का बोझ और भी हल्का हो गया। उसने कदम तेज कर दिये। डाक्टरों ने समझ लिया कि चम्पा में स्त्री की कमजोरी चली आई है। वे लोग उसी की ओर देखते रहे जब तक कि वह आंखों से ओझल नहीं हो गई।

आगे बस उनका इन्तजार ही कर रही थी। बस ने पास आकर मोहन ने कहा—'चलो अन्दर बैठें।'

चम्पा ने पूर्ववत अट्टहास करते हुये कहा—'बस मेरा यहीं तक तुम्हारा साथ है, मोहन बाबू।'

मोहन का खिला हुआ चेहरा मुर्झा गया। उसने ऐसा प्रतीत किया कि मानो उसकी छाती पर किसी ने पत्थर मार दिया है। परन्तु अपने आपको बड़ी कठिनाई से सम्भालते हुये कहा—'यह भी कहीं हो सकता है?'

वह बड़ी गम्भीर होकर बोली—'मोहन बाबू! मेरे प्राण इस हस्पताल के अन्दर बन्द हैं। मैं मर कर ही यहां से निकल सकूंगी।' वह कुछ उत्तेजित हो उठा और बोल पड़ा—'तुम ने तो विवाह का वचन दे रखा था।'

यह सुन कर वह ठहाका मार कर हंसी और कह उठी—'मैं तो प्रत्येक टी० बी० के बीमार से विवाह कर लेती हूं और जब वह ठीक हो जाता

है तो तलाक दे बैठती हूं। मुझ में यह बड़ा दुर्गुण है। है न?'

परन्तु मैं यहां से अकेला कभी नहीं जा सकूंगा। यह तुम्हें कहे देता हूं।' यह कह कर वह तिलमिला उठा। वह दोनों बस की खिड़की के पास ही खड़े थे। चम्पा ने खिड़की खोल दी और फिर हंस पड़ी। उसने कहा—तुम्हें अकेले जाने भी कौन देगा। मैंने इसका प्रबन्ध कर लिया है।' फिर उसने हाथ से अन्दर सीट की ओर इशारा करते हुए कहा---'देखो तो अन्दर कौन बैठा है?'

मोहन आश्चर्य में आ गया। सीट पर उसकी मंगेतर कमला बैठी थी।

ड्राईवर ने आवाज दी—'चलिये बाबू जी देर हो रही है।' उसने गाड़ी चला दी।

चम्पा ने मोहन को गाड़ी में धकेलते हुये कहा—'अन्दर बैठ जाओ न। आज के बाद कमला तुम्हें सम्भालेगी।' उसने दरवाजा बन्द कर दिया। वह गाड़ी में बैठ गया और गाड़ी चल पड़ी।

चम्पा ने जेब से रुमाल निकाल लिया और हिलाते हिलाते बोली—'मोहन बाबू! जीवन की मञ्जिल बड़ी लम्बी है, कभी मिलेंगे।' मोहन ने देखा चम्पा की आंखों से आंसू निकल रहे हैं। परन्तु जो उस से बीती थी उसका पता केवल चम्पा को था।

●

भ्रातृघाती

हरि कृष्ण कौल

मुझे देखते ही '——' साहब के चेहरे का रंग जैसे उड़ गया। वह तनिक पीछे हट गया। मेरी आशंका सही साबित हुई थी। मैंने और अधिक समय नष्ट करना उचित न समझा तथा बड़े ही आदर और आज्ञाकारी भाव से निवेदन किया—'जनाव, मैं वह नहीं हूं। मैं उस का जुड़वां भाई हूं। जुड़वां होने के कारण ही हमारी शक्ल व सूरत आपस में मिलती है।'

उस ने मुझ पर नख से शिख तक दृष्टि डाली। मेरा सजा संवरा शरीर, मेरे साफ़ व सुन्दर कपड़े और मेरा हाथ जोड़ कर मुस्कराने का अंदाज देख कर शायद उसे भी विश्वास हुआ कि मैं वह 'दलिद्दर' नहीं हो सकता हूं। कुछ समय के लिए हम दोनों चुप रहे और तब उस ने पूछा—'इधर कुछ दिनों से वह दीखा नहीं। कहां है आज कल ?'

'जनाब, वह परसों मर गया।'

सुन कर '——' साहब की छाती पर बैठा बोझ जैसे हट गया। वह ज़ोर से हंस पड़ा। मैं भी मुस्कराया। फिर वह सहसा गम्भीर हो गया। मैंने भी अपने चेहरे पर गम्भीरता लाई।

'वैसे तो वह बड़ा ढीठ था। मगर मानना पड़ेगा कि उस की कलम में ज़ोर था।'

'होगा, मगर जनाब उस का लाभ ?' मैंने कहा—'हमारे घर में रोटियों के लाले पड़ गये थे। हज़ूर, यह आप को महानता और शालीनता है कि आप उस के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहना चाहते हैं। लेकिन मैं खुद कहूंगा कि वह एक आवारा आदमी था। उस ने अपनी जिन्दगी

खराब कर दी। अपना घर बर्बाद किया। आप ने फरमाया कि उस की कलम में जोर था। यह एक गलतफहमी थी जिस का वह खुद भी शिकार था। यदि यह बात सही होती तो उसे सरकारी अकादमियों के पुरस्कार नहीं मिले होते? जनाब आज कल शख्सी राज थोड़े ही है? आज तो प्रजातंत्र है। आज कल प्रतिभा और योग्यता देख कर ही ये पुरस्कार और उपाधियां बांटी जाती हैं।'

'——' साहब हंस पड़ा। मैं भी मुस्काया।

'घर वालों को उस की मौत पर बड़ा दुःख हुआ होगा?'

'जनाब नहीं! बाप तो पहले ही उस से बेज़ार था। हां, मां के मन में उस के लिये ममता ज़रूरी थी। वह उस के लिये कुछ भी करने को तैयार थी। वह जाने कहां-कहां आवारा घूम फिर कर रात के एक दो बजे घर लौटता और वह बेचारी 'टूर' में भात परोसे उस के इतिजार में उस समय तक जागी रहती। लेकिन बाद में उसे भी तसल्ली हो गई।'

'तुम ने उसे कभी नहीं समझाया?'

जनाब बहुतेरा समझाया पर व्यर्थ। ललद्यद ने जो कहा है मूढ़ को ज्ञान की बात नहीं बतानी चाहिए......'

'——' साहब सहसा उठ खड़ा हुआ: मैं भी उठा। वह दाहिनी ओर के दरवाज़े से भीतर चला गया। मैं फिर सोफे पर बैठ गया। सचमुच मैंने उसे बहुत समझाया था। मैं प्रायः उस के सामने लम्बे भाषण देता था। अपनी सारी बुद्धिमत्ता झाड़ता था। वह मेरी बातें चुप-चाप सुन लेता और सुन लेने के बाद बस धीरे से मुस्करा देता। उस की मुस्कराहट देख कर मुझे अपना आप क्षुद्र और अपनी बातें खोखली मालूम पड़तीं। आखिर मैंने उसे खत्म करने का निर्णय ले ही लिया। मुझे विश्वास हो गया कि ऐसा करना बहुत जरूरी है, अन्यथा मुझे कभी उभरने का अवसर ही नहीं मिलेगा। मैंने अनेक बार उस का गला घोंटने की बात सोची। किन्तु ज्योंही उस के साथ आंखें चार होतीं, मेरे हाथों की शक्ति जवाब दे जाती तथा सारे शरीर से पसीना छूटता। हां परसों एक ऐसी बात हुई जिस की मुझे आशा नहीं थी। आधी रात को जब वह घर लौटा तो उस की आंखों में आंसू थे। मुझे देखते ही वह मुझ से लिपट गया और आंखों में बन्द आंसू सहसा बह निकले।

मैंने उस के आंसू पोंछ कर उस से इस दुःख का कारण पूछा। उस ने कहा —'मेरे भाई, तुम मेरे इन फटे पुराने कपड़ों पर हंसते थे। मेरी फाका मस्ती का मज़ाक उड़ाते थे। मगर मैं बुरा नहीं मानता था। उलटे मुझे तुम पर दया आती थी। मैंने तुम से कभी नहीं कहा, मगर मेरे पास बहुत कुछ था। मैं लाचार मोहताज नहीं था। मैंने एक बहुत बड़े आदमी के पास लाख रुपये अमानत के तौर पर रखे थे। लेकिन आज मैंने उसी आदमी के द्वार पर दिन में दीया जलते देखा। उस का दीवाला निकल गया। वह आज कंगाल बन गया है। मैं उस के मकान के सामने गली में फफक-फफक कर रोने लगा। अड़ोस-पड़ोस के बहुत से लोग घरों से बाहर आये। मेरी दास्तान सुन कर वे मुझ पर ही हंसने लगे। कहने लगे कि वह आदमी हमेशा ही कंगाल था। मैंने ही उसे करोड़पति समझने की भूल की थी......'

मैं ने उसके मुख को सूंघ लिया। शायद आज उस ने एक आध बोतल ज्यादा ही चढ़ा ली थी। तभी कंगाल होकर भी लाखों और करोड़ों की बात कर रहा था। फिर वह ज्यादा ही बहक गया और परस्पर असम्बद्ध बातें बकने लगा। कभी कम्यूनिज्म की बात करने लगा और कभी चैकोस्लोवाकिया के म्यूज़िक हालों के क़िस्से सुनाने लगा। कभी सोशलिज्म झाड़ने और कभी इनकम-टैक्स एक्ट के नियम-उपनियम बकने लगा। इसके बाद बापू के अहिंसावाद पर भाषण देने लगा और फिर उसे बीच में ही छोड़कर अहमदाबाद की कपड़ा मिलों का वर्णन करने लगा। आखिर वह शिथिल होकर फर्श पर गिर पड़ा। मैंने यही समय उपयुक्त जाना। अपने हृदय को दृढ़ किया, खुदा से हिम्मत मांगी और रात के अंधेरे में उसका गला घोंट दिया। उसकी आंखें फूट कर बाहर निकल आईं और वह शीघ्र ही ठंडा हो गया। सुबह सब ने उसकी लाश कमरे में चित्त पड़ी देखी। उसकी बाहर फूट पड़ी आंखें बड़ी भयानक लग रही थीं। उसका मुख चादर से ढांपने से पूर्व जब हम उसकी आंखें बन्द करने लगे तो उन से आंसू की दो मोटी बूंदे टपक पड़ीं।

'......' साहब ने पुनः ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। मैं उठ खड़ा हुआ और उनके बैठने पर मैं भी बैठ गया।

'क्या सोच रहे थे ?' उसने पूछा।

'जवाब कुछ नहीं, बस आपकी रुचि की दाद दे रहा था। इन दीवारों का यह रंग, सोफों का यह डिज़ाइन, इन चित्रों और कला-कृतियों का चयन......जनाब आप स्वयं भी बहुत बड़े कलाकार हैं।'

वह हंस पड़ा। मैं भी मुस्कराया।

'तुमने भी अपना ड्राइंग रूम कुछ इसी तरह सजाया होगा। क्यों?'

'जनाब, कैसा ड्राइंग रूप? उस बदबख्त की कृपा से हम मिट्टी के एक कच्चे बोसीदा मकान में रह रहे हैं।'

'तो आप प्लाट के लिये दरख्वास्त दीजिए। फिर देखिये खुदा क्या करता है।'

मन ने गवाही दी कि खुदा जो करेगा, अच्छा ही करेगा। कुछ सोचकर मैंने निवेदन किया कि मैंने भी एक पुस्तक लिखनी आरम्भ की है और उसकी भूमिका जनाब से लिखवाने का इच्छुक हूं।

'......' साहब हंस पड़ा। मैं भी मुस्कराया।

मैं प्रसन्नचित्त वहां से बाहर आया। मन गवाही दे रहा है कि खुदा अच्छा ही करेगा। बस केवल एक ही चिन्ता मुझे खाये जा रही है। जाने उस 'दलिद्दर' की रूह मुझे रहने बसने या लिखने देगी? सुना है जिस किसी को इस प्रकार मारा जाता है, उसकी रूह बे-गुनाह लोगों को भी कयामत तक परेशान करती रहती है।

●

घुटन

दीदार सिंह

उफ, वह भी यहीं आके खड़ी हो गई। न जाने यह जान-बूझकर यहां से ही आकर बस पकड़ती है—जान-बूझकर इसी समय आती है जब मैं आता हूं। लो एक-एक पल लम्बा हो गया। घण्टों पहरों लम्बा—नहीं, मीलों लम्बा। इसके आने से समय रुक क्यों जाता है। जल्दी से बस क्यों नहीं आ जाती। ताकि मैं यहां से भाग जाऊं—बहुत दूर। मुझ से इसका सामना नहीं होता। आस-पास की जमीन मुझे छुपने के लिए जगह क्यों नहीं देती।

'बड़ी कड़ाके की सर्दी पड़ रही है' पास से किसी ने कहा।

'बारिश जो नहीं हुई' एक लाला जी बोले।

'ठण्डी हवा हड्डियों में धंसती जा रही है' एक स्त्री ने कहा।

'हवा !' मैं ने इतनी ऊंची आवाज में कहा जो केवल मुझे ही, सुनाई दे—'हवा कहां है। यहां तो कहर की गर्मी पड़ रही है—कहीं पत्ता नहीं हिलता। हर चीज़ झुलस रही है, दम घुटा जा रहा है।'

सचमुच ही मेरे माथे पर हल्का-सा पसीना आ जाता है, मैं ख्याल से अपना माथा पोंछता हूं। वह अब भी खड़ी मेरी ओर घूर रही है, उस की भवें मुझे तनी हुई लगती हैं। लेकिन उस के वक्ष का वह तनाव नहीं रहा जो पहले हुआ करता था, उस का मुख वैसा ही सुन्दर है, लेकिन वहां चंचलता के स्थान पर गम्भीरता आ गई है। उस के चेहरे से अब भी एक लट उलझ रही है, जो किसी टूटी शृंखला का आभास करवाती है, लेकिन उस के बाकी बाल लापरवाही से बिखरे पड़े हैं।

होंठों पर लिपस्टिक नहीं है, माथे पर बिंदी भी नहीं है। समय कितना प्रबल है, समय कितना परिवर्तन ला देता है !

'समय !' यह भी मेरी ही आवाज़ है। 'समय नहीं आदमी परिवर्तन लाता है आदमी के स्वार्थ परिवर्तन लाते हैं।

वह शायद कहीं नौकरी करती है नौकरी नहीं, जीवन का बोझ ढो रही है।

'इन बसों के भी आने-जाने का कोई समय नहीं' पास खड़े एक व्यक्ति के सबर का पैमाना टूट गया, कभी 'कोई बस ठीक समय पर नहीं आती।'

'आज कल किसी चीज़ का भरोसा नहीं।' एक और महाशय बोले।

भरोसा ! हां किसी चीज़ का भरोसा नहीं—व्यक्ति का भरोसा नहीं—वचन का भरोसा नहीं—प्यार का भरोसा नहीं अगर ज़िन्दगी भर पछताना हो तो किसी पर भरोसा कर लो। उस ने भी मुझ पर भरोसा किया था, तभी तो अब पछता रही है—वह अब हमेशा के लिए पछताती ही रहेगी—उस के जीवन में मैंने जो ज़हर घोला है—इस की पीड़ा उसे सहनी पड़ेगी।

उस ने फिर मेरी ओर घूर कर देखा। कितनी घृणा है उस की दृष्टि में। वह अपने शरीर का सारा विष मेरी नसों में भर देना चाहती है। नहीं सहे जाते मुझ से उस के विषैले प्रहार। मेरा सर चकरा रहा है—गला खुश्क हो रहा है ! पानी !!

वह अकेले ही दुःख झेल रही है—मुझे भी उस के दुःख में साथ देना चाहिए। लेकिन दुःख में यहां कौन साथ देता है। मैं ही बेवकूफ़, क्यों बनूं। मैंने तो केवल उस के शरीर का आनन्द लेना था—अपने शरीर की भूख मिटाने के लिए। मैंने तो उस के काले घने केशों से आंख-मिचौली खेलनी थी—उस के होठों से अपने तपते होठों की प्यास बुझानी थी—उस के उरोजों का गर्व तोड़ना था—रातों की तनहाई दूर करने के लिए उस की बाहों का सहारा लेना था ताकि उस के यौवन की सुराही से कुछ प्याले मैं भी पी सकूं।

मैंने उसे कब कहा था कि वह मुझ पर भरोसा करे। यदि भावुकता में आकर मैंने उसे कह दिया था—'डेज़ी हम जन्म-जन्म के साथी हैं हम

साथ जीएंगे और साथ मरेंगे। मैं तुम्हारे बिना ज़िन्दा न रह सकूंगा, तुम मेरे सपनों की रानी हो—मेरे जीवन का एक-मात्र सहारा हो। मैं शादी करूंगा तो केवल तुम से—तुम्हीं मेरे बच्चों की मां बनोगी—तो इस में मेरा क्या दोष है? और क्या मैं उस समय गालियां देता! जो मेरे जिस्म की भूख मिटाती रही हो उसे मैं गालियां कैसे दे सकता था? उसे मेरी बातों का भरोसा नहीं करना चाहिए—उस ने भरोसा करके अपना आत्म-समर्पण कर दिया तो यह उस का दोष है।

दोष तो उस का है, लेकिन उसे देख कर मेरे बदन में कंपकंपी क्यों छिड़ जाती है। यह कपकंपी उसी दिन से छिड़ने लगी है जब उस ने मुझे घबराई हुई आवाज़ में कहा था—

'आनन्द तुम मुझ से प्यार करते हो न?'

'हां, मैंने उत्तर दिया था।'

'मेरा साथ तो नहीं छोड़ोगे?'

'कभी नहीं।'

'तुम चाहते थे न मैं ही तुम्हारे बच्चे की मां बनूं?'

'हां।'

'तो मैं सचमुच मां बनने वाली हूं।'

'क्या बकती हो!'

'ऐसा न कहो आन्नद, मैं सचमुच मां बनने वाली हूं। जल्दी से शादी कर लो।'

'मैं कैसे मान लूं यह मेरा ही बच्चा है।'

'आनन्द!' उस के अश्रुओं का बन्द टूट गया गया। 'आनन्द मुझे नहीं मालूम था तुम इतने धोखेबाज मक्कार निकलोगे! तुम ने मुझे लूट लिया! तुम ने मुझे बरबाद कर दिया—तुम ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा! मैं क्या मुंह दिखाऊंगी।'

मैं सब कुछ सुनता रहा। वह उस समय मुझे जूते भी लगाती तो मैं कुछ न कहता—चुपके से सह लेता। फिर अचानक उस में कोई नारी जाग पड़ी—उस ने अपने आंसू पोंछ लिए और चली गई थी। शायद पत्थर के आगे उस ने सर पटकना अब ठीक नहीं समझा था।

फिर बहुत दिनों तक उसे मैंने नहीं देखा। फिर एक दिन अचानक इस

बस-स्टाप पर उसे देख लिया—तब से रोज, देखता हूं। लेकिन अब हम अजनबी हैं—एक दूसरे को पहिचानते तक नहीं। फिर भी वह मुझे देख कर आग बगोला हो जाती जाती है और मैं उसे देख कर जमीन में धंसता जाता हूं।

इतने में एक बस आती है—सभी लोग उस की तरफ लपकते हैं, वह भी आगे बढ़ती है। मैं पीछे हट जाता हूं—मैं उस बस में नहीं बैठ सकता। डर लगता है कहीं उस के साथ बस में बैठ गया तो मूर्छित न हो जाऊं।

बस चली गई। वह भी अब वहां नहीं है।

'कितनी तेज़ हवा चल रही है।' पास खड़ा एक व्यक्ति कह रहा है।

'हां सर्दी भी बहुत है' यह मेरी आवाज़ है। अब मुझे लगा कि मौसम कुछ खुल गया है। अब माथे पर पसीना नहीं आ रहा और न ही दम घुटता है। अब तो सर्दी लग रही है।

अगली बस आई और मैं भी उस में भीड़ के साथ धंस गया।

●

और कहानी पूरी हो गई

सुरेश शर्मा 'राम'

श्रीराम स्वरूप खन्ना यहां वहां ऐसे ही बेकार चक्कर लगाए जा रहे थे, कभी बालकनी के एक कोने से दूसरे कोने तक जाते और ऐसे ही नीचे नज़र किए हुए वहीं पहले कोने पर लौट आते। वे सोच रहे थे कि अगर आज उन्हें किसी कहानी का प्लाट नहीं सूझा तो घर का काम-काज कैसे चलेगा, वो दो चार कहानियों और थोड़े से वेतन में सारा माह प्रसन्नतापूर्वक काट लेते हैं। अब यही तीसरी और अन्तिम कहानी क्यों दीवार बन के रास्ते में आ खड़ी हुई है। सम्पादक महोदय का पत्र आया था कि अगर आपने पांच दिन तक रचनाएं नहीं भेजीं तो आपकी बुकिंग रद्द कर दी जायेगी। कई दिनों से सोचे जा रहे थे परन्तु जैसे मस्तिष्क ही खाली हो गया हो। कई बार मेज पर रखे गये कई कागज़ आधे आधे लिख कर छोड़े किन्तु व्यर्थ। पत्नी पूछती—'आप एक दो दिन से उदास क्यों हैं', तो वे उसकी बातों में से भाव निकालने लगते।

दो दिन तो सोचते सोचते ही बीत गए। ज्यों ही पांच बजे, वे कुछ व्याकुल से हो गए, अरे यह दिन भी गया और अभी कुछ भी हासिल नहीं हुआ। वे सोचने लगे कि उनकी कहानियां कितनी पसन्द की जाती हैं, फिर आज ऐसे विद्वान का मस्तिष्क क्यों खाली सा हो गया है। वेतन तो आते ही खर्च हो गया था और घर के कई महत्वपूर्ण काम इन्हीं पर निर्भर थे, उनकी आंखों में अनायास ही आंसू आ गए, तभी छोटी लड़की सीमा आई और अपनी मधुर आवाज़ में बोली—'बाबा खाना खा लो।' उन्होंने मेज पर रखी घड़ी पर नज़र डाली—साढ़े आठ बज

रहे थे और घड़ी मानो आज उन्हें खाना न खाने का आदेश दे रही हो, वे एक तरफ हो गये ताकि वह उनके आंसू न देख ले और वहीं से बोले— 'सीमू बेटा आज यहीं ला दो।' निकट के सिनेमा में शो समाप्त हुआ था। लोग आ जा रहे थे, और नए शो से पहले लाऊडस्पीकर फिल्मी गीत गा रहा था। इतने में उन्होंने नीचे देखा वो स्तम्भित हो गए, 'अरे यह तो वही है जिसे उन्होंने उस दिन सागर तट पर देखा था' वे अन्दर आ गए, दरवाजा बन्द कर लिया, खिड़कियां भी बन्द कर लीं। उनका मन स्वयं ही प्रश्न पूछता फिर स्वयं ही उत्तर दे देता।—'अरे इतनी गर्मी में हवा काहे रोक दी, (यह घुटन क्यों पसन्द आ गई) तू भी तो ठण्डा हुआ जा रहा है।' वे अब कुर्सी पर बैठे थे उनके हाथ सिर को सहारा दिए हुए थे और माथे की रेखाएं स्पष्ट बता रही थीं कि वे कुछ सोच रहे हैं। बड़ी लड़की सुनीता आई और बोली— 'खिड़कियां बन्द करके क्यों बैठे हो बाबा तबीयत तो ठीक है न।' उसने खाना मेज पर रखा, खिड़कियां खोल दीं और वापस चली गई। उन्हें लगा कि जैसे खिड़की से हवा नहीं विचार सहम सहम के आ रहे हों, जैसे उनकी लेखनी जी उठी हो। उन्होंने कुछ यूं लिखना शुरू किया:—

रीणा बी० ए० में पढ़ रही थी, पढ़ने में इतनी तेज़ नहीं थी इसलिए उसने विज्ञान छोड़ कर आर्टस ले लिए थे। उसे देखकर लगता नहीं था कि यह लड़की संस्कृत पढ़ती है, बड़ी बड़ी आंखें, गोल चेहरा, मोटे-मोटे होंठ जिन पर लिपस्टिक बड़ी सुन्दर लगती थी और इकहरा बदन जैसे साड़ी उसी के लिए बनी हो। साड़ी पहने वह बड़ी सुन्दर लगती किन्तु उसके पास साड़ियां थीं बहुत कम। जो थीं वे इतनी सुन्दर नहीं थीं पर उपहार में मिली एक साड़ी जोकि ख़ूबसूरत थी वह बड़ी सम्भाल के रखती, किसी खास दिन के लिए। उसकी आर्थिक स्थिति कुछ चिन्ता-जनक रहती थी लेकिन फिर भी वह बड़ी सुन्दर दिखती।

कालेज में उसके साथी साथिनें बड़े सम्पन्न घरों के थे, जिनके साथ रहने में वह बड़ी प्रसन्न रहती। वह उनके घर जाती, चाय पीती, मज़े करती, कभी कभी सारा सारा दिन भी रहती परन्तु जब कोई उसके घर तक आता तो उसे बाहर से ही विदा कर देती, इसका कारण यह था कि उनके रहने सहने का स्तर इतना अच्छा नहीं था। एक अच्छा

सामान्य दर्जे का ड्राइंग रूम तक न था, घर का पुराना सीमेंट उखड़ सा रहा था। वह घर आके सोचती कि अगर उसके घर एक अच्छा ड्राइंग रूम होता तो हमेशा दोस्तों से ही भरा रहता और वह भी अपने आपको उन में स्वतन्त्र पाती। उसका अपना मन होता तो वह अपने छोटे भाई बहनों से बड़े प्यार से बोलती परन्तु अगर अपना मन न होता तो उन्हें डांट कर निकाल देती और घण्टों अकेले बैठी रहती।

एक बार उसके पिता, उपाध्याय जो कि एक मामूली तीसरे दर्जे के अफसर थे, उसे कालेज बुलाने गए। उसकी मां के बच्चा हुआ था। रीणा कालेज से अनुपस्थित थी, वह लौट रहे थे कि सड़क पर कुछ दूर उन्होंने उसे एक नौजवान लड़के के साथ (Icecream) खाते देखा। उन्होंने अपना रास्ता बदल लिया फिर एक बिल्डिंग की ओट से उन्होंने देखा रीणा आइस क्रीम (Icecream) खाकर एक कार में जाकर बैठ गई, और लड़का भी पैसे चुका कर कार में बैठ गया। वह कार को दूर तक जाते देखते रहे। उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला अरे टैम्पो (Tempo) के लिए तो पैसे ही नहीं हैं। और वह पैदल ही चल पड़े। अपने घर के करीब पड़ोसी की दुकान पर जाकर उन्होंने कुछ रुपए उधार मांगे। पड़ोसी, शाम बाबू जेब में हाथ डालते डालते रुक गए उन्हें बाहर देखता देख उन्होंने भी बाहर देखा, सामने रीणा घर जा रही थी। शाम बाबू बोले—'यह आपकी ही लड़की है न क्या कोई रिश्ता देखा है आपने, मैं बताऊं एक लड़का है, सब-इंस्पैक्टर (Sub-Inspector) है। उपाध्याय चुप हो गए। वे पैसे लेकर चले आए। घर आकर उन्होंने ऐसा कुछ नहीं बताया जिस से रीणा को एहसास होता कि उन्होंने कुछ देखा है। रीणा मां की खूब सेवा कर रही थी, कभी गरम बोतल पानी की कभी कुछ कभी कुछ।

दूसरे दिन उन्होंने रीणा से कहा कि वह दो तीन दिन कालेज न जाए, पर रीणा ने बात वहीं रोक ली उसने कहा। मेरे Exam नज़दीक आ रहे हैं। बड़े Important Lectures हैं आज कल।

'तुम ने तो अभी कल वाला सबक भी नहीं पढ़ा उसे आज घर पढ़ लो।'

—'वह तो मैं कल नीलू के साथ कालेज ही पढ़ आई थी, साथ ही फिर आज वाला कहां से पढ़ूंगी।'

—'अच्छा तुम्हारी इच्छा पर जल्दी आना तुम्हारी मां के पास भी कोई चाहिए।' यह कह कर वे दूसरे कमरे में चले आए, सोच रहे थे, 'रीणा क्यों छुपाती है उन से यह सब कुछ। वे रोकते नहीं किसी बात के लिए फिर ऐसा क्यों। कुछ भी हो मेरा ही दोष है मैंने क्या बनाया है इनके लिए एक अच्छा ड्राइंग रूम तक नहीं, आज तक कभी उस की कोई सहेली घर नहीं आई जब मेरी बेटी सारा सारा दिन उनके घर रहती है।'

मां ठीक हो गई। नवजात शिशु लड़का अब मुस्कुराता था, हंसता था। रीणा उसे प्यार तो करती लेकिन अपने पिता के सामने नहीं। उन्हें रीणा से शर्म आने लगती अगर घर में तीन बच्चे थे ही तो चौथे की क्या जरूरत थी, रीणा ठीक ही है। रीणा के पिता पचास के करीब हैं। उस दिन के बाद उन्हें कभी रीणा को किसी जगह बुलाने जाने का साहस नहीं हुआ, परन्तु उस दिन जब ६ साल के अशू ने दस पैसे निगल लिए और मां ने जब देखा कि नहीं निकलते तो ज़ोर ज़ोर से रोने लगी, उसे पड़ोसन के पास छोड़ डा० बुलाने गए तो रास्ते में उन्होंने सोचा नीलू के घर से रीणा को बुला लूं। रीणा परीक्षा की तैयारी में नीलू के साथ पढ़ने गई थी। पूछने पर नीलू ने कहा—कि वह आई जरूर थी पर यह कह कर कि उसकी मां बीमार है एक घण्टे के बाद ही चली गई। चार घण्टे हो गए थे। वे-बोले—'मैं अभी दफ्तर से लौट रहा हूं घर नहीं गया।' घर चले आए। घर आकर रीणा से पूछा, वह बोलती ही चली गई 'मेरी सहेली रानी का ब्याह है वो मुझे अपने साथ घर ले गई कहने लगी तू अब मेरे यहां ही रह दो तीन दिन। बड़ी मुश्किल से कल का वादा कर के आई हूं। सुबह वे दफ्तर जाने लगे तो रीणा अपनी मां से कह रही थी—मां जिस लड़की की शादी है वो कुल उन्नीस साल की है, मेरी उम्र कितनी है। यह रही एक और उलझन। शायद वह उन्हें उनका कर्तव्य याद दिला रही थी जिस से वे अभी तक अनजान थे। दफ्तर में चैन से काम न कर पाए, 'मां मेरी उम्र कितनी है' शब्द कानों में गूंजते रहे। दफ्तर से जल्दी ही लौट आए। वे चल रहे थे कि एक कार उनके पास खड़ी हुई, अन्दर से एक लड़की बोली आप रीणा के बाबू जी हैं न, देखिए रीणा इतने दिनों से मेरे यहां नहीं आई, मैं रानी हूं, अगर आज भी न आई तो जीवन भर नहीं बोलूंगी। 'आप

को शादी मुबारक हो। मैं रीणा को जरूर भेजूंगा।' कह कर वे चल पड़े गाडी वापस मुड़ गई। वे अहिस्ता अहिस्ता ऐसे चल रहे थे जैसे कोई गाड़ी थोड़ा सा तेल रह जाने पर। सोच रहे थे रीणा तो सुबह से ही रट लगाए थी। वे जान गए थे कि रीणा क्या चाहती है, आखिर कब तक खामोश रहेंगे वे कभी तो यह खामोशी तोड़नी ही होगी।

घर आए तो रीणा जा चुकी थी। वे भी अपने कमरे में जाकर लेट गए। जागे तो शाम घिर आई थी। खाना खाने के बाद वे थोडा टहलते हैं। पर आज नहीं टहले, साढ़े नौ बज चुके पर रीणा नहीं आई। उन्होंने अन्दर जाकर पूछा कि रीणा नहीं आई क्या करें तो पत्नी ने कह दिया! 'ब्याह में गई है, रात वहीं रह भी सकती है।' वहीं पर! आज उन्हें कुछ डर सा लग रहा था, वे काफी देर बालकनी पर खड़े इन्तजार करते रहे। बारह बजने को थे पर उन्हें चैन कहां। जवान लड़की है। मैं जानते भी अनजान रहा। हे भगवान, वह अपने रास्ते से, असूलों से फिर न जाए। दूर से एक कार आती दिखाई दी, वे अन्दर आ गए, बत्ती बुझा कर चुप चाप अन्धेरे में देखने लगे। यह रीणा थी, साथ वही लड़का था, रीणा गाड़ी से उतरी और एक नजर ऊपर देख चुप चाप चली आई। ऊपर आई तो पिता जी को जागे देख सहम सी गई। 'कहां थी?' 'रानी के गई हुई थी', 'यह लड़का कौन था?'

—'यह रानी का भाई था, मैं गाड़ी में आई हूं बाबा। बड़ी अमीरी में ब्याह हुआ है। बड़े अच्छे लोग हैं आने ही न देते थे।'

—'तुम तो कहती थी रानी इकलौती है।'

—'मैं न जानती थी, कि रवि बाहर पढ़ता है।' वे लड़के को भी जानते थे यह भी जानते थे कि रीणा ब्याह वाले घर नहीं थी, फिर भी बात बढ़ानी ठीक न समझी। रीणा को तो सोने भेज दिया पर रीणा के हाथ में देखी सोने की अंगूठी ने उन्हें न सोने दिया।

इतना लिख कर वो सोचने लगे कि वे भाषा व पात्रों से न्याय नहीं कर रहे इसलिए लिखना बन्द कर दिया। पर अब अन्त क्या हो, अगर रीणा की शादी कर दी जाए तो उसके बाप के पास पैसा कहां से आएगा, अगर बात यूं ही चलती रही तो रीणा...। खाना ठण्डा हो गया था, नहीं खाया और फिर वे सो गए। सुबह सुनीता हजामत के लिए पानी

देने आई तो राम स्वरूप बोले 'सुनीता तुम बी० ए० हो, अब तुम मुझ से अच्छा लिख सकती हो। मैंने एक कहानी लिखी है, इस के अन्त ने मुझे परेशान कर दिया है, तुम पढ़ना शायद तुम्हें कुछ सूझे, तो ले जाओ।'

दफ्तर से लौटे तो सुनीता का चेहरा उतरा सा था। जब 'अन्त' के लिए पूछा तो बोली—

—'आज शनीचर है कल ऐतवार को तो आप दे नहीं पाएंगे, सोच कर बताऊंगी।'

दूसरे दिन रीणा अपने छोटे भाई बहनों के साथ बड़े प्यार से बोलती रही। सारा दिन घर की सफाई में लगी रही। ऊंचे बनाए हुए बाल नीचे थे, न आंखों में काजल न आंखों में चेतना, घर की हर एक चीज को घूर घूर कर देखती, फिर कुछ सोचती, इसी तरह ऐतवार बीत गया। दफ्तर के वक्त शाम के लिए कह कर सीढ़ियां चढ़ गई, अपने पिता से इस तरह नजर चुराती जैसे बुटना लगने पर लड़की अपने पिता को देख रो देती है। वे भी शायद उपर जा के रोई थी।

दफ्तर से लौटे तो एक चट्टान की तरह जम गए टांगों में जान ही नहीं रही हो जैसे। मां सुनीता को पुराने ज़ेवर पहना रही थी। रो रो के कह रही थी, हमीं से कहती बेटा तूने हमें अपना न समझा, तेरी ही मर्जी करते थे। सुनीता भी रो रही थी। अन्दर से आवाज़ आई—

'मां जी दुलहन सज गई।' 'मैं आ सकता हूं।'

पिता को देखते ही रीणा उठ खड़ी हुई, साथ ही उसकी मां भी। उन्होंने कहा यह क्या बेटा और उन की आंखों में आंसू आ गए। मां अन्दर से लड़के को बुला लाई, वही लड़का था। वे Ice Cream की तरह ठण्डे पढ़ने लगे। तभी सुनीता ने साहस बटोर कर कहा बाबू जी हम ने ब्याह कर लिमा है और यही है आप की कहानी का अन्त। 'अगर कहानी का यह अन्त न होता तो, आपकी यह कहानी जो अब सुखान्त है दुखान्त हो जाती। दोनों उनके पांव पड़ने लगे, उन्हें कुछ सूझ नही रहा था क्या कहें! बीच में ही रोक कर सीमू नींमू के लिए लाई Ice Cream उन दोनों के हाथ में थमा दी। अब उन्हें पता चलने लगा था कि तीसरी कहानी क्यों दीवार बन रही थी, अब उन्हें कोई गम नहीं था क्योंकि वे दीवार फांद चुके थे।

●

कलाकार

जितेन्द्र ऊधमपुरी

थका-हारा सूरज अपने अन्तिम पल गिन रहा था और उसका स्थान लेने वाली रात सर पर दौड़ी चली आ रही थी। दूर, पश्चिम में लालिमा अंधेरे के साथ घुल मिल रही थी। सामने श्वेत और बे-दाग चादर ओढ़े पर्वतीय श्रृंखलाओं पर चांद की पहली रश्मियां उतरने ही वाली थीं। परन्तु बल खाती हुई नागन की तरह पगडंडी का रास्ता साफ दिखाई दे रहा था।

चलते चलते अंजू के पांव लड़खड़ाने लगे थे मगर वह फिर भी हर उस मुसाफिर की तरह जिसे मन्ज़िल की आस अपनी ओर खींच रही हो अपने बूढ़े बाबा की उंगली थामे साथ साथ चली जा रही थी और रास्ते में चलते चलते अपने ब.बा से कई तरह के प्रश्न पूछ रही थी। कभी पूछती—बाबा, यह सूर्य रात को कहां चला जाता है? चांद और सूर्य सगे भाई हैं? बाबा! देखो तो, चांद का रंग कितना पीला पड़ गया है। अब चांद भी बूढा हो चुका है। सूरज-लोक और चन्द्र-लोक में भी क्या कोई लोग रहते हैं? बाबा! भोला कहता है कि सूरज-लोक में नौ-नौ गज लम्बे आदमी रहते हैं, क्या यह सच है बाबा? बाबा अपनी बुद्धि अनुसार जहां तक होता अंजू को जवाब दे देता और जब किसी बात का उत्तर न दे पाता तो अपने नोकदार मुंह को सिकोड़ कर साफ-साफ कह देता—मुझे मालूम नहीं बिटिया और जब प्रश्नों का तांता ही न टूटने पाता तो कभी कभी घूर कर देखने लगता और कहता—अच्छा बिटिया बाकी कल पूछना। यदि आज ही सब कुछ सीख जाओ गी तो फिर कल क्या करोगी। अंजू थोड़ी देर तो चुप रहती और

फिर पूछने लगती—अच्छा बाबा, यह नन्द पुर गांव जहां हम जा रहे हैं, अभी कितनी दूर है ? हमें और कितना चलना है, मेरी तो टांगें थकने लगी हैं। बाबा, यह मेला वहां क्या हर साल लगता है ? बाबा, यह मेला वहां क्यों लगता है ? अब की बार फिर एक ही क्षण में उस ने बूढ़े बाबा से कई स्वाल पूछ डाले थे। बाबा पहले तो थोड़ी देर चुप रहा और फिर एक लम्बी आह भर कर कहने लगा—बेटी, देख रही हो वह सामने दूर उस बर्फीले कुहरे से ढके हुए पर्वत के गोरे और श्वेत बदन को, बस उसी के पीछे जहां देवदार और चील के वृक्षों से ढकी और सबज़ाज़ारों के दामन में लिपटी हुई एक युवती सी निखरी हुई वादी है। जिस का भगवान ने शायद पहरों पहर जाग कर निर्माण किया है। जिस की गोद में कई नदियां अंगड़ाइयां लेती हैं और कई निर्झर ईश्वरीय स्तुति में रत प्राकृतिक बन्धन में बंधे मचलते रहते हैं उसी रमणीय वादी की गोद में असंख्य दास्तानें समेटे हुए दो अति सुन्दर संगमर-मर के बने हुए मकबरे हैं। बस हमें वहीं चलना है। पिछले तीस सालों से लगातार हर वर्ष वहां मेला लगता है। देश भर के कोने कोने से हज़ारों कला और सौंदर्य के पुजारी वहां इकट्ठे होते हैं। यह मेला तीन दिन तक लगा रहता है। देश के बाहर से भी सैंकड़ों कलाकार; चित्र-कार और संगत्राश अपने जीवन की सर्वोत्तम कलाकृतियां साथ लिए कला-प्रदर्शनी में सम्मिलित होने इकट्ठे होते हैं और अति स्नेह और आदर पूर्वक इन मकबरों पर फूल चढ़ाते हैं।

अंजू ने बाबा की बात काटते हुए पूछा—बाबा ! यह किन लोगों के मकबरे हैं ? 'बेटी —तुम नहीं समझ सकोगी।' बाबा ने कहा। बर्फीली ठण्डी हवा में भी बाबा को पसीना आने लगा था। अब अंधेरे ने चारों ओर अपना परदा फैला दिया था और वह बराबर कहे जा रहा था—यह मकबरे, आह ! यह मकबरे बहुत बड़े इन्सानों के हैं। यह दो महामानवों के यौवन की सिस्कती हुई दास्तानें हैं। यह सुलगते हुए जख्मों की चट्टानें हैं। यह शिकस्ता दिलों के मिज़ार हैं। तुम नहीं समझ सको गी बेटी, तुम नहीं समझ सको गी यह क्या हैं ? यह सल्मा और सलीम के मकबरे हैं।

भावुकतावश बाबा की मुखाकृति पर लाली उतर आई थी। बूढ़े

पिंजर में जवानी के शोले मचलने लगे थे। वह गहरी सोच में डूबा हुआ अब खामोश हो चुका था। अंजू से रहा न गया और वह फिर चुप्पी तोड़ते बोल उठी बाबा—यह सलमा और सलीम कौन थे ? अब के बाबा की जबान कुछ लड़खड़ा चुकी थी। उसे अपना शरीर भारी सा लगने लगा था। वह अपने फटे हुए कोट के टूटे हुए बटन बार बार बन्द कर रहा था और बूढ़े मगर भावनाओं के जाल में सिमटे शरीर को बार बार सिकोड़ रहा था। अब वह पर्वतीय-क्षेत्र के समीप पहुंच चुके थे। बर्फानी हवा उसके पिंजर को सूइयां चुभोती हुई गुज़र रही थी। अपने आप को सम्भालते हुए बाबा ने कहा—बेटी आज से लगभग पचास वर्ष पहले सलमा और सलीम इसी नन्द पुर गांव में पैदा हुए थे। दोनों सौंदर्य की जीती जागती मूरत थे। सलीम यदि गुलाब की कोंपल था तो सलमा भी बेदाग चांद का टुकड़ा थी। बाल अवस्था से ही वह एक दूसरे के इतने समीप हो चुके थे कि अब उन के लिए बिछुड़ना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव हो चुका था। वह दिन भर इकट्ठे खेलते इकट्ठे नाचते और जब रात को अपने अपने घर सोने के लिए जाते तो आने वाली प्रातः का बड़ी बेचैनी से इन्तज़ार करते।

सलीम को बाल्य-काल से ही मिट्टी के बुत बनाने का शौक था। कभी मर्द सा बुत बना लेता तो कहता—यह मेरा बुत है, सलीम का बुत और कभी औरत जैसा बना लेता तो कहता—सलमा, यह तुम्हारा बुत है।

बाल अवस्था से ही उस के मन में एक आरजू, एक उमंग, एक लगन घर किये थी कि वह एक दिन देश भर का सब से बड़ा संगत्राश बने गा और सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा जिसे वह त्राशे गा वह उसकी प्रेमिका सलमा की होगी। वह अभी तेरह ही वर्ष का था कि एक सुहानी सांय जबकि चांद अपना घूंघट उठा रहा था और तारे उस के साथ अठखेलियां कर रहे थे वह सलमा से मिला और उस ने प्रण किया कि वह उसी से शादी करे गा और वह भी उसकी प्रतीक्षा करती रहे। इतना कह कर जयपुर भाग गया था। वहां वह दिन रात, सुबह-शाम संगमर-मर की चट्टानों में भटकता रहता। उस के हाथों में हर समय एक हथोड़ा और एक लोहे की छिनी रहती। पत्थरों की चट्टानों में साधना-रत फिरता फिरता

वह स्वयं भी एक संगमर-मर का बुत बन चुका था। उसकी आत्मा हर समय सुलगती रहती और वह कभी ज़ोर-ज़ोर से उन चट्टानों में सल्मा ! सल्मा !! चीख उठता और उसे पहाड़ों से टकराती हुई वही आवाज़ बार बार सुनाई देती। इन्हीं पत्थरों में सालहासाल सिर फोड़ते फोड़ते वह अब एक माननीय कलाकार बन चुका था। प्रशंसा उसके पांव चूमने लगी थी। देश के कोने कोने में उसकी कला का प्रदर्शन हो रहा था। उसे कई सर्वोत्तम शाहकारों पर पुरस्कार मिल चुके थे।

पर, एक सुन्दर प्रतिमा, एक महान शाहकार जिसे अभी त्यार करना शेष था उस की लगन उस के मन में हमेशा सुलगती रहती उसी स्वप्न की पूर्ति की हज़ारों तरंगें अपने मक-मस्तिष्क में समेटे हुए अब वह बरसों बाद अपने गांव लौट रहा था। सैंकड़ों भव्यशाली प्रतिमाएं एक से एक बढ़ कर उसके मस्तिष्क में निखर रही थीं। वह सोच रहा था--- सल्मा आज कितनी जवान हो चुकी होगी। उसके सौंदर्य में चार-चांद लग गये होंगे। उसे देखते ही वह पागल हो उठे गी। उसकी बाहों से लिपट जाए गी, और... और न जाने खुशी के मारे क्या कर बैठे गी। वह......वह......हां ! हां, वही मेरी सल्मा......मेरी प्यारी सल्मा।

बावा का सिर भारी हो चुका था। सर्दी ने उस के बूढ़े अंग-अंग को नोच लिया था। बुखार ने अपने पूरे बल से उसे अपने अधीन कर लिया था। एक-एक कदम उसे मन-मन भारी लगने लगा था। पर, वह वर्फानी नाले की तरह बराबर चले जा रहा था। वह अभी भी अंजू से कह रहा था—बेटी, जानती हो उस के बाद फिर क्या हुआ ? सलीम जब गांव पहुंचा तो गांव वालों ने उसे पहचानने से भी इन्कार कर दिया। वह महान कलाकार अपने ही गांव में एक अजनबी सा भटकता रहा। उसे साफ-साफ कह दिया गया कि वह सल्मा जिस की उसे तलाश है आज से दस साल पहले की मर चुकी। उसे दफना दिया गया है क्योंकि वह अपने पिता की आज्ञानुसार विवाह के लिए रज़ामन्द न थी और उसी की सज़ा में उसे विष दे कर हलाक कर दिया गया था। तुम चाहो तो उस से मिलने के लिए अब भी उस के मकबरे पर सर पटक सकते हो। सलीम कुछ न कह सका। उस के होंट सिल गये, कलेजा

चाक-चाक हो गया और वह सहमा-सहमा बुत सा चुपचाप खड़ा रहा। उसे ऐसा लगा दुनिया मर गई, ससार नष्ट हो गया, भूत जल गया, भविष्य गर्क हो गया, कहर ही कहर फैल गया और क्यामत का दिन आ गया।

हज़ारों हथोड़े एक साथ उस के दिल पर प्रहार कर रहे थे। लाखों बिजलियां उस के नीड़ पर टूट पड़ी थीं और वह सहमा-सहमा सब कुछ अपने सामने देख रहा था। उस ने अपना गरेबां चाक कर लिया और आहिस्ता-आहिस्ता उसी ओर चल पड़ा जहां सलमा पिछले दस वर्षों से आराम की नींद सो रही थी। गांव वालों ने आवाजें कसीं, तान्ने दिये, हंसी उड़ाई। कोई उसे पागल कहता, कोई सिरा फिरा, कोई मजनूं की औलाद और कोई फरहाद का बेटा। बच्चों ने पत्थरों से शरीर छलनी कर दिया। कलाकार टस का मस न हुआ। शरीर पर कई गहरे जख्म आ गए मगर वह चलता गया।

सलमा के मिजार पर बैठा-बैठा वह घण्टों रोता और पागलों की तरह आवाजें देता रहा। उस ने अपना हथोड़ा उठाया और सामने पड़ी हुई एक श्वेत रंग की शिला को त्राशने लगा। रात दिन, सुबहोशाम उस के पास दिल लगाने को अब केवल यही एक काम या। वह दिन की चिल्चलाती धूप और चांदनी रातों में बराबर लगा रहता। कई दिनों से उस ने कुछ नहीं खाया था। बदन सूख कर कांटा हो गया था। जवां और हसीन मुखाकृति झुर्रियों से भर चुकी थी और हड्डियां जहां-तहां उभर आई थीं। तीन मास की कठिन तपस्या से उस ने वह प्रतिमा त्यार कर ली जिस के लिए वह आज तक जी रहा था। वह प्रतिमा क्या थी। एक जीती जागती साकार तस्वीर थी। वह प्रतिमा जो अजता और और एलोरा की प्रतिमाओं से लाखों कदम आगे थी। वह प्रतिमा जिसे आज तक नश्वर संसार का कोई कलाकार न बना पाया था। ऐसा लगता था कि यह कोई ईश्वरीय देन है। वह प्रतिमा......हां हां......वह प्रतिमा सलमा की थी। ऐसा लगता था कि कलाकार ने सलमा को कबर से खोद निकाला हो और उसे अपना लहू पिला-पिला कर जीवित कर दिया हो। प्रतिमा जीवित होती गई और कलाकार नश्वर संसार से ओझल होता गया।

आधी रात के सन्नाटे में जब सितारे अंतरिक्ष की गोद में सो रहे थे तो उसी समय एक दिव्य सूर्य पृथ्वी पर अस्त हो रहा था।

गांव वालों ने कई दिनों से कलाकार को नहीं देखा था। एक सायं जब वह उस की खोज में निकले और सलमा के मकबरे के पास पहुंचे तो उन्होंने उस कलाकार को वहां मुर्दा पाया। उसके एक हाथ में हथोड़ा और दूसरे में लोहे की छिनी थी और पास ही उस के हाथों का बनाया हुआ उद्‌भुत विशाल शाहकार।

सलमा के मिजार के साथ ही सलीम का मिजार भी बना दिया गया। कलाकार मर गया। मगर उस की कला जीवित है। उस का नाम जीवित है। उस का जीता जागता शाहकार जीवित है। बाबा ने एक लम्बी सांस भरी और कहा—बिटिया यह मेला हर साल उसी विख्यात महान कलाकार की याद में लगता है। अंजू बड़े चाव से बाबा की बातें सुन रही थी। जब कि बाबा अपनी कहानी समाप्त कर चुका था।

अब वह सलीम और सलमा के मकबरों की सामने वाली सराए में पहुंच चुके थे। बर्फानी हवा सराए के खुले द्वार की राह बड़ी तेजी से अन्दर घुस रही थी। बाबा का अंग-अंग ठंड से अकड़ चुका था। दर्द से सिर फटा जा रहा था। सारा शरीर सुन्न सा हो चुका था। पास बैठी अंजू अंधेरे में अपने कोमल हाथों से बाबा का सिर दवा रही थी। बाबा अब तो जोर-जोर से कराहने लगा था। सराए के दूसरे मुसाफिर भी बाबा की हालत देख रहे थे और भांत-भांत की बोलियां बोल रहे थे। कोई कहता न जाने इस बूढ़े को इस सर्दी में यहां आने की क्या पड़ी थी। कोई कहता, इसे मरना ही है तो कहीं बाहर जा कर मरे, हमारी नींद क्यों खराब कर रहा है? और कहीं से यह आबाज भी आ रही थी—ऐ मेरे खुदा! मेरे जीवन के सभी नेक कामों का सिला इस बाबा को दे दे और इसे राजी कर दे। अंजू अपने बाबा की हालत और अपनी बे-बसी पर फूट-फूट कर रो रही थी। थोड़ी ही देर में सभी मुसाफिर अपनी-अपनी जगह चले गए और देखते ही देखते सो गए। पल भर के लिए अंजू की भी आंख लग गई।

सुबह होते ही जब सारे उठ बैठे तो बाबा न उठ सका। वह तो

हमेशा-हमेशा के लिए सो चुका था। उस के नीम खुले और शीत से सिकुड़े होंट अब भी हजारों दास्तानें दुहरा रहे थे। उस के कोट के टूटे हुए बटन खुल चुके थे और उस के बीच में से निकली हुई एक अति सुन्दर, लाजबाव तस्वीर फर्श पर आ टिकी थी। यह वही तस्वीर थी जिसे बाबा नुमाइशी मुकाबले के लिए अपने साथ लाया था।

अंजू अब जोर-जोर से रोने लगी थी और खोई-खोई नजरों से कभी सलीम के मिजार, कभी सलमा के बुत और कभी बाबा और कभी तस्वीर की ओर ताक रही थी।



इज्जत

सत्य प्रकाश 'आनन्द'

अपने मित्र अहमद अब्बास डिप्टी मिनिस्टर की कोठी से वापसी पर उसका दिल कहीं भी न लग रहा था। किसी भी वस्तु में कोई आकर्षण नहीं रह गया था। मौलसरी के वृक्ष और फूलदार पौधे सब कान्तिहीन लग रहे थे। सड़क पर दोनों ओर सफेदे के वृक्ष किसी ठुकराए हुए कुत्ते की तरह एक तरफ होकर उदास तथा गमगीन, आने जाने वालों की ओर देख रहे थे और उसे ऐसा लगा जैसे वे उस से सहानुभूति की अपेक्षा कर रहे हों।

सारा वातावरण उदास था। विजय ने आकाश में रूई के गालों की तरह उड़ रहे बादल के टुकड़ों की तरफ देखा जो तितर बितर होने की धुन में थे। उसने मुड़ कर पीछे मिनिस्टर की कोठी की तरफ देखा जो अब बहुत पीछे रह गई थी और जिस का सुर्ख फाटक अब उस की आंखों से ओझल हो चुका था। चौक में सन्तरी छतरी खोले हुए खड़ा था ताकि धूप की तपश से बच सके और उसको कालेज ग्राऊंड के सामने सड़क के उस पार नानबाई की दुकान के ऊपर वाला चौबारा दिखाई दिया जहां वह अहमद अब्बास के साथ कालेज के दिनों में आकर मिला करता था। यही वह चौबारा उन की मित्रता के दिनों की यादगार था और जहां अहमद अब्बास अपनी वेसरोसामानी की हालत में वक्त काटा करता था.........मगर आज उसी अहमद अब्बास ने उसकी अपेक्षा की थी, बे-इज्ज़ती की थी। शायद वह अपना गरीबी का ज़माना भूल चुका था।

उसने बाजार से गुज़रते समय और अहमद अब्बास की कोठी की

तरफ जाने से पहले हनुमान जी के मन्दिर में प्रार्थना की थी कि उस की इज्ज़त रखना । मगर वह उस की इज्ज़त न बचा सके और उसे हनुमान जी पर गुस्सा आ गया । "बे जान पत्थर की मूरत !" वह गुस्से में बड़बड़ाया । वह कब उसके पास जाना चाहता था । मगर उसने इलैक्शन के सिलसिला में एक मीटिंग के दौरान "गुल्ली" के हाथ सन्देशा भेजा था कि विजय को कहना कि आकर मिल जावे । "हम याद फर्माते हैं ।" वह तो बिन बुलाए खुदा के घर भी न जाएगा । यह तो एक मिनिस्टर का घर है और उस का बचपन का दोस्त ।

इस से पहले भी अहमद अब्बास जब इधर से गुजरा था तो वही दोस्त "गुल्ली" उसके पास दौड़ा हुआ आया था ।

"विजय ! विजय ! अहमद अब्बास ।" 'कौन अहमद अब्बास" विजय ने सूई में धागा डालते हुए कहा । "अरे ! वही अहमद अब्बास, नहीं जानता । बुद्धू कहीं का । वही अहमद अब्बास ख्वाजा तुम्हारा क्लास फैलो । बचपन का दोस्त । अब मिनिस्टिर लग गया है ! मिनिस्टर ।" गुल्ली की बेपनाह खुशी का अन्दाजा लगाना मुश्किल था । गुल्ली ने पूरी शिद्दत के साथ विजय को कन्धे से पकड़ कर उठाया । उसके कमज़ोर कन्धे गुल्ली की मज़बूत गरिफ्त से तड़तड़ा उठे थे ।

विजय ने दूर गुजर गए आदमियों के हजूम में अहमद अब्बास को देखा । हां ! अहमद अब्बास, बिलकुल वही । उस का बचपन का दोस्त । उसको अपनी आंखों मर यकीन न आया और बार-बार आंखें झपकने लगा ।

ख्वाजा ! उसका बचपन का दोस्त जो उसके घर के सौ-सौ चक्कर काटा करता था और भैय्या के डर से घर के अन्दर न आया करता था । भैय्या ज़रा सख्त किस्म के आदमी थे । उनकी शकल भी काफी रौब दाब वाली थी । लम्बी-लम्बी मूंछें । बड़ी-बड़ी आंखें । जब एक बार देख लेते तो खून खुश्क हो जाता । उनका गुस्सा कब और किस पर उतर पड़ेगा यह किसी को पता न लगता था । क्योंकि वह अपनी सारी शक्तियों को एक कछुए की भान्ति अन्दर ही अन्दर समेटे रहते थे । उनके डर से वह अन्दर नहीं आता था ।

वह विजय पर कड़ी नज़र रखते थे । जरा इधर उधर होने की

सूझी नहीं कि वह फौरन ताड़ जाते और कान को ज़ोर से खींच कर कहने "हमें बनाता है। तू समझता है कि हम तुम्हारी उम्र से गुज़रे ही नहीं। इन को भला क्या पता चलता है। लेकिन बेटा! हम ये सब चालाकियां कर चुके है। तू हमारी गहरी नज़र से बच कर कहीं नहीं जा सकता।"

विजय "उई" करके बैठ जाता। देर तक उसके कान सुर्ख और गर्म रहते। भैय्या ज़रा बाज़ार गए नहीं कि ताड़ रहे 'अहमदू' की आवाज़ आती "विजय" तो विजय का दिल भैय्या की सख्ती से बगावत करने पर उतारू हो जाता। वह सोचता जरा खेल आता हूं अहमदू के साथ तो भैय्या का क्या जाता है। उसके साथ घूमने में कितना मजा आता है यह भैय्या नहीं जानते। मगर इस किस्म के ख्यालात के बावजूद वह उन पाबन्दियों को तोड़ने का साहस न करता क्योंकि वह भैय्या की तबीयत से भली भान्ति परिचित था और भैय्या के पांव का जूता भी सोलह उंगलियां था पूरा सोलह उंगलिया और जब एक बार पीठ पर पड़ जाता तो वह कई घण्टे दर्द की कसक महसूस करता रहता था। मगर अहमदू की आवाज बराबर गली से उसके दालान से होकर अन्दर वाले कमरे में पहुंच रही होती। जोकि उसके दिल में उतर जाती और वह कसमसा कर रह जाता।

वह अहमदू अब मिनिस्टर और वह.........उस की अपनी हालत और अहमदू की हालत में कितना बड़ा अन्तर है.........इनकलाब हैं जमाने के। वह थोड़ी देर के लिए चकरा सा गया। वह इतने बड़े विवेक को एक क्षण के लिए भूल गया और उस का जी हुआ कि अहमदू को आवाज़ दे "अहमद अब्बास।" मगर आवाज़ पूरी ताकत लगाने पर भी उसके कण्ठ से बाहिर न निकल सकी। अहमद के साथ आगे पीछे बहुत बड़े नागरिक, वकील, बैरिस्टर और अफसर लोग जा रहे थे। आज बाज़ार खुला होने की स्कीम विचाराधीन थी। वह दो चार कदम उसके पीछे भागा भी। मगर कुछ ख्याल आते ही वापिस लौट आया।

वह दुनिया वालों की प्रकृति से भली भान्ति परिचित हो चुका था। बस संसार की कृतघ्नता और उपेक्षा अनुभव कर चुका था। फिर भी उसने राह न बदली और वह धोखा और फरेब खाने के लिए हर वक्त

तैयार रहता था । दुनिया तो रोज नित नए कदम पर सिन्धु नदी की तरह अपना रास्ता बदल रही थी । कृतज्ञता के बदले कृतघ्नता । यह संसार का स्वभाव है और अहमद अब्बास......वह भी तो इसी हरजाई दुनिया का एक व्यक्ति था । इसी वातावरण का एक कण था जो इस किस्म की नीच और पवित्र हरकतों से तिक्त हो चुका था और फिर... ...उस की बचपन की और वर्तमान स्थिति में कितना बड़ा फर्क पड़ चुका था और अब कुरसी ...कुरसी भी मनिस्टरशिप की । जिस की वह शोभा बढ़ा रहा था कितनों के लिए कुरसी पर बैठते ही दोस्त-दोस्त नहीं रहते । रिश्तादार रिश्तादारियां भूल जाते हैं और उनके भी कुछ असूल बन जाते हैं और फिर वह सिद्धांत के पाबन्द आदमी किसी का काम क्यों कर सकते हैं......यह सब कुरसी की ही बरकत है ।

उसने उमड़ते हुए भावों को दबा दिया और अपने हाल में मस्त हो गया । वही मशीन और वही गाहकों की बकझक । उसने भूले से भी उधर का रुख न किया ।

मगर आज "गुल्ली" के हाथ अहमद के सन्देश ने फिर उसके दिल में सोए हुए भावों को जगा दिया और उसकी मृत कल्पनाओं में आशा की कलियां खिला दीं । उसका मुरझाया दिल खुशी से खिल उठा । अहमद को मिलने के लिए आशाएं प्रबल हो उठीं जैसे किसी विरह की मारी का दिल अपने प्रीतम के प्रदेश से वापिस आने की खुशी में जवान हो उठा हो और वह सज-धज कर सोलह सिंगार करके पीढ़ी पर बैठ गई हो । उसने किसी ग्राहक के नए सिले हुए कपड़े पहने और चलने की तैयारी करने लगा । "क्या वह उसको पहिचानेगा और गर्मजोशी से मिलेगा ?" या कहेगा "कौन साहिब हैं आप ?" तो उस वक्त उसकी क्या हालत होगी ।

आज तक उसने किसी से भी बेइज्जती नहीं कराई थी । हमेशा गर्व से सर ऊंचा रखा था गरीब था तो क्या हुआ लेकिन इज्ज़त तो है । अच्छे दिनों और अब बुरे दिनों में उसने अपनी इज्जत पर हरफ़ नहीं आने दिया था । उसने कभी भी किसी के सामने अपने बुरे दिनों का रोना न रोया था और न ही मदद के लिए प्रार्थना की थी । इस लिए अहमद अब्बास को मिलने की तैयारी में उसके दिल में हिचकचाहट ज़ोरों पर थी । 'लेकिन नहीं' बचपन की मुहब्बत ने ज़ोर मारा । उस की

बचपन की मासूम और भोली-भाली बातें रह-रह कर याद आने लगीं। वह तो उसके बगैर एक पल भी गवारा न किया करता था। जिस दिन वह उसके साथ जाने की असमर्थता प्रकट करता हुआ कहता 'देखना— भैय्या अन्दर हैं'……'मगर' रोनी सी सूरत बना कर अहमद कहता। उसके तमाम जज़्बात अहमद के चेहरा के बन रहे ज़ावियों से पढ़ लेता। इस 'मगर' में कितनी मायूसी कितना दर्द और कितनी इल्तजा होती। वह उसको किसी कीमत पर भी ठुकरा न सकता था ख्वाह भैय्या के कहर और घुड़कियों की शकल में कितनी कीमत अदा करनी पड़ती। 'अच्छा तू चल' विजय कहता और वह कोई बहाना बना कर उसके पास पहुंच जाता तो अहमद कितना खुश होता।

क्या वह उसको मिल कर अब इतना ही खुश होगा? इस में विजय को रत्ती भर भी शक की गुंजाइश न रही। अहमद के 'गुल्ली' के हाथ सन्देश और गुल्ली' के कहने के ढंग ने उसके रहे सहे शक को भी भस्म कर दिया। गुल्ली की जबान पर भला वह क्यों विश्वास न करता। गुल्ली उन का बचपन का दोस्त बहुत ही फुर्तीला और बड़ा प्रेमी। ऐसे जैसे वह मुहब्बत के लिए ही पैदा किया गया हो। वह दोस्तों का दोस्त और हर वक्त काम आने के लिए तैयार। जब दूसरा कोई काम न करता वह हमेशा एक खिलाड़ी की स्पिरिट में अपने आप को पेश करता और खतरनाक से खतरनाक और नाज़ुक से नाज़ुक जगहों पर पहुंच जाता। तभी तो उसके फुर्तीलेपन और झट पट तैयार हो जाने की स्पिरिट पर उस को 'मोहन' की बजाए 'गुल्ली' के प्यारे नाम से पुकारते थे और अब जबकि वह चार बच्चों का बाप हो चुका था उसे गुल्ली कह कर ही पुकारता था। इस लिए जब गुल्ली ने उस को आकर कहा—'तुम्हें अहमद बुलाता है' तो उसने सब दुनियादारी और शकोशुबाह को नजर अन्दाज कर दिया।

वह तो शायद इस सन्देश से पहले भी उसके पास जाता और उसे दिल की बातें सुनाता। उसे बताता कि जिन्दगी में बहार ने इक झलक दिखा कर इस से मुंह मोड़ लिया है और उस की दुनिया में पतझड़ का ही राज है। बहार ने तो फिर भूले से भी इधर आने का नाम नहीं लिया। वह तो उस से कब की रूठ चुकी थी।

उसने अपनी शक्ल को आइना में देखा जिस पर पतझड़ ने सचमुच कब्जा जमाया हुआ था। नीम फाकाकशी से चेहरा पर कुछ इस तरह लकीरें खिंची हुई थीं जैसे किसी उजड़े मकान में मकड़ी ने बेफिकरी से जाल बुन रक्खा हो। आंखें बेनूर सी और अन्दर को धंसी हुई। बाल खिचड़ी से आपस में उलझे हुए। उस ने आइना को एक बार साफ किया जैसे यह सब लकीरें आईना पर खिंची हों......और मुंह पर हाथ फेर कर नीचे रख दिया।

चलते समय उसकी बीबी ऊषा ने उसके कोट के कालर ठीक करते हुए कहा—घबराते क्यों हो। आखिर तुम्हारा दोस्त है। मिनिस्टर हुआ तो क्या हुआ? है तो दोस्त। 'मगर ऊषा' विजय ने प्यार से उसे देखते हुए कहा -बड़ा आदमी है जरा जी घबराता है। बड़ा आदमी है, ऊषा ने कहा—तुम भी तो बड़े आदमी हो। अपना कमाते हो, अपना खाते हो। जो किसी की कमाई नहीं खाता और अपनी इज्जत की कमाई पर सन्तोष करता है उस से बढ़ कर बड़ा आदमी कौन हो सकता है और विजय की गर्दन गर्व से तन गई। ऊषा उसे हमेशा बड़ा आदमी समझती और कहती थी। वह उसकी बातों को सुन कर आसमान की विशालता में उड़ने लगता। मगर वास्तविकता कितना कठोर थी... ...वह दिल ही दिल में ऊषा की बातों पर हंस दिया करता। 'पगली, नादान' वह अकेले में बड़बड़ा दिया करता। सुबह मिर्च नहीं शाम नमक नहीं और अच्छा खाना खाए तो मुद्दतें गुजर जाती। बच्चों के तन पर एक मैला तो दूसरा फटा हुआ और ऊषा, वफा की देवी। जिसे महीनों की मेहनत के बावजूद पीतल के बुन्दों के सिवा कोई गहना न लाकर दिया। हर बार विजय सोचता अब के जो ग्राहक पैसे देगा ऊषा के लिए आसमानी रंग की साड़ी और कानों के लिए बुन्दे लाऊंगा तो उन्हें पहनकर वह कितनी खूबसूरत लगेगी। मगर इस आरज़ू में बरसों गुजर गए और आरज़ू, आरज़ू ही रही। कभी पूरी न हो सकी। आटा और नमक के लिए पैसे खर्च करने के बाद उसकी जेब बिल्कुल खाली हो जाती। वरना वह कल ही मुन्नु को क्यों मारता जबकि वह मलाई की बर्फ के लिए जिद कर रहा था। विजय घर में रोटी खाने के लिए आया था तो गली में आवाज़ गूंजी 'मलाई की बर्फ, खोए मलाई की बर्फ' और मुन्नु जिद करने लगा। मैं तो खोए मलाई की बर्फ

आऊंगा। मुन्ने को कितनी ही दलीलें दी थीं। बर्फ के नुक्सान और फिर उसके बीमार होने और उसके परिणामों पर वक्ता की तरह रोशनी डाली। मगर मुन्ना था कि किसी भी तरह मानता ही न था। पैसा जेब में न था। मजबूरन उसे मार कर चुप कराना पड़ा। वह बिलख-बिलख कर सो गया और वह खुद कितनी देर अन्धेरी कोठरी में पुर्जे की तलाश के बहाने रोता रहा। इस उग्र वास्तविकता के होते हुए भी अपनी धर्म पत्नी की नज़रों में वह बड़ा आदमी था। कोई और मौका होता तो शायद दिल में हंस देता मगर आज ऊषा की आवाज में खास गम्भीरता थी। उसकी आवाज़ में वह कोई कृत्रिमता न ढूंड सका। 'वास्तव में ही वह बड़ा आदमी है।' इस किस्म के ख्यालात में खोया वह अहमद अब्बास की कोठी की तरफ चल पड़ा। नहर के किनारे सड़क से ज़रा परे हट कर एक बड़ी सी कोठी थी जिस के सुर्ख फाटक पर सन्तरी पहरा देते-देते शायद थक गया था और दीवार से लगा ऊंघ रहा था।

मञ्जिल के रीब पहुंच कर मुसाफिर थक चुका था। उसके कदम मन-मन के वजनी और उसके दिल पर सूक्ष्म भावों का बोझ था। वह अपने कदमों को जबरदस्ती घसीटते हुए एक भावना से प्रेरित आगे निकल गया। सन्तरी वदस्तूर ऊंघ रहा था। इसलिए उसे किसी किस्म की मुश्किल पेश न आई। वह अपनी इस पहली कामयाबी को नेक ख्याल करने लगा और बेहद खुश हुआ। वह कोठी के अन्दर पक्की सड़क पर चल पड़ा। भान्ति-भान्ति की बेलें दरख्तों से लिपटी हुई थीं ऐसे जैसे मुद्दत से बिछुड़ी हुई विरहनियां अपने प्रियतमों से मिल रही हों। फूलों की खुशबू से उसका दिमाग तर होने लगा। मौलसरी के दरख्तों से भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी और उस पर कोयल बैठी मीठा राग अलाप रही थी। बरामदे में कुर्सियां एक दूसरे के करीब करीने से रखी हुई थीं। दो तीन आदमी जंगले के साथ वाली कुर्सी पर बैठे थे और सामने वाली दीवार के साथ कुर्सी पर अहमद अब्बास बैठा था।

'बिलकुल वही' विजय ने दिल में कहा। वही लम्बी नाक वही घुंघराले बाल, गोल चेहरा, गोरा चिट्टा रंग। हां अब जसामत में फर्क जरूर था और बढ़िया वेशभूषा पदवी की शान घोषित कर रही थी।

उसने दिल में कहा 'अभी तह दौड़ कर उस से बगलगीर होगा।'

मगर अहमद अब्बास अपनी कुर्सी से उठा नहीं और न ही कोई ऐसी हरकत की जिस से उठ कर बगलगीर होने की बात जाहिर हो। उस का दिल कुछ उदास हो गया। वह सोचने लगा 'फूल की आरजू में कांटे गले लगाने चला आया हूं' और इस के साथ ही वह वापिस पलट जाना चाहता था मगर अब यहां से वापिस लौटना भी तो कठिन था। फिर उसने सोचा 'शायद मेरी बिगड़ी हुई शक्ल को न पहिचान सका हो।' वह बरामदे की सीढ़ियां चढ़ने लगा।

'आइये-आइये मिस्टर विजय बहुत देर के बाद दर्शन हुए'—एक आवाज़ जिस में अपनापन कम और आफिसराना अन्दाज़ था बुलन्द हुई। 'आदाब अर्ज़ है' आगे वह क्या कहे। वह सोच में पड़ गया। विजय कह देना चाहता था 'आदाव अर्ज़ है, अहमद।' मगर वह मौका की नजाकत को भांप गया। उसने इधर उधर बैठे प्रतिष्ठित व्यक्तियों पर एक निगाह डाली और जल्दी उगल दिया आदाब अर्ज है जनाब 'मैंने सोचा दुनिया बदलती है, शायद आप भी बदल गए होंगे। 'मगर उसने कहा नहीं। कहीं नाराज न हो जाए। बड़ा आदमी है और बड़े आदमी के मूड का कोई पता नहीं होता। प्रतिक्षण बदलता रहता है। 'मैंने सोचा जब याद फ़रमायेंगे हो आऊंगा।'

अच्छा बैठिए 'अहमद अब्बास ने हाथ से हाथ मिलाते हुए कहा। विजय ने गठरी सा होकर अपने आप को कुर्सी पर डाल दिया। वह अहमद अब्बास की तरफ से बात चलने की प्रतीक्षा करने लगा। वह अभी उस का हाल अहवाल पूछेगा। अभी वह कहेगा' कैसी गुज़र रही है। बाल बच्चे तो राजी हैं और फिर एक दम चौंक कर कहेगा 'ओ हो! मुआफ करना मि० विजय! मैं तो भूल ही गया' और अपने नौकर को आवाज देगा 'मुहम्मदु' शायद उस के नौकर का नाम 'समदु' होगा। खैर 'मुहम्मदु' हो या 'सम्मदु' बात तो एक ही है। 'ज़रा मेरे दोस्त मि० विजय के लिए लैमन सोडा लाओ।' और मुझे पान और सिग्रेट बड़े प्रेम से पेश करेगा।

मगर दो चार मिंट गुज़र गए और उस को बेचैनी महसूस होने लगी। इतनी लम्बी खामोशी उस को बोझल मालूम होने लगी। अहमद अब्बास दूसरे लोगों के साथ बातचीत में मगन था। अब इस आदमी के बाद शायद वह मुझ से बात करेगा। मगर उस सेठ के जाने के बाद वह शहर

के मिल मालिक लाला जगत नारायण के साथ बातचीत में लग गया। वह बितर-बितर सब के चेहरों को देखने लगा और उस पर आत्म लघुता का भाव छाने लगा। वह अपने आप को घटिया माल समझने लगा जो दुकान पर पड़ा हो और गाहक को अपनी तरफ खींच न सका हो और दुकानदार ने उस को डेड स्टाक (बेकार माल) में डाल दिया हो।

अचानक सब उठ कर चले गए। उस ने समझा शायद अब उस की बारी है अहमद अफसोस प्रकट करते हुए कहेगा माफ करना मि० विजय ज़रा इन लोगों से निपटना ज़रूरी होता है। ये लोग हैं कि किसी तरह पीछा नहीं छोड़ते। दिन हो या रात। सुबह हो या शाम। ये लोग जोंक की तरह चिमटे रहते हैं और किस तरह 'हां' कहलवाए वगैर नहीं टलते।

मगर यह बात भी न हुई। अहमद ने नौकर से कुछ बात कही और टैलीफोन का डायल घुमाना शुरू कर दिया।

अब विजय की रही सही आस पर ओस पड़ चुकी थी और हकीकत हाल रोशन हो चुकी थी। वह कबूतर की तरह कब तक यथार्थता से आंखें मूंद सकता था। डायल के घूम रहे नम्बरों के साथ उसके दिल का डायल भी घूम गया और उसे ऐसे लगा कि जैसे एकदम सारे नम्बर घूम गए हों।

वह कितनी आशाओं और अपेक्षाओं के साथ अहमद अब्बास के पास आया था। उस का ख्याल था वह उस की दिलजोई करेगा। वह कितनी देर आशा और निराशा के झूले में झूलता रहा। टैलीफोन की घंटी बजती रही और नम्बर चक्कर पर चक्कर खाते रहे और अहमद की उंगलियां फुर्ती से उन को घुमाती रहीं। अहमद अब्बास कुर्सी पर शाहाना अन्दाज से अपने चमकते हुए काले बूट वाले पांव को हिलाता रहा और विजय को उस में अपना मुर्झाया हुआ चेरा साफ दिखाई देता रहा।

'यह उस की बे-इज्जती है' विजय ने दिल में सोचा और एक दम कुर्सी से उछल पड़ा। अच्छा! ख्वाजा साहिब आदाब अर्ज है।'

'आदाब अर्ज' ख्वाजा अहमद अब्बास ने अपना दायां हाथ मुसाफा के लिए आगे बढ़ाया 'आप कहां होते हैं?'

मगर विजय ने न ही अपना हाथ मुसाफा के लिए आगे बढ़ाया और न ही कोई जवाब दिया।

'ओह !' अहमद ने अपना हाथ आहस्तगी से कुर्सी के बाजू पर रख दिया। 'आप रघुनाथ बाज़ार में होते हैं। मुझे 'गुल्ली' ने बताया था। मैं आप से मिलने वहां आऊंगा।

मगर इतने में विजय सीढ़ियां उतर चुका था। वह दिल ही दिल में मुस्कुराया। 'वह उसको मिलने वहां आएगा ढोंगी कहीं का—बहुरुपिया—जैसे मेरे मिले बगैर तू जी न सकेगा।' उसने दो एक बार होंटों में दुहराया। वह एक हारे हुए जुआरी की तरह लड़खड़ाता हुआ आ रहा था। उसकी दोस्ती के गर्व की दौलत लुट चुकी थी। अब वह वीराना था जिस में भयानक सर सर करती हुई हवाओं के सिवा कुछ भी न था। वह एक मोटर से टकराते टकराते बचा था। ड्राइवर ने खिड़की से सर बाहिर निकालकर रुखत आवाज़ में कहा—'पी रखी है या नशा टूट चुका है ?'

और सचमुच उसकी इज्जत, स्वाभिमान का नशा टूट चुका था। वह सोचने लगा 'उसकी जीवन की सब से बड़ी बे-इज्जती हुई है। उसने ज़िन्दगी में कर्जख्वाहों और दुकानदारों के जबरदस्त से जबरदस्त, तीखे से तीखे तानें सुने थे मगर उसे वे कभी भी महसूस न हुए थे। मगर आज उसका घर बुलाकर इस तरह बे-इज्जत करना उसको बहुत महसूस हो रहा था और वह क्योंकर भूल जाता कि बे-इज्ज़ती करने वाला उसका बचपन का दोस्त है और दोस्त का फूल भी वह जख्म करता है जो दूसरे का पत्थर नहीं। और फिर अहमद ने फूल नहीं पत्थर मारा था। फिर वह क्यों न चिल्लाता। क्यों न सिसकता।

भगवान का मन्दिर फिर रास्ता में था उसकी निगाहें न चाहते हुए भी उस तरफ उठ गई।' 'तू मेरी इज्जत न बचा सका।' उसका जी भर आया और आंखें सजल हो गईं। अचानक उसने अपने कन्धे पर किसी का स्पर्श महसूस किया। उसने पलट कर देखा—यह उसका प्रेमी ग्राहक रुलदू था। जो उसके पास चन्द मिण्टों के लिए जरूर आया करता और उसको अपनी कहता और उसकी सुनता।

'आज मैं तेरे लिए मेजर केदार के घर से शादी के जोड़े सिलने के लिए लाया हूं। वे तेरी ईमानदारी से बहुत खुश हैं।' कहते हैं कि 'यह दरज़ी कोई खानदानी आदमी मालूम होता है। हम उसको अपनी कालोनी के बहुत बड़े घरों का काम दिलायेंगे।'

विजय मुहब्बत से रुलदु के बगलगीर हो गया। उसके दिल की जलन आंसुओं के सैलाब से ठंडी हो गई। रुलदू की बातों में कितनी मिठास थी। जैसे उसकी ज़बान पर मिश्री की डली रखी हो।

विजय प्रेम में आत्म विभोर हो उठा। रुलदू एक मासूली आदमी, मैला सा, बड़े बड़े दांत, मोटे मोटे होंठ, बड़े बेढब्रे से हाथ पांव उस पर टूटे-फटे जूते, फटी हुई कमीज़। मगर वह इस मनिस्टर से कितना बुलन्द है। ज़िन्दगी के अच्छे और अब बुरे दिनों में भी वह ऐसे लोगों में खुश रहता था जिनके दिल साफ और विशाल, जिनकी बातों में सच्चाई और जिनकी आंखों में मुहब्बत छलकती हो, जो किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते और जिनके मज़बूत हाथ, दो पैसे की मज़दूरी के लिए आगे बढ़ जाते हैं।

और उसका हृदय निराशा, मायूसी और हीनता से साफ हो गया। जैसे बादलों से घिरे हुए आकाश को कपड़े के टुकड़े से पोंछ दिया गया हो। वह सीना तान कर खड़ा हो गया। 'उसने भी तो ज़िन्दगी में किसी के आगे आथ नहीं फैलाया, वह खुद्दार है। वह मज़दूरी कर सकता है। मगर इज्ज़त नहीं बेच सकता। किसी क़ीमत पर भी नहीं।'

अब उसका झुका हुआ सिर बुलन्द हो चुका था। भगवान ने उसकी इज्जत बचा ली थी। अहमद अब्बास के आगे उसने कोई मांग उपस्थित नहीं की थी।

●

कविता कुञ्ज



[illegible]

अहरबल का पत्थर—एक स्वगत कथन

डॉ० रमेश कुमार शर्मा

[एक बार विभाग के विद्यार्थी एवं शिक्षक अहरबल गये—पिकनिक के लिए ! एक गम्भीर खोखली खाई में से होता नीचे-बहुत नीचे-नदी का प्रवाह, गरजता हुआ जा रहा था। उस भयानक घाटी के मुख पर एक विशाल पत्थर मौन-मुद्रा में विश्राम कर रहा था। लोगों के मन में न जाने क्या आया, उस पत्थर को सब ने मिलकर नीचे धकेल दिया। टकराता-लुढ़कता, चीखता पुकारता वह अन्त में छपाक् से नीचे जल-धारा में गिर पड़ा। अनायास मेरा हृदय धक् से रह गया......]

युगों का मन्द मन्थन
अजस्र जलधारा की धड़कन
सहता, सुनता, सभीत,
मौन;—मैं पड़ा रहा। सदियों तक पड़ा रहा।

× × × × ×

गोरे, सलज्ज, सैलानी,
मृदु, मन्थर चरणों की—
मिलन-रोमांचित चाप
सहता, सुनता, सप्रेम,
मौन, मैं पड़ा रहा। युगों तक पड़ा रहा।

× × × × ×

भीम विशाल शिलाओं से आवरित
बांझ अन्धी गुफाओं में

पवन की छटपटाहट
युवती-विधवा सा, उसका सिर पीटना
देखता, सुनता, संज्ञाहीन सा—
मौन मैं पड़ा रहा—अवश मैं पड़ा रहा।
× × × × ×
वेदी पर घूमती
नव-वधू के
झंकृत मन सा कांपता
रस्सी का पुल,
ऊपर यौवन का भार
भीतर प्रेम की फुहार औ,
उमंग की धार का
लज्जा के बांध से
टकराना, मुड़ना फिर फिर टकराना, बिखर बिखर जाना
फिर व्याकुलता के फेन का
झूम झूम लचक लचक जाना, नाच नाच जाना
उस नाच की थिरक,
संगीत की ताल, मन की मरोर और तन की कसक
देखता, सुनता, गुनता, साश्चर्य
मुग्ध-मौन, मैं पड़ा रहा
वर्षों तक पड़ा रहा।
× × × × ×
अन्धे रास्तों पर
सांप से बहरे रास्तों पर
कसाई के छुरे समान
हरियाली के हृदय को चीरते
पैने, पतले और क्रूर रास्तों पर,
संध्या के अंधियारों में,
धुंधियाले आकाशों से
फूटी आंख के आंसू सी,
वर्षा की उदास झड़ियों में

गिरि-कन्दराओं, से टकराकर,
उपत्यकाओं में,
रोने, विलपने, बिसूरने वाली,
अचानक, तीर सी, जिगर के पार हो जाने वाली
ज़ालिम, बेबस चीखें।
किसी की पीठ में
छुप कर घुस जाने वाले
दोस्त के छुरे सी-जालिम, बेदर्द चीखें;
तड़प तड़प जाने वाली
और,
तड़पाने वाली चीखें—
उल्लू की व्यग-भरी पुकार,
बाज़ की झपट,
निर्दोष पक्षी का, बेबस फड़फड़ाना, दम तोड़ना।
इन सब को सुनता, सिहरता, भयभीत—
व्याकुल; मौन मैं पड़ा रहा; बेबस मैं पड़ा रहा।
× × × × ×
युगों की नींद के,
बेबस बन्धनों को तोड़,
पसीने से तर-बतर,
किसी भूखे मज़दूर के
दुखते कन्धे पर बैठ,
न जाने किस सितारे के सहारे से
उस गढ़े से, उस निगल लेने वाली विकराल खाई से
कदम कदम रुकता, दम लेता
हांफता, गिरता, फिर फिर उठता, लड़खड़ाता
मैं किसी तरह बाहर आया,
उस अदम्य प्रपात की
मनहर ऊंचाई के कगारे पर—
खुले आकाश की,
विशाल छाती के सहारे पर,

मैंने सांस ली ही होगी;
कि मेरे सैलानी भाई,
तुम अपनी मस्ती में झूमते आये ।
साथ में रंगीनियों की बारात सी लाये ।
और—
मौज में आकर,
ज़ोर लगाकर खिसका कर
मुझ बेबस को
फिर उसी गढ़े में, धकेल दिया ।
अरे यह क्या किया !!!

× × × × ×

युगों की यात्रा—मैं पूरी कर चुका था,
तुमने वहीं पहुंचा दिया,
जहां से चला था ।
फिर......
टकराता, कराहता,
अपनी चोटों से घाटी को गुंजाता
लहू लुहान, बेबस मैं,
वही पहुंच गया हूं,
जहां से चला था ।



कविता क्या है ?

मनसा राम चंचल

कविता क्या है ?
एक कल्पना
मानव मन की,
जिसे बनाते हम चल देते,
मूर्त्त रूप में,
दिवा स्वप्न सी दिख पाती जो,
फिर भी हम हैं नहीं हारते,
फिर भी गिनते बालु कणों को
और रिझाते अपना मन हैं ॥

कविता क्या है ।
एक वेदना,
कवि हृदय की,
क्रौंच युगल से एक विछुड़ते-
कमी जो कूटी,
कभी बिरह में अश्रु बनी जो,
आज भी रिसती कहीं हृदय में,
औ, कहते उसे कविता हम हैं ।

कविता क्या है ?
एक कामना,
सदा अधूरी,
सदा बनी जो,
उसी धुरे पर घूम रही है,
काव्यकला यह,
कभी यह पूरी हो भी सकेगी,
कौन जानता,
फिर भी दिल से इसे लगाए
रखते हम हैं ।।

कविता क्या है ?
एक साधना,
सतत साधना,
कठिन कठिनतर
किसी रूप की,
योग सिद्धि सी
जिसे कि योगी या कवि करता
खो देता है अपने मन को
शब्द भाव में,
काव्य कला में,
शांति उसे मिल पाती इसी से ।।

कविता क्या है ?
एक भर्त्सना,
सूरदास को कभी मिली थी,
कालिदास भी यहीं से पनपा,
जाने, कितने और बनेंगे
कविता का क्या राज़ यही है ।
कौन कहे यह,
फिर भी यह इक कटु-सत्य है
काव्य धरा का ।।

कविता क्या है ?
इक अनुभूति,
जिसे कभी अनुभूत किया था,
हृदय पटल पर,
कभी थी उभरी,
चन्द्रकला सी,
मेघ तडित सी,
जिस को बांधा शब्द रूप में
कविता ही उस को कह डाला ।।

कविता क्या है ?
एक रुदन है ।
अश्रुनयन के,
भाव हृदय के,
जिन्हें संजोया कभी कलम ने,
बांध लिया था शब्द जाल में,
कभी स्वरों में फूट पड़ी जो
एक कसक सी,
और संजोए अश्रु बिन्दु दो,
जिन्हें कि हम कविता कहते हैं ।।

कविता क्या है ?
उन्माद हृदय का,
कभी कभी जो आ जाता है,
हृदय पटल पर,
पागल पन सा,
और भुलाकर सभी जगत को,
मूल तथ्य को,
हम खो जाते,
गहन क्षितिज में,
काव्य जगत में,
औ' बह जाती है
काव्य सरित यह ।।

कविता क्या है ?
एक घरौंदा,
जो कभी रचा था,
बाल जगत में,
जिसे कि अब भी रचे जा रहे,
जाने यह है आत्म वंचना,
या अन्तर की एक सनक हैं,
फिर भी कविता रची जा रही,
फिर भी कविता सुनी जा रही,
और बनाये यहां जा रहे
कई घरौंदें शब्द बालु के,
छन्द धरा पर ।।

कविता क्या है ?
एक पहेली,
जो अनबूझी या अध बूझी,
जो कि अब तक सुलझ सकी न,
कवि आलोचक या श्रोतागण,
पाठक, लेखक या अभिभावक,
सब उलझते इसी ग्रन्थि से
पार मिला न किसी को अब तक,
फिर भी प्यार बना है इस से
हम सब का,
सभी जनों का,
फिर भी यह है,
एक पहेली ।

●

होली

शंकर शर्मा पिपासु

जो कुछ होना हो सो हो ले
खेलेंगे हम हिलमिल होली
नव रस राग रंग में रंग दें
नूतन नित्य नए हमजोली।

सुमन-सुमन सम सस्मित हो तो
सरस सरल सुमनोहर सुमधुर
भाव पराग विराजे, सुख कर
हो जाती तब जगती भोली।

नवोन्माद उन्मादित मुदिता
मदिरा मृदुता मस्त हुई सी
कलित कल्पना ने फिर आकर
मन की बन्द किविड़िया खोली।

नये भाव हों नये चाव हों
नये रंग रस राग भाव हों
दिवस नये नित नई रात हो
मन भाती सब करें ठिठोली।

नीले पीले लाल सभी रंग
मिल कर एक उजाला कर दें
तन्द्रिल नयन खुलें जगती के
भर दें आशाओं की झोली।

ऐसी होली हो ले दिन-दिन
मन बगिया में आली भोली
आशाओं की कलियां खिल-खिल
फूलें खेलें आंख मिचोली।

जो कुछ होना हो सो हो ले, खेलेंगे हम हिलमिल होली।

सिकुड़ी धरती

देव रतन शास्त्री

दिया है मानव को आज के युग ने
उन्नत, गगन चुम्बी हिमालय सा
उदधि सा विशाल, असीम और गहरा
महान् स्वयं मानव सा,
बैठा मांस पेशियों की सन्दूकची में
मस्तिष्क नियन्ता अधिनायक सा;
उछाला है उसे जिस ने
नभ की असीम नीलिमा में;
बैठाया है जिस ने उसे
गर्भ में धरा के
रहस्यों का कोष ढूंढने;
बिजलियां भर दी हैं जिस ने
उस की डेढ़ इंच की उंगलियों में;
रहस्य उफन उठता है
जिन के इंगित से;
पांव में भर दी है जिस ने उसके तरंग
जिस से चल पड़ा है वह
नापने अज्ञात की सीमा;
जिस ने भर दिया है
उस के अणु-अणु में वज्र;
जिस ने कर दिया है
छिन्न-भिन्न अणु-अणु को;

जिस ने धर दिये हैं असंख्य ज्ञान कोष
उसके रक्त कण में;
यह वैज्ञानिक सभ्यता
उपजी है
इन्हीं ज्ञान कोषों से;
जिस ने धरा को सिकोड़ कर
बना दिया है मैदान इक छोटा सा
जिसके प्रांगन में
दुनियां के रहने वाले
बैठ गये हैं
सिकुड़कर, सिमटकर
एक दूसरे से सटकर।
दिया है आज के युग ने मनुज को
रेशम की गांठों सा दुर्बोध
उलझा, सिमटा, तीखा, दुबकीला मन—
जिसने सिकुड़ी धरती पर
बना दिया है मानव को इक बौने सा
जो करता रहता है
खिड़कियां और दरवाज़े घरों के बन्द,
और चढ़ाता रहता है उन पर
मोटे पर्दे फौलादी चद्दरों के;
और टांक देता है फिर उन पर
रंग बिरंगे कागज़ी फूल,
ताकि दूसरे भी-सजा लें
अपने दरवाज़ों खिड़कियों पर
धोखे का बाज़ार।
और धोखे के ये कागज़ी फूल
इतने मोहक हैं—
इनके रंगों की चुभन
पैनी है इतनी कि इसने
भुला दिया है
रंगों की भूल भुलैया में
आंखों को उनका कर्तव्य।

श्रौर इस भुलावे में
रहीम नहीं देखता
राम क्या कर रहा है !
कृष्ण नहीं देखता
करीम क्या सोचता है ।
जोसेफ नहीं जानता
वेतासिंह किधर जा रहा है ।
सफेदी भूल चुकी है
कि कालिख भी कोई चीज़ होती है ।
ये शीश महल नहीं जानते
इनके शीशों की चमक
देन है झोंपड़ी के तिनकों की
मसल दिया जाता जिन को
बाद में पैरों के तले ।
ऊपरी मंज़िल की शराब नहीं पहचानती
कि वह खून पिला रही है किसका !
नहीं, नहीं
मैं भी भटक गया हूं—
श्राज मिलता है कहां लाल खून !
वह तो कब का
इस सिकुड़ी सभ्यता में
सिकुड़ी धरती पर
सफेदी बनकर छा गया है श्रांखों पर,
श्रौर नहीं देख पातीं श्रांखें
दो फुट की दूरी पर
मानवता के विनाश की
प्रलयंकर ज्वाला
जिस में सभी गर्वीली छातियों की
हड्डियां टूट कर, पिस कर, पिघल कर
श्रदृश्य हो जायेंगी महाशून्य में ।

●

संघर्ष

मान भार्गव

रात भयानक हवा चली
खूब झरे पेड़ों से पत्ते
हर शै लगती डरी डरी ।
संक्रान्ति के क्रान्ति-युद्ध में
समूची सृष्टि मूर्छित पड़ी ।
ज्योत्सना भी उदास उदास ज्यों,
शोक-ग्रस्त शुभ्र यौवना खड़ी ।
हुआ सवेरा मिटा अन्धेरा
पर धुन्ध का यह गहन सागर
और खड़ी कुहरे में
हर शै शीत-ग्रस्त
पुलिस पीड़ित मानो हो
नकसली परिवार
मांस पेशियों में जिनकी
सड कर जम गया हो रक्त
खड़े हों स्तब्ध ।
और
उठाए बोझ मस्तिष्क में पर्वत खला का
(जिस से गुज़रता कभी कोई
सुन्दर-सत्य-मान्यताओं
जीवन मूल्यों
मानवता की क्षमताओं का

कोई इन्द्रधनुषी अपालो)
मैं अकेला ही लड़ता रहा
जीवन वियतनाम में
समय के अमरीका से
जो स्वतः फेंकता ही रहा
विवशताओं की विषैली गैस
और घटनाओं के भारी बम्ब मुझ पर
पर—आहित मैं, खा कर घाव
पी कर कटु विष के घूंट
हर क्षण हर पल लड़ा
हर क्षण हर पल जिया
और करुणे !
खड़ी तुम पास मेरे
हर क्षण हर पल
बहाती रही हो करुणाकण
पर, कब पीछे हटा मैं ?
संघर्ष-रत, तन कर खड़ा हूं।



उसे देखा है

मनमोहन सिंह 'सासन'

उसे देखा है मैंने—
जलते हुए
टप-टप गिरते थे मोती
उस की पलकों से
क्रन्दन था हाहाकार था
उसके अन्तरतम में
मानवता की दानवता पर
वह रात्री-अन्धकार को
समेट रही थी बाहों में
क्यों—शायद मानव के
लिए।
उधर मानव था दानव
हो रहा,
वह बरबस उस की चेष्टाओं
को विफल कर रहा था
मानव रक्त प्यासा था मानव
का—
फिर भी वह दृढ़ निश्चय थी
अंधकार को पिए जा रही थी
मधुपाई सी—
बे-सुध खोई थी
आत्म समर्पण के लिए

संकेत दे रही थी
मानव को
छोड़ चन्द्र यात्रा
न ले और स्वप्न
दूर दिशाओं के
यह धरती क्या स्वर्ग
नहीं ?
भूखी मानवता का अमर वरदान
बन,
अपनापन मिटा देना ही
मोक्ष है;
जीवन है,
मैं अपना आस्तित्व
खो रही हूं
प्रकाश किरण के लिए
लोग मुझे निर्जीव कहते हैं
क्योंकि मोम हूं ।

●

शाम और घुटन

राजेन्द्र मोहन कौशिक

मैं सिहरती शाम के इस घुट रहे वातावरण में
सोचता हूं व्यक्ति मेरा सो गया है, खो गया है.
कुछ नजर आता नहीं है—
कौन सी मेरी है मंजिल
किस दिशा किस ठौर जाना
राह हो जो साफ सी, कुछ उठ रही सी
जिंदगी सुलझी हुई, सुथरी, भली सी
थीं बड़ी उर में उमंगें—
मैं बनूंगा आदमी इक
प्रेम का पैगाम हूंगा
द्वेष से, अज्ञान से, संघर्ष से भरपूर जग को
इक नया संदेश दूंगा
जिस तरफ जाना मुझे था
भूल बैठा राह मैं वह
छिप गया मैं मृगतृषाओं में
जहां पर जीत बिकती, हार बिकती.
ठोकरें खाते कदम हैं
आज फिर मैं होश में हूं
पर बना जीवन पहेली
नाम भी बदनाम मेरा
बन गया हूं एक उलझन

जो बनी अभिशाप है अब
जानता, पहिचानता, मैं मानता हूं
भटक कर भूलें सदा होती रहीं, होती रहेंगी
षर नहीं अब लाभ कुछ भी, जो हुआ सो हो चुका है
बहक कर जो कर चुका मैं
असंभव वह लौट जाए
मैं सिहरती शाम के इस घुट रहे वातावरण में
सोचता हूं व्यक्ति मेरा सो गया है, खो खया है।



तो मैं स्वर्ण-विहान करूंगा

दुर्गा दत्त शास्त्री

देख रहा हूं महादम्भ का, कुटिल भयंकर मोहक नर्तन,
दुर्विलास इस राग रंग से, उस के क्रीड़ा गृह छूम छनन,
मैं पशुता की अंधियारी में, साथी ! ज्योतिर्दान करूंगा।
अरे नहीं कलियां खिल पातीं, और नहीं है सुमन-विकास,
दूर दूर अति दूर है उन से, उन का मंगल मय मधु-मास,
मैं उन की आशायें पूरी करने, यत्न महान् करूंगा।
जल थल अम्बर पर मानव ने, अपनी जय के गीत अलापे,
स्वयं प्रभु है आज बना यह, कौन है जो इस का बल मापे,
फिर भी मानवता रोती है, मैं उस का सम्मान करूंगा।
आओ यौवन ! शक्ति पुंज तुम, आगे बढ़ मुझ को गति देना,
सुन रे भाग्य-विधाता जग के, सृजन यज्ञ में आहुति देना,
तू ने साथ दिया यदि मेरा, तो मैं स्वर्ण-विहान करूंगा।
मेरा यौवन मेरी मस्ती, मेरा सब कुछ मेरा जीवन,
मेरे सपने मेरी चाहें, मेरा सुख दुख औ तन मन धन,
जग के हित हैं, इस पर ही मैं, हंस-हंस सब बलिदान करूंगा।
ओ माया के मादक इंगित, तब तक दूर रहो तुम मुझ से,
जब तक जगती के कण-कण पर सुषमा का अमृत-कण सरसे,
मैं स्वार्थ के विकट वक्ष पर, तेज तीर सन्धान करूंगा।
मेरे साथी नभ के तारे, जो जीवन देकर उजियारे,
मेरी प्रिय है दीप की बाती, जो जगहित निज जीवन बारे,
दोनों से संबल लेकर मैं, अपने को गतिमान करूंगा।

चतुष्पदियां

पीयूष गुलेरी

इन्सान

इन्सान को इन्सान बनना चाहिये !
हो सके भगवान बनना चाहिए !!
इन्सान ही इन्सान को रे तुच्छ समझे क्यों अरे ?
इन्सान को इन्सान का सम्मान करना चाहिए !!

युग-युग-दर्शन

इस जीवन में ऐसे क्षण भी आ जाते हैं !
जब अपनों पर अपने पर्वत ढा जाते हैं !!
युग-युग से ऐसा होता, कुछ नया नहीं है—
फिर भी, छाने वाले युग पर छा जाते हैं !!

दम्भ का संसार

मित्र अपना मानकर, हमने कहा कि 'यार' है !
वह भी बोला, हृदय से कि अटल अपना प्यार है !!
प्यार के व्यवहार में, जब हर कदम धोखा मिला—
तब लगा सचमुच अरे ! यह दम्भ का संसार है !!

गिला-शिकवा

राह में आता वृथा क्यों, है गिला संसार से !
मर ही जाने क्यों दिया न, प्यार के आभार से ?
मुस्कराना उनका, जैसे भोर में खिलता गुलाब—
देखते बस देखते ही रह गए 'इतबार' से !!

●

मुक्तक

ज्योतीश्वर 'पथिक'

तारों की नर्म छाओं में कट जाए जिन्दगी,
मस्तानी सी हवाओं में कट जाए जिन्दगी।
हर इक चुभन के बाद भी कहते हैं हम यही,
फूलों की ही कबाओं[1] में कट जाए जिन्दगी ।।

आंसू बहाना व्यर्थ था रोना था किस लिये ?
माना कठिन थी जिन्दगी फिर भी तो हम जिये ।।
डाला है दिल का खून ही मद्धम जो लौ हुई,
जलते रहे हैं आंधियों में इस तरह दिये ।।

यह उलझनें यह मुश्किलें यह शाप न होते,
इस पुन्य मयी जिन्दगी में पाप न होते।
हैं आप के वरदान सभी दर्द प्रणय के,
मैं...मैं भी न होता कि यदि आप न होते ।।

माना कि नहीं मूक या पाषाण नहीं है,
पर आज का इनसान भी इनसान नहीं है।
उस में नहीं वह मर्म न ही प्यार रहा है,
कि कांच के बदन में जैसे जान नहीं है ।।

कैसी घुटन भरी हवा में पल रहे हैं हम,
मंजिल का कुछ पता नहीं है चल रहे हैं हम।
लाये नीलाम के लिये अपनी ही लाश आज;
इनसानियत को इस तरह से छल रहे हैं हम ।।

---

1. लिबास

गीत

कुलभूषण चन्द्र कायस्थ

समझ लेना कि कोई प्यार का तूफान जागा है ।।

कोई गहरी सी आह भर कर तुम्हारे पास से जाये,
नज़र नज़रों से मिलते ही कोई अपने से शरमाये,
कि अपने ही तो साये से किसी का दिल धड़क जाये,
समझ लेना कोई सोचा हुआ अरमान जागा है,
समझ लेना कि कोई प्यार का तूफान जागा है।
रूपहली चांदनी सीने में जब इक आग भड़काये,
सुनहली नींद का आंखों से जब आंचल सरक जाये,
सितारों के इशारों से जब अपना दिल बहल जाये,
कोई भूला हुआ सपना कहीं अनजान जागा है,
समझ लेना के कोई प्यार का तूफान जागा है।
शिकन अबरू पे कोई देख कर भी पास बैठा हो,
करारे दिल[1] नहीं हो फिर भी लेकर आस बैठा हो,
कोई नगमा छुपाये दिल में महवेयास[2] बैठा हो,
समझ लेना कोई खोया हुआ इमान जागा है,
समझ लेना कि कोई प्यार का तूफान जागा है।

1. मन की शान्ति। 2. निराशा में डूबा हुआ।

धूल

प्रिंस शर्मा एम० ए०

धूल,
सूखी हुई धूल,
जूतों को सहते सहते,
अपने अस्तित्व के धुल जाने पर,
हवा के झोंके के साथ उठ कर,
बार बार कहती रही,
हाय वर्षा की कमी रही,
कृषक कोई,
क्षुब्ध कोई,
जीर्ण शीर्ण वस्त्रों में अस्तव्यस्त खेतों को देख कर,
निरन्तर अन्न के अभाव को अनुभव कर,
पास खड़े क्षुधा से व्यथित,
नन्हे बच्चे के सिर पर रख कर हाथ,
झुका कर विधि के विधान पर माथ,
बार बार कहता रहा, हाय वर्षा की कमी रही।
एक पत्ता,
सूखा पत्ता,
तरु से टूट कर,
मिटती देख कर निज सत्ता,
गर्म लोहे की तरह, तड़पता है,
फड़फड़ाता है।
और मन मारे सोचता है
नियति यह क्यों मेरी,
प्रतिकूल
प्रतिकूल
और भी प्रतिकूल होती गई।
हाय वर्षा की कमी रही।

यह सम्भव नहीं है

प्रकाश 'प्रेमी'

हर ओर हो आपदाओं की वृष्टि,
दुखी और पीड़ित हो सारी ही सृष्टि;
चलती हो शोषण की पैनी कटारी-
जीवन की भिक्षा न पाए भिखारी।

कवियों की कविता को साहित्य रोए।
कल धौत-मद मैं कवि शान्त सोए,
जो मदहोश न हो वह चुप कैसे बैठे ?
मानव को व्याधि से पीड़ित वह देखे ?
यह सम्भव नहीं है—
हां सम्भव नहीं है।

विषमता के विष के जहां नद हों बहते—
नवजात शिशु हों जहां क्षुधित रहते।
जहां राजशक्ति अतिक्षीन हो जाए,
नरता से नर ही जहां हीन हो जाए।
उस राज सत्ता को तत्क्षण मिटा दो
ऐसे कुशासन का दीपक बुझा दो।
पूंजी की ऊंची दीवारों के अन्दर
मानव का जीवन तो सम्भव नहीं है।

अशान्ति दुःखों के महानिविड तम में
मैं शान्त बैठूं यह सम्भव है कैसे ?
ताण्डव प्रलय का जहां मचलता हो,
मैं शान्त बैठूं यह सम्भव है कैसे ?

कसक

रमा बडयाल

रोती हूं पर तुम रोने पर
मेरे ध्यान न लाना नाथ
कहीं भूलकर प्रेम विवश हो
द्वार न मेरे आना नाथ ।

आने पर हा ! रूठ न जायें
सुखद प्रतीक्षा की घड़ियां
भय लगता है टूट न जायें
अश्रु मोती की लड़ियां ।

प्रिय वियोग की छाया में ही
माला प्रेम पिरोने दो
जीवन धन ! जीवन भर मुझ को
विरही बनकर रोने दो ।

इतिहास के हाशिये से

मोहन निराश

मौसम-बेमौसम मुझे अगवा किया जाता है
पहनाये जाते हैं मुझे अखबारों से सिले कपड़े
और घूमने को रख छोड़े जाते हैं मेरे लिए बंद कमरे के
असंख्य चौराहे ।

जिन से गुज़रने के बाद मुझे अपना आप बलात्कृत लगता है
मैं सुर्खियों से भरा पड़ा अपना जुआ—
अपनी गर्भवती नंगी आत्मा को पहना कर—
अगवा करने वालों के समूह के साथ हो लेता हूं
इश्तिहार बांटने के लहजों में चिल्ला २ कर आवाज़ देता हूं ।

इस हरामज़ादी का गर्भ गिरा दो
अब के इसी को ले भागना है
इसी के साथ बलात्कार करना है ।

कविता

जितेन्द्र ऊधमपुरी

कल्पना लोक के अनंत सागर में
मैं शतरंज का खेल केवल,
कभी बादशाह,
कभी वजीर,
और
कभी प्यादा,
बदल-बदल रूप
इस सिरे से उस सिरे तक
आगे और पीछे,
बाहर और भीतर,
दौड़े रहता हूं
भागे रहता हूं,
और फिर—
खा कर मात
गिर पड़ता हूं।
चेतना आने पर लगता
दृश्य नहीं; दर्शक हूं मैं।

झूठा सूरज

सुभाष भारद्वाज

झूठा है
सुबह का यह सूरज
क्योंकि
मुझे इस ने आज तक
कभी रोशनी नहीं दी
रोशनी
जिस की मुझे
जन्म-जन्म से तलाश है।

और सच्चा है
सांझ का यह सूरज
क्योंकि यह
सदा मुझे
अंधेरा देता है—
अंधेरा
जो मेरे लिए
चिर-सत्य है।

मैं जरूर पूजता हूं
रोज
सुबह के इस सूरज को
एक पाखण्डी पुजारी की तरह
जैसे मैं

अपने घर आए
किसी अमीर मेहमान का
स्वागत करता हूं—
(भले ही मैं, जिस के वैभव पर
भीतर ही भीतर हंसता हूं।)

और सांझ का यह सूरज
जब-जब आता है
मेरे सगे भाई सा
निः संकोच
मेरे घर के भीतर
आकर बैठ जाता है
थपक-थपक
मेरे परिवार को सुलाता है ?
बहुत ही प्यारा है
मुझे
मेरा सगा बन्धु
सांझ का यह सूरज।

●

संगीत रूपक

वन्दना री वासन्ती

सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम'

[पंछी चहचहा रहे हैं। जल प्रपात का स्वर दूर से सुनाई दे रहा है। बांसुरी का मधुर स्वर भोर का सूचक है।]

एक नर :

(नींद से जाग कर-विस्मय पूर्ण प्रसन्नता के साथ)
अहा !
आज यह अपूर्व प्रभात
मनोरम भोर
पीत-रंजित जगत यह
उमड़ रहा है
तन मन को आनन्दमय करता।
खिल उठे हैं वन-उपवन
केसरी बाना पहने
निखर उठे हैं।
कुंज-कुज से
आ रही है परिमल गंध
निर्झर का कल-कल
कूजन मधुर
पंछियों का बहुरस गान
गुन-गुन गूंज रहा है
और——

(खोया खोया सा)
और——
और वह जल प्रपात
जिस के ओर छोर
नव-कुंकुमों से है सुसज्जित
लगता है——
लगता है——
स्वागत हित
द्वार सजा कर
देख रहे हों
आने वाले को
कौन इधर को आता है ?
अहा !
आज यह अपूर्व प्रभात
मनोरम भोर !
[पास ही खड़ी प्रिया से]
देखो तो प्रिये ।

प्रिया :
शुभ कितना आज सगुन है
उत्तम कितना आज लगन है
रिम-झिम करता
सुधा रस बरसाता
हिय को अग लगाता
अनुराग जगा है
कण-कण में
रोम-रोम में
अनुराग जगा है !
[समूह गान की लय का स्वर धीमा-धीमा कानों में पड़ने लगता है]
सुनो प्रिय !
रवि रश्मियों का गान मनोहर

जल प्रपात की थाप, कर्णप्रिय
प्राण पल्लव ज्यों स्वरित हुए
कोंपलें ज्यों गा रहीं
नव वर्ष का गीत
नयी उमगों में
तरंगित हो-हो कर,
भर रही हिलोरें,
समस्त सृष्टि की
पायल यों झंकृत हो उठी है।

[नर नारी का समूह गान, ढोलक के ताल पर उभरता हुआ—घाटी में गूंज उटता है]

समूह गान :

फूल खिले——
फूल खिले——
हो गया वसंती हर ठांव रे!
धूप चढ़ी
आंख लड़ी
झूम उठी निकुंजों की छांव रे।
ठगा ठगा
नेह जगा
भूल चुका सुधियों का गांव रे।
सजे धजे
ढोल बजे
'फाग' बने मस्तियों का नांव रे।

[ढोलक-नृत्य के ताल पर पूरी गति से बजता हुआ समूह को लगातार नाचने के लिये उत्तेजित करता है और नाचता हुआ समूह खुशी में डूबा हुआ बोलियां बोलता है—हे ऽ ऽ ऽ—। हा हा—! —तत्पश्चात]

एक नर :

झिल-मिल झिल-मिल
चहूं कूट

फैल रहा उजयारा
उत्सव की-सी शोभा
छोर-छोर बसी है
अग जग में रमी है
हंस रही उरवशी
हंस रहा यौवन
[दो सखियां रास्ते में आती दिखाई दे रही है। पायल का स्वर दूर सुनाई दे रहा है। उन्हें देख कर]
देखो री प्रिये !
चंचला
चपला
दोनों चली आ रहीं
गोरी के मुख
अमलान छटा
रस भीनी मुस्कान
कुंकुम सुशोभित
श्याम घटा-सी।
निरखो प्रिये !
निरखो !
छवि साकार हुई है
छवि की आज
धूम मची है।

प्रिया :
[दोनों के पास आ जाने पर उन से सम्बोधन करके]
क्यों री चंचला ?
तुम कहो री चपला ?
पायल बांधे
यह श्रृंगार किये
चली हो आज
कौन से गांव ?
किसका मन हरोगी ?

दोनों एक साथ :

झनन झनन
झन झननन-झन
नूपुर झनकाती
मुस्काती, गाती
आ रही है
छा रही है
हर सू बहार।
आओ हमारे संग
गाएं सब मिल कर
मधुर-मधुर
रसील मद भरे
गीत-प्रगीत
और जगाएं
उर से उर में प्रीत।
प्रकृति बनी है आज
माध्यम।

एक सखी :

हमारे तुम्हारे
मन मिलेंगे
भाव खिलेंगे
फूटेगी नई पौध
वीणा से गुञ्जित होगी
नव झंकार।

दूसरी सखी :

वीणा वादिनी
प्रसन्न होकर
देगी वरदान
और गाने लगेगी
झूम झूम कर
घूम घूम कर

नई पौध की
उल्लासित कतार—
(युवक-युवतियों का समूह गान)
समूह गान
झूम झूम गाओ रे ।।
ढोलक पै थाप दो,
पायल का नाद हो,
मस्ती की धूम मचे—
थिरक थिरक आओ रे ।
झूम झूम गाओ रे ।।
जीवन के गान हों,
माली की जान हो,
कोयल की तान हो—
छनक छुनक भाओ रे ।
झूम झूम गाओ रे ।।
सनेह का साज़ दो,
प्रिय को आवाज़ दो,
रंग संग का अभाव क्या-
महक बहक जाओ रे ।
झूम झूम गाओ रे ।।

एक नर :
डाल डाल पर
ठौर ठौर पर
चढ़ा हुआ
नया ही रंग है आज
मेरे तेरे
सब के
अंग संग
है कामिनी आज
[अचानक गीत के स्वर कानों में पड़ने लगते हैं। नर उन में विलीन-सा हो जाता है]

अहा !
सुन्दर, अति सुन्दर !
जी चाहता है—
जी चाहता है—
तन्मय हो रहूं
अनन्त काल तक
सुनता रहूं ।
[प्रिया से]
सुनो तो प्रिये,
कौन
भला कौन
है गा रहा ?

प्रिया :

हां प्रिय !
लगता है कोई वियोगी
प्रकृति की निराली छटा
निरख निरख कर
व्याकुल हो उठा है
विरहाग्नि में तप्त
राम गिरि आश्रम में
प्रवासित यक्ष की भांति
(करुण हो कर)
सुनो प्रिय

वियोगी नर : (गीत)

कैसे कटे यह विधुर जीवन ?
हेमन्त डार पर बैठ शकुन,
नीहार रहा है नील गगन,
एकाकी ही जिएगा घुट घुट कर,
क्या यह विशालकाय निर्जन ?
कैसे कटे यह विधुर जीवन ?
टीस देती हिम-रंजित पवन,

झकझोर रही तन भीतर मन,
उर भार गहेगी क्या भला
यह शरद की भीमकाय जलन।
कैसे कटे यह विधुर जीवन।।

[समय परिवर्तन संगीत। तत्पश्चात वाद्यवादन जिस में सितार का स्वर मुख्य है। हंसता-खिलता एक नारी समूह पगडंडी से निकल रहा है]

एक नर :

मधु घाटी
मधु पथ
और इस पर
मधु हास ?
उमगित तरंगित यौवन
उल्लासित क्रीड़ा
आनन्दमय, हर्षमय
जगत सारा,
कण-कण उज्यारा
किस लिये ?
किस लिये ?
किस लिये ?

[नारी समूह जो कि पास आ चुका है—सुन कर ठिठका-सा नर की ओर देखता है]।

इन में से एक नारी :

हाय री दइया ?

एक नर :

अपूर्व।
हां हां अपूर्व।
[तनिक चुप रह कर]
आज का हास विलास किस लिये
किस लिये पायल की झंकार
हसती कलि-कलि, हस रही हर गलि

प्रति डाल कर रही है सिंगार

[सुन कर नारी समूह की खिल-खिला कर हंसी के साथ ही वाद्यवादन]

नारी समूह : गीत

फूला रे केसर फूला रे।
बगिया में केसर फूला रे।।
महकी धरती,
महकी जगती,
महकी-महकी निखरी तूला।
रे बगिया में केसर फूला।।
अंबर निखरा,
कंचन बिखरा,
बिखरा-बिखरा सुध को भूला।
रे बगिया में केसर फूला।।
रस की भूकी,
कोयल कूकी,
कूकी-कूकी अम्बुआ भूला।
रे बगिया में केसर फूला।।

एक नर :

[हंसते हुए] हा हा हा यह बात है!
हिय-मंजूषा
आज अति सुख से गाती
सज धज कर
आ गई री वसंत
आ गई री वसंत

नारी समूह :

[भंवरों की ओर संकेत देकर]
पग-पग पै कानों में गूंज रहा है अलिका गान!
जिस के स्वरों में बसी हुई है कलियों की मुस्कान!!
गुन-गुन कर गुन-गुन बढ़ा रहें उपवन का मान!
यह हैं सारंगी वाले वासन्ती के दूत महान!!

नारी समूह की एक नारी :

वन विहग नव गान गाये जा रहे !
नव यौवन में मधु रस सरसा रहे !!
विरहा के आंसू पल भर में हंसी !
आ गई मदमाती आज बसन्ती !!

[वाद्यवादन प्रसन्नता की सूचना देता है। खिल-खिला कर हंसी में से उभरती हुई आवाज़]

सभी नर नारी :

धन्य हो धन्य हो
ए री वासन्ती
यह पुण्य धरा थी
तुझी को तरसती
(सस्वर)
धन्य हो धन्य हो
ए री वासन्ती
यह पुण्य धरा थी
तुझी को तरसती।
आ गई आज तुम
उमड़ती, सरसती
वन्दना, वन्दना
हो री वासन्ती।

(वाद्यवादन के मधुर स्वर के साथ इति)

●

लेखक परिचय

१ श्री सत्य पाल शास्त्री
लैक्चरर हिन्दी, सस्कृत, गवर्नमेण्ट कालेज, जम्मू

२ डॉ. ओम प्रकाश
प्राध्यापक हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

३ श्री श्याम लाल शर्मा
सम्पादक हिन्दी, डोगरी, ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी जम्मू ।

४ श्री प्रियतम कृष्ण
अध्यापक गवर्नमेण्ट हायर सैकण्डरी स्कूल, रणवीर सिंह पुरा

५ डॉ. शिव्वनकृष्ण रैणा
प्राध्यापक गवर्नमेण्ट कालेज, नाथ द्वारा राजस्थान

६ डॉ. संसार चन्द्र
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

७ डॉ. निजामुद्दीन
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, इस्लामिया कालेज, श्रीनगर

८ डॉ. अयूब 'प्रेमी'
प्राध्यापक हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

९ प्रो. शक्ति शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, गवर्नमेण्ट कालेज फार विमन, जम्मू

१० श्री अवतार कृष्ण राजदान
८३, पुरुषयार हब्बा कदल, श्रीनगर

११ श्री मोहन लाल कौल
घाट जोगी लंकर, रैणा वाड़ी, श्रीनगर

१२ डॉ. कौशल्या वल्ली
प्राध्यापिका संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

१३ श्री भुवनपति शर्मा
स्नातक अंग्रेज़ी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

१४ श्री ओ. पी. शर्मा
कलाकार, रिजनल रिसर्च लेबारटरी, जम्मू

१५ श्री अनन्त राम शर्मा
वाइस प्रिन्सिपल, रणवीर संस्कृत कालेज, गान्धी नगर, जम्मू

१६ डॉ. गंगादत्त विनोद
प्राध्यापक मौलाना आजाद मेमोरियल कालेज, जम्मू

१७ श्री मदन मोहन शर्मा
प्राध्यापक, गवर्न कालेज, भद्रवाह

१८ श्री वेद राही
२/३५ मर्वोत्तम हौसिंग सोसाइटी, I R.L.A. Bridge,
अन्धेरी बम्बई।

१९ श्री धर्म चन्द्र प्रशान्त
३५, विजय गढ़, जम्मू

२० श्री हरिकृष्ण कौल
काठलेश्वर, जैनदार मुहल्ला, श्रीनगर

२१ श्री दीदार सिंह
अकाशवाणी, जम्मू

२२ श्री सुदेश शर्मा
४०२, अम्बफला जम्मू

२३ श्री जितेन्द्र ऊधमपुरी
सहायक सम्पादक, कल्चरल अकादमी, जम्मू

२४ श्री सत्यप्रकाश आनन्द
जर्नलिस्ट, पटेल बाजार, जम्मू

२५ डॉ. रमेश कुमार शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कश्मीर विद्यालय, श्रीनगर

२६ श्री मनसाराम चंचल
सम्पादक 'डुग्गर समाचार, फुलवाड़ी' फील्ड सर्वे आर्गेनाइजेशन, जम्मू

२७ श्री शंकर शर्मा 'पिपासु'
अध्यापक, राम तलाई, विजय गढ़, जम्मू

२८ श्री देव रत्न शास्त्री
प्राध्यापक, गवर्नमेण्ट कालेज, ऊधमपुर

२९ श्री मान भार्गव
गवर्नमेण्ट स्कूल, कुद

३० श्री मोहन सिंह सासन
कच्ची छावनी, जम्मू

३१ श्री दुर्गादत्त शर्मा
अध्यापक, रणवीर हायर सैकण्डरी स्कूल, जम्मू

३२ श्री ज्योतीश्वर पथिक
सूचना केन्द्र, जम्मू-कश्मीर, रघुनाथ पुरा जम्मू

३३ श्री कुलभूषण चन्द्र कायस्थ
प्राध्यापक, गवर्नमेण्ट कालेज आफ एजूकेशन, धर्मशाला

३४ श्री प्रिन्स शर्मा
अध्यापक, रणवीर हायर सैकण्डरी स्कूल, जम्मू

३५ श्री प्रकाश 'प्रेमी'
पाराशार आश्रम, राम नगर

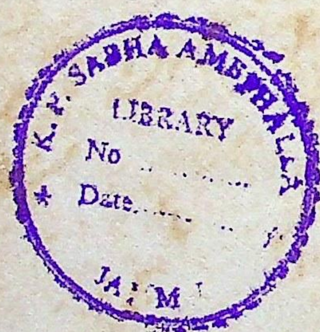
३६ श्रीमती रमा बडयाल
गली खिलौनियां, पक्का डंगा, जम्मू

३७ श्री मोहन निराश
आकाशवाणी, श्रीनगर

३८ श्री सुभाष भारद्वाज
प्राध्यापक, गवर्नमेण्ट कालेज, भद्रवाह

३९ श्री सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम्'
४०२, अम्बफला, जम्मू




LIBRARY
No
Date



मुल्य 8.00 रुपये

Published by the J & K Academy of Art, Culture and Languages,
Jammu.